आमुख

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमांकड.कस्मै देवाय हविषा विधेम।।
(यजुर्वेद13.4)

गायन्ति देवा किलगीत कानि
धन्याऽस्तु ते भारत भूमि भागे।
(विष्णु पुराण)

जो भरा नहीं है भावों से
बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह ह्रदय नहीं वह पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।
–राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

हम मातृभूमि के सैनिक हैं,
आजादी के मतवाले हैं।
बलिवेदी पर हँस–हँस करके
निज शीश चढ़ाने वाले हैं।
–सोहनलाल द्विवेदी

उपर्युक्त पक्तियाँ धरती माँ की स्तुति में रचित कुछ श्रुति–मंत्र हैं तो कुछ कर्ण–प्रिय सूक्तियाँ हैं। ऋग्वेद की ऋचा के द्वारा वसुंधरा तथा प्रकृति के प्रति प्रार्थना है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि वेदों के मंत्र छंद–बद्ध स्वरूप लिए किस प्रकार अपौरुषेय वाणी पर अवतरित हुए होंगे। इससे भी अधिक आश्चर्य तब होता है जब उसमें किसी को प्रक्षेपाँश जोड़ने का साहस तक नहीं हुआ।

मेरा सौभाग्य है कि मैंने किशोरावस्था में यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के तमाम मंत्रों को कंठस्थ कर लिया था क्योंकि इसमें जीवन–दर्शन ही नहीं बल्कि एक स्वस्थ समाज के निर्माण का उद्‌बोधन भी है। देखिए यह मंत्र–

ईशावास्यमिदं सर्व यत् किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्येक्तेन भुंजीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम्।।
(यजुर्वेद40.1)

वेदवाणी उच्चारती है–''ईश्वर ने यह जो कुछ भी संसार में निर्मित किया है उसका उपभोग करना तो ठीक है किन्तु किसी के धन को लालच की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।''

उक्त सरल भावार्थ पर यदि चिंतन–मनन किया जाए तो लगेगा कि ऋषियों ने शिष्य जगत् के लिए कितनी व्याख्याएँ की होंगी। ईशोपनिषद् तो सम्पूर्ण यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय ही है जिसमें उन्तीस मंत्र हैं जिन्हें हिंदी, अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से 'वेद' अर्थात् 'ज्ञान' का अद्‌भुत अंग बताया गया है। काश, उक्त मंत्र जीवन जीने का मनसा–वाचा–कर्मणा रूपांतर बन गया होता तो हम आज विश्वशांति, वसुधैव कुटुम्बकम्, भय–मुक्त तथा अपराध–विहीन समाज को जीते होते एवं यू.एन. ओ जैसे विश्व–संस्थान को किसी देश के आगे घिघियाने का अवसर ही न मिलता।

कोई मनीषी विद्वान ऋग्वेद में पैगानिज़्म की खोज कर सकता है तो कोई उसमें आयुर्वेद की गहन चिकित्सा के लिए संजीवनीवटी पाकर धन्वंतरि बन सकता है। इसी प्रकार सामवेद का उपवेद गन्धर्व संगीत में अमृत तथा कर्ण–प्रियता की श्री वृद्धि करता है और अथर्ववेद का उपवेद वैज्ञानिकों के लिए वैदिक विज्ञान का पथ प्रशस्थ करता है। किंतु दिक्कत तब होती है जब चतुर्वेदी परिवारों के बच्चे न तो चारों वेदों की अध्ययन सामग्री के बारे में जानते हैं और न ही उनके चारों उपवेदों के नाम ही बता सकते हैं। यही हाल त्रिवेदियों, द्विवेदियों और वेदियों के परिवारों का भी है। कुछेक अपवाद हो सकते हैं किंतु उन्हें सोशल मीडिया से ही अवकाश नहीं मिलता।

जिन्होंने धर्म को व्यवसाय बना लिया उनके पौ बारह हो गए हैं क्योंकि कोई भी काषाय वस्त्रधारी अंधविश्वासों के बलपर अपने–अपने मंदिर और उनके लिए सुविधानुसार ईश्वर तथा देवी–देवताओं की प्रतिस्थापना कर सकता है। जो चाहे महामण्डलेश्वर बन जाता है। शंकराचार्य और जगतगुरु बनना भी आसान हो गया है। जिसके पास जितना चढ़ावा आता है, सेठों का काला धन पूजा में मिलता है अथवा

अन्य गलत सरल तरीकों से पैसा आता है, वह उतना ही सफल धर्मपुरुष बन जाता है। वस्तुतः यह स्थिति हिंदू धर्म की ही नहीं है बल्कि इस्लाम, ईसाई तथा मत मतान्तरों की भी है। भला हो महर्षि दयानंद का, उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसा कालजयी ग्रंथ लिखकर सबकी कलई खोल दी। पर उनके अनुयायी भी बुराइयों से पीछे नहीं रहे। वे भी पौराणिकों, जैनियों, बौद्धों, सिखों तथा अन्य तथाकथित भारतीय धर्मों की तरह आर्यसमाज मंदिर व डीएवी शिक्षा संस्थानों पर कब्जा करने में लगे हैं। गनीमत है वहाँ आज भी सच्चरित्र संन्यासी देखने को मिल जाते हैं, वे सुशिक्षित तथा वेदों के प्रति निष्ठावान भी होते हैं। किन्तु स्वामी रामदेव जी की तरह सभी आर्थिक दृष्टि से उतने संपंन नहीं होते, भले ही अष्टाध्यायी को घोट–घोटकर पिया हो।

हम यहाँ न तो किसी धर्म–कर्म की वकालत कर रहे हैं और न ही किसी छिद्रांवेषण को प्रश्रय दे रहे हैं, बल्कि 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' की यात्रा जहाँ तक स्वामी दयानंद सरस्वती अथवा स्वामी विवेकानंद ने तय की थी उनके बाद हम यहाँ तक पहुँचे? मुझे यह लिखते हुए कष्ट होता है कि गीता प्रेस गोरखपुर ने 'हनुमान चालीसा, 'सुन्दर कांड' आदि जेबी पुस्तकें तथा गीता आदि को सस्ते दामों पर तो उपलब्ध कराया किन्तु वेद, उपनिषद्, दर्शन तथा अन्य सभी धर्मोपयोगी साहित्य को पाकेट बुक्स में नहीं बनाया और न ही देश–विदेश के अंग्रेजी–दाँ बच्चों के लिए अंग्रेजी पाकेट बुक्स तैयार कीं। अब तो बहुत देर हो चुकी है। मीडिया पुस्तकों को निगलता जा रहा है। काश, आज भी हम 'हैरी पोटर' की तरह सर्वाधिक बिकने वाला साहित्य किशोरों के लिए निर्माण करा सकते, लेकिन उसकी तरह उसमें रहस्य–रोमांस न होकर शुगर कोटेड स्वस्थ बाल साहित्य का प्रतिबिम्ब हो।

इससे पूर्व की मैं अखिलेश आर्येन्दु की पुस्तक पर कुछ लिखूँ, मैं अपने एक 'मिनी एनसाइक्लोपीडिया'–'Mini encyclopedia of Hinduism and other Religions books, की चर्चा करना चाहूँगा। अपनी देश–विदेश की यात्राओं में कई अभिभावकों ने मुझसे कहा कि उनके बच्चे अपनी संस्कृति तथा वैदिक ग्रन्थों के बारे में अनभिज्ञ हैं। अतः अत्यंत संक्षेप में उनके लिए अंग्रेजी की कोई पुस्तक तैयार कराएँ। मैंने हम संबंध कई लेखक मित्रों से बात की, किंतु कोई भी तैयार नहीं हुआ। अंततः मुझे ही वैदिक ग्रंथों के यथासंभव शोध पर आधारित उक्त पुस्तक को लिखना पड़ा तथा उसे प्रकाशित भी कराया। मुझे प्रसन्नता है कि प्रायः सभी ने उसे पसंद किया और इंटरनेट पर लोड भी कर दिया। अलबत्ता हिन्दी की एक बाल कृति 'अच्छे बच्चे कितने सच्चे' (व्यवहारभानु पर आधारित) का नया संस्करण आज भी लटका है।

अलबत्ता, अभिनन्दन और हार्दिक बधाई अखिलेश आर्येन्दु को जिन्होंने ने मातृभूमि की प्रधान सात शक्तियों से पुस्तक का श्रीगणेश किया। ये शक्तियाँ हैं–मानव विकास के लिए, डिजिटल भारत के लिए, राष्ट्र उत्थान के लिए, समाज को स्किल्ड रूप देने के लिए। वृहद् ऋत, सत्य, छत्र शक्ति दीक्षा, तप, ब्रह्म शक्ति और यज्ञ। मातृभूमि के विकास के लिए ये सभी शक्तियाँ महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती हैं। लेखक एक व्याख्या में कहता है–

"हे मातृभूमि! आप के दिए गए आनंद का क्या कहना। यह सब आपकी कृपा का फल है। ....आसुरी शक्तियों पर विजय, विषैले जीव–जन्तुओं से निरापद वातावरण, कृषि कर्म, श्रेष्ठ मार्गों का निर्माण तथा अपरमित शक्ति वाली मातृभूमि, इत्यादि में हृदय के उद्‌गार अभिहित हैं। सरल शैली में प्राच्य संस्कृति का प्रस्तुतिकरण है। कोष्टक में दिए गए शब्दार्थ भावार्थ के लिए स्पष्टीकरण में सहायक बनते हैं।

इस प्रकार का साहित्य संभवतः किसी पाठक को उबाऊ भी लग सकता है किंतु प्राचीन संदर्भों के गुण ग्राहक इसे सत्साहित्य का श्रेष्ठ अवदान कहेंगे। और इस उत्कृष्ट योगदान के लिए मैं लेखक को साधुवाद देना चाहूँगा।

शुभस्य पंथाः।

श्याम सिंह शशि
(पी.एचडी, डी.लिट्)
(हिन्दी अंग्रेजी में उत्कृष्ट लेखन के लिए पद्मश्री से सम्मानित)
कुलाधिपति अन्तरराष्ट्रीय रोमा सांस्कृतिक विश्वविद्यालय, बेलग्रेट, सरबिया गणराज्य
पूर्व महानिदेशक सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

भूमि–सूक्त की पीठिका

वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है। विद् ज्ञाने धातु से यह शब्द बना है। अतः वेद ज्ञान राशि इस सकल ब्रह्माण्ड का ज्ञान कराने वाला शब्द–रूपी ब्रह्म वेद ही हैं। वेद में जो ज्ञान–विज्ञान वर्णित है वही सकल ब्रह्माण्ड में विविध तत्त्वों एवं शक्तियों के रूप में कार्य कर रहा है। उन तत्त्वों को वेद में देवतावाची मंत्र–रूप में जो ज्ञान का बीज दिया है उसके साहचर्य से उस मंत्र के प्रकाश से हम आज भी इस युग में अपना मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं। शब्द तत्त्व का वाचक होता है और ज्ञान का प्रत्यक्ष दर्शन कराता है। इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि वेद के मंत्रों का पूर्ण रूप से अभिन्न सम्बन्ध विश्व से ही है। वेद ही ऐसे ज्ञान के स्रोत हैं जिनमें समस्त सृष्टि निर्माण का विज्ञान निहित है। सब से अद्‌भुत तथ्य यह है वेद का प्रत्येक शब्द सार्थक है।

विश्व और ब्रह्माण्ड की मूल प्रकृति वेद में अदिति, पराशक्ति, आद्याशक्ति के नाम से जानी जाती है। विश्व का यह परिधिमय क्षेत्र उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय रूप से त्रिधाबद्ध है। इस ब्रह्माण्ड का एक ऐसा भी क्षेत्र है जो परोक्ष है प्रत्यक्ष नहीं है। इसका वर्णन वेद में बहुत जीवन्त और रहस्यमयता के साथ किया गया है। वेद का ऋषि उद्‌घाटित करता है–इस विशाल ज्ञान के क्षेत्र की परिधि नहीं है। परिधि रहित समस्त ज्ञान वेद–रूप में सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है। विज्ञान के इस विशाल क्षेत्र के एक क्षेत्रीय भाग को ब्रह्माण्ड या विश्व नाम से अभिहित किया गया है।

वेद का अतुलित ज्ञान सृष्टि के विविध तत्त्वों, पदार्थों, प्रकृति व आत्मा में व्यक्त एवं अव्यक्त रूप में, क्षर एवं अक्षर स्थितियों में, प्रलय एवं उत्पत्ति में, ज्ञाता एवं ज्ञेय रूपों में, सुषुप्ति एवं जागरित में सदा वर्तमान रहता है। वह ज्ञान सत्ता का रूप सर्वदा रहता है, वह अक्षर, अविनाशी, बुद्ध, मुक्त और चेतन्य है। अर्थात् वेद शुद्ध, परम पावन, असीमित और अनन्त हैं। मानव को अमरता प्राप्त करने के लिए वेद सर्वोत्कृष्ट साधन हैं। वेद के एक–एक मंत्र में मानव को देव बनाने के लिए सूत्र बताए गये हैं। यही नहीं, देवों ने भी अमरता प्राप्त करने के लिए वेद–मंत्रों से स्वयं को आच्छादित कर लिया। वेद–मंत्रों का 'छन्द' नाम इसी अर्थ में है। इसकी व्याख्या छान्दोग्य ब्राह्मण में की गई है। छन्द शब्द का अर्थ संस्कृत में ढकना होता है। इसकी धातु है, '**छंद अपवारणे। छदि संवरणे**'। छान्दोग्य ब्राह्मण में छन्द शब्द की व्याख्या इस प्रकार से की गई है–देवों को मृत्यु से भय लगा। वे वेदों में प्रविष्ट हो गये और उन्होंने वेदों के छन्दों (मंत्रों) से स्वयं को ढक लिया। छन्दों का छन्दत्व यही है कि देवों ने मृत्यु से बचने के लिए इनसे अपने आप को आच्छादित कर लिया। ब्राह्मण ग्रन्थों में वेदों को दिव्यातिदिव्य ज्ञान, कला और जीवन को दिव्य बनाने वाला विज्ञान ग्रन्थ कहा गया है। मृत्यु से भय को दूर करने के लिए वेद–मंत्र ही एक मात्र साधन– मानव और देवों को परमात्मा ने वेदों के माध्यम से दिया है। इस लिए वेद–मंत्रों का सुनना–सुनाना, पढ़ना–पढ़ाना और लिखना–लिखाना, सभी कल्याणकारक है। मृत्यु से पार उतरने के साधन वेद–मंत्र ही हैं। इस साधन को हम किस प्रकार उपयोग करते हैं, इसे समझने की आवश्यकता है। परमात्मा, आत्मा व प्रकृति का साक्षात्कार वेद के ही माध्यम से हो सकता है। इसलिए अध्यात्म के सर्वोच्च ज्ञान–ग्रन्थ वेद माने गये हैं।

वेदों को सर्वज्ञान का स्रोत, भण्डार और आधार कहने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए । पिछली कुछ शताब्दियों में प्राच्य और प्रातीच्य विद्वानों, विश्लेषकों, इतिहासकारों ने अपने गहन अनुसन्धान से यह पाया कि जिस वेद के सम्बन्ध में भारत और भारत के बाहर अनेक बिडम्बनापूर्ण, आडम्बरपूर्ण, कल्पनाजन्य और हास्यास्पद बातें कही जाती रही हैं, दुराग्रह और द्वेष से भरे सरारत पूर्ण टिप्पणियाँ की जाती रही हैं और बिना किसी तथ्य और प्रमाण के विवेचनायें मनमाने ढंग से प्रस्तुत की जाती रही हैं वे वास्तव में वेदों के गूढ़तम, गहनतम, विज्ञानपरक, धर्मपरक और दर्शनपरक भावों को न समझने के कारण है। आज विश्व में वेद सर्वमान्य ढंग से विश्व की प्रथम पुस्तक, इसकी भाषा को विश्व की लगभग सभी भाषाओं की जननी एवं सबसे पुरातन भाषा ही नहीं प्रत्युत वेद अब तक के अहिर्निश ज्ञान–विज्ञान के प्रमुख स्रोत और आधार बताये जा रहे हैं। ऐसे में महर्षि दयानन्द का यह वक्तव्य हमें स्वीकार करने में गर्व का अनुभव होना चाहिए कि 'वेद सब सत्य और पदार्थ विद्याओं के स्रोत हैं और इनका आदि मूल परमेश्वर हैं'। इसी के साथ हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि वेद में एक साथ, एक स्वर में और एक भाषा में जिस प्रकार से सूत्र–रूप में अनेक विषयों, समस्याओं, समाधानों, धर्मों, अध्येताओं, गुणों, पदार्थों, तत्त्वों, सर्जनाओं, स्थापनाओं, प्रवृतियों, ज्ञान–विज्ञानों, विचारों और कलाओं का उद्‌घाटन किया गया है– ऐसा विश्व की किसी अन्य पुस्तक में नहीं पाया जाता है। इसलिए वेद का पढ़ना–पढ़ाना,

सुनना–सुनाना परमधर्म माना गया है। जिस प्रकार से मानव धर्म की विवेचना और व्याख्या हम वेदों में पाते हैं, वह आश्चर्य में डालने वाली तो है ही, अत्यन्त गर्हित भी है। इसी प्रकार हमें यह भी स्वीकार करने में कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए कि यदि वेद के अजस्र ज्ञान स्रोतों को छोड़ दिया जाए तो हम गहन अज्ञानता और अविद्या के गहन कूपों में स्वयं को भटकते पाएँगे। हमें नई पीढ़ी को वेदों की इस विशेषता, गहनता और अर्थवत्ता बताने और समझाने की आवश्यकता है। जिससे वह एकदेशीय पक्ष को ही जीवन का आधार मानकर अपने जीवन को अपूर्णता में न ढकेल दे। आज जिन अनेक अज्ञानताओं, विषमताओं, त्रासदियों, संकटों, विसंगतियों, विद्रूपताओं, विकृतियों और बिडम्बनाओं में उलझकर विश्व मानव समाज भटक रहा है, वेद का पावन ज्ञान–पथ ही उसे इस विप्लव से बाहर निकाल सकता है।

ज्ञान के मूल उत्स को ढूढने वाले प्रखर अनुसन्धानकर्ताओं, ज्ञान–यात्रियों और विश्व मानवता को सर्व सुखी बनाने की मनसा रखने वाले मानव धर्म–प्रज्ञानियों के समक्ष कोई ज्ञान का आधार–ग्रन्थ हो या न हो, वेद की ज्ञान–रश्मि को आत्मसात् करने के बाद, वह अपने मन्तव्य और गन्तव्य में पूर्णतः सफल और विजयी बनकर ही लौटेंगे। वेद विश्व का प्राचीनतम लिखित ज्ञान कोश है तथा भारतीय चिन्तन–धारा व परम्परा से विच्छिन किसी विदेशी ज्ञान का पिछलग्गू नहीं है। वेद आज भी उतने ही उपयोगी, सार्थक और मानव जीवन के लिए अनिवार्य हैं जितने ये लाखों वर्ष पूर्व थे । वेदमाता की कोख से मोती ढूढने वाले महान् अनुसन्धानकों में जितनी गहराई, गति और क्षमता रही है वे उतने ही बहुमूल्य मोती ढूढ पाने में सफल हो पाए हैं। इस लिए वेदों के विषय में कोई एक मत दिखाई नहीं देता है। तप, ज्ञान, साधना, भावना और प्रभु अनुकम्पा से वेद में ज्ञान के मोती खोजने वाले यह किसी ने आज तक नहीं कहा बस, अब इसमें कुछ ढूढा नहीं जा सकता है। यही तो वेदों की रहस्यमयता है। ईश्वरीयता है। यही अपौरुषेयता है। यही इसकी विशेषता है। जो विश्व के सभी ग्रन्थों से इन्हें 'विशेष' बनाती है।

वेदों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मणकर्ता महर्षि याज्ञवल्क्य और इस ग्रन्थ के अन्य स्थानों पर दिये गये विचार मननीय और संग्रहणीय हैं। – **एवं अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम्। एतद् यद् ऋग्वेदो, यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरसः** ।(श.14/5/4/10) अर्थात् ऋग्वेद आदि चारों वेद परमात्मा ने इस प्रकार अनायास उत्पन्न कर दिये हैं जिस प्रकार कि श्वास–प्रश्वास की क्रिया अनायास होती रहती है।'' महर्षि याज्ञवल्क्य का यह वचन स (प्रजापतिः) **श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम्।**

(श.6/1/1/8)।। अर्थात् उस प्रजापति परमात्मा ने श्रम किया, तप किया और इस अपने तप द्वारा उसने त्रयी विद्या–रूप ब्रह्म को, वेद को, सब से प्रथम उत्पन्न किया।'' इन दोनों वाक्यों से यह भली भाँति स्पष्ट होता है कि वेद सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों को परमात्मा द्वारा सर्वप्रथम दिया ज्ञान है। ब्राह्मण ग्रन्थों में वेदों की जैसी प्रशंसा की गई है वह अदभुत है। तैतरीय ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है –''चारों वेद सरस्वती के झरने हैं। जैसे पर्वत से निकलने वाले झरनों से पानी की असीम धारायें प्रवाहित होकर प्यासे और संतप्त प्राणियों की प्यास बुझाती हैं और उन्हें शक्ति प्रदान करती हैं उसी प्रकार चारों वेदों से सरस्वती की तरह–तरह के ज्ञान की असीम धारायें प्रवाहित होती हैं और जिज्ञासुओं की ज्ञान पिपासा को बुझा करके– उन्हें पूर्ण शान्ति प्रदान करती हैं।'' तैतरीय ब्राह्मण में एक अन्य स्थान पर कहा गया है–जो वेद को नहीं जानता, वह उस महान् परमात्मा को नहीं जान सकता है।''

ब्राह्मण ग्रन्थों की ही तरह उपनिषदों में भी वेदों को ज्ञान–विज्ञान, अध्यात्म, धर्म और दर्शन का आधार माना गया है। कठोपनिषद् में कहा गया है–**सर्वे वेदा यत्पदम् आमनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति, यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति तरो पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्**।। (कठो.उ.2/15) अर्थात् सारे वेद प्राप्त करने योग्य जिस ब्रह्म का वर्णन करते हैं जिसे प्राप्त करने के लिए सब प्रकार की तपस्याएँ की जाती हैं और जिसे प्राप्त करने और चाहने वाले अभ्यासी लोग ब्रह्मचर्य का सेवन करते हैं, उस प्राप्त करने योग्य ओम्–पद–वाच्य ब्रह्म का मैं संक्षेप में वर्णन करता हूँ। इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद् में वेदों को ईश्वरीय वाणी बताया गया है। '**अग्निर्भूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ, दिशः श्रोते वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा**।।(मु.2/1/4।।)

वेदों की महत्ता, गुण, सार्थकता और लाभ को एक स्वर से छः भारतीय आस्तिक दर्शनों में दर्शाया गया है। योग, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, वैशेषिक और न्याय जिसके रचनाकार क्रमशः पतंजलि, जैमिनी, वेदव्यास, कपिल, कणाद् व गौतम हैं ने वेदों को आप्तवचन स्वीकार किया गया है। न्याय दर्शन में कहा गया है– **मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्** (2/1/67) अर्थात् वेद परम आप्त परमेश्वर के वचन हैं।

वैशेषिक दर्शनकार कणादमुनि ने '**तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्** (1/1/3) अर्थात् वेद परमात्मा के वचन हैं। योग दर्शनकार पतंजलि मुनि ने वेद को ईश्वर की वाणी कहा है–''**स पूर्वेषामपि गुरुःकालेनानवच्छेदात्** (समाधिपाद 1/ 26) अर्थात् वह परमेश्वर नित्य वेद–ज्ञान को देने वाला पूर्वजों का आदि गुरु है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि दर्शनों (शास्त्रों) में वेद को ईश्वर–कृत और

सर्वज्ञानमय स्वीकार किया गया है। इससे इस धारणा का निर्मूल हो जाता है कि सभी आस्तिक दर्शनों में ईश्वर की स्वीकारता तथा वेद को ईश्वरीय वचन नहीं स्वीकार किया गया है।

अनेक विवेचनकर्ता दर्शनों पर आक्षेप करते है– सभी भारतीय आस्तिक दर्शनों में (जो वेद को परम प्रमाण मानते हैं) वेदों को ही ब्रह्माण्ड एवं विश्व–सत्ता को नकारते हैं, यह भी एक धारणा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। –**स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता** (सांख्य 3/56) अर्थात् ईश्वर सर्वज्ञ और निमित्त कारण–रूप से जगत् का कर्ता है, और इसे प्रमाण के रूप में दिया गया है–**ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा**'(सांख्य3/57) अर्थात् ऐसे जगत् के निमित्तकारण–रूप सर्वज्ञ ईश्वर की सिद्धि सिद्ध है। सांख्य दर्शन के ईश्वर सत्ता की स्वीकारता को महाभारत में स्पष्ट करते हुए कहा गया है– **अत्र ते संशयो माभूत्, ज्ञानं सांख्यं परं मतम्। अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं, पूर्णब्रह्म सनातनम्।।** (महाभारत शान्तिपर्व 12/290/96) महाभारत में वेद को समस्त लोकों के लिए प्रमाण माना गया है। **वेदाः प्रमाणं लोकानां, न वेदाः पृष्ठतः कृताः।। द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये, शब्दब्रह्म परं च यत्।।** (महा. 12/262/1) अर्थात् वेद समस्त लोकों के लिए प्रमाण हैं, उन्हें बाद में नहीं बनाया गया है। **ब्रह्मवदवाच्य** दो का ज्ञान आवश्यक है –एक तो वेद और दूसरा परब्रह्म परमेश्वर। वेदान्त शास्त्र के कर्ता वेदव्यास जी ने '**शास्त्रयोनित्वात** (1/1/3) तथा '**अतएव च नित्यत्वम्**' (1/3/29) इत्यादि सूत्रों द्वारा परमेश्वर को ऋग्वेदादि वेदों का कर्ता मानते हुए वेद की नित्यता का प्रतिपादन किया है।

मीमांसा दर्शन के कर्ता जैमिनी मुनि धर्म का लक्षण करते हुए कहते हैं–**चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।**' (1/1/2) अर्थात् जिसके लिए वेद की आज्ञा हो, वह धर्म और जो वेद विरुद्ध हो, वह अधर्म कहलाता है। मीमांसाकार यहाँ स्वीकार करते हैं कि वेद के स्वाध्याय के अतिरिक्त और किसी तरह से नहीं धर्म का वास्तविक बोध हो सकता है। जैमिनी मुनि कहते हैं" वेद की प्रेरणा, वेद की आज्ञा, जो अर्थ, जो कर्तव्य बताते हैं वही धर्म है।" संस्कृत के सुप्रसिद्ध कोष अमरकोष में धर्म का अर्थ करते हुए कहा गया है–**श्रुतिः स्त्री वेद आम्नाय स्त्रयी धर्मस्तु तद्विधिः।**"(अमरकोष का.1/व 5/श्लोक 13)

वैशेषिक दर्शन के कर्ता कणाद् ने अपने दर्शन में नौ पदार्थों की व्याख्या और विवेचना की है। इन नौ पदार्थों में सम्पूर्ण सृष्टि का समावेश हो जाता है। ये नौ पदार्थ हैं–पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु, मन, दिशा, आत्मा व काल। वैशेषिक दर्शन में दर्शनकार ने वेदों के सम्बन्ध में लिखा है–"वेदों के प्रत्येक वाक्य की रचना बुद्धि पूर्वक है।" (**बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे। (वै 6/1/1।।)** वेद ईश्वरीय वचन हैं। (**तद्वचनादाम्नास्य प्रामाण्यम**)।। वै 1/1/3।। महर्षि कणाद का कथन है–यदि वेद का कोई अर्थ बुद्धि पूर्वक और तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है तो वह वेद का अर्थ समझने वाले भाष्यकार का दोष है, वेद का दोष नहीं है।"

व्याकरण महाभाष्य में वेद का गुणागान करते हुए कहा गया है–'**एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुक् भवति,** अर्थात् वेद का एक शब्द भी अच्छी तरह से समझा और अच्छी तरह से क्रिया में लाया हुआ हमारे संसार को स्वर्ग बना सकता है और उस स्वर्ग में हमारी कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु बन सकता है।" महाभाष्यकार वेदों को ईश्वर द्वारा बनाया हुआ माना है जो अपौरुषेय और नित्य हैं। उनका अभिमत है–**वर्णानुपूर्वी खल्वप्याम्नाये नित्या।** (महाभाष्य 5/2/29) अर्थात् वेद के मंत्रों में जो वर्णानुपूर्वी है, वेद मंत्रों के अक्षरों का जो क्रम है, वह वैसे का वैसा नित्य और अनादि है।"

सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों का चार ऋषियों के परम पावन अतःकरण में जो प्रकटीकरण हुआ उसका स्पष्ट वर्णन बाद के ऋषि–महर्षि, मुनि और वेद भाष्यकारों ने किया। इसमें निरुक्त के रचनाकार महर्षि यास्क का नाम सर्वोपरि है। निरुक्त के माध्यम से ही वेदों के अर्थ सम्यक् पूर्वक समझे जा सकते हैं ऐसा विद्वानों का मत रहा है। लेकिन ब्रह्म की वाणी होने के कारण निरुक्तकार भी उसकी थाह नहीं लगा पाते । वेद के विषय में महर्षि यास्क का कथन है–**साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्त्संप्रमादुः। उपदेशेन ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समान्नसिषुर्वेदं च वेदागांनि च।।** अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में ऐसे ऋषि उत्पन्न हुए जो साक्षात्कृत–धर्मा थे, जिन्हें ईश्वर की प्रेरणा से वेद–मंत्रों और उनके अर्थों का दर्शन हुआ। ये साक्षात्कृत–धर्मा ऋषि अपने पीछे आने वाले असाक्षात्कृत–धर्मा ऋषियों को– उन ऋषियों को जिन्हें परमेश्वर द्वारा वेद–मंत्रों और उनके अर्थों का बोध नहीं हुआ था– अपने उपदेश द्वारा वेद–मंत्रों को सिखाते रहे। पश्चात्, उनके बाद आने वाले ऋषियों ने वेद को समझने के लिए वेद को तथा निरुक्त और वेदांगों को ग्रन्थ–रूप में संग्रहीत किया।" महर्षि यास्क के अनुसार वेद सृष्टि के आरम्भ में ऋषियों को परमात्मा द्वारा दिया ज्ञान है। वेद–मंत्र 'मंत्र' क्यों कहलाते हैं इसके सम्बन्ध में महर्षि यास्क का कथन चिन्तन करने योग्य है। यास्क कहते हैं–'**मन्त्रा मननात्**'(निरुक.त) अर्थात् वेद–मंत्रों के मनन से भाँति–भाँति का ज्ञान सीखा जा सकता है।"

महाभारत में वेदव्यास ने वेद को नित्य और ईश्वरकृत बताया है और उसके अर्थ सहित अध्ययन पर अतिशय जोर दिया है –**अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा, आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः**

प्रवृत्तयः।।'(महाभारत 12/224/55) अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा ने वेद–रूप नित्य दिव्यवाणी का प्रकाश किया जिससे मनुष्यों की सारी प्रवृतियाँ होती हैं।

वेद को स्वतःप्रमाण और सभी धर्मों का मूल मानते हुए मनुस्मृति में मनु महराज ने इसे परम प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है। **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।।** (मनु.2/6) **धर्म जिज्ञासमानानां, प्रमाणं परमं श्रुतिः।।** (मनु.2/13) जैसे वाक्य इसके प्रमाण हैं। जो लोग धर्म की जिज्ञासा रखते हैं उनके लिए वेद परम प्रमाण हैं। वेद में धर्म के विषय में जो कहा गया हैं उसे ही प्रमाण मानकर धर्म–अधर्म का निर्णय करना चाहिए। इतना ही नहीं, वेदों को सभी विधाओं का प्रतिपादक बताते हुए कहा है–**सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक पृथक । वेद–शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।**(मनु.1/21) अर्थात् परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में वेदों के शब्दों से ही सब चीजों और प्राणियों के नाम और कर्म तथा लौकिक व्यवस्थाओं की रचना की है। वेदों को सर्वज्ञान, सर्वधर्म, सब व्यवहार, सभी विज्ञान और सभी उपयोगी विषयों का मूल बताते हुए मनु महराज कहते हैं–**'चातुर्वर्ण्य त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्। भूतं भवद् भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति।।** अर्थात् मानव समाज के चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और श्रमिक) चारों आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास) तीन लोक (पृथ्वी, अन्तरिक्ष व द्यौ) भूत, भविष्य और वर्तमान में होने वाली सारी चीजें, ये सब वेद से ही जाने जाते हैं। तात्पर्य यह है, वेद से बाहर कुछ भी नहीं है।

भगवद्गीता भारतीय संस्कृति एवं मानव धर्म का एक महान् ग्रन्थ माना जाता है। लेकिन वेद को गीता में सर्वोपरि, सर्वविज्ञानमय, सर्वज्ञानमय और सर्वधर्म मान कर इसकी प्रशंसा की है। वेद की उत्पति और मानव जीवन के कर्तव्य–कर्मों का श्रेष्ठ–ग्रन्थ स्वीकार करते हुए योगीराज कृष्ण कहते हें– '**कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरमुद्भवम्** (गीता 3/15) अर्थात् कर्तव्य कर्मों का बोध वेद द्वारा होता है और यह वेद, अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है।'' इतना ही नहीं वेदों की महत्ता और परमेश्वर से उनकी उत्पत्ति बताने के लिए वेदों का अपना रूप कह डाला है। –'**पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः। वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च** (गीता 9/17) अर्थात् जानने योग्य पवित्र तत्त्व ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद मैं ही हूँ।'' इस प्रकार जहाँ गीता में वेद को परमात्मा की वाणी स्वीकार किया गया है वहीं पर उसकी महत्ता का भी प्रतिपादन किया गया है। महर्षि बाल्मीकि ने रामायण में और सन्त तुलसीदास ने रामचरितमानस में वेदों को परमात्मा की वाणी स्वीकार करते हुए उसके इहलौकिक एवं पारलौकिक महत्ता को भली भाँति दर्शाया है। **'इति बेद बदंति न दंतकथा। रबि आतप भिन्नमभिन्न जथा।।''**

महान् ऋषियों, आचार्यों और कवियों के अतिरिक्त ऐसे अनेक प्राच्य और प्रातीच्य दार्शनिक और समाज सुधारक हुए हैं जिन्होंने वेदों की महत्ता, उपयोगिता, इसके उद्भव और इसमें वर्णित विविध विद्याओं को मानव कल्याण के लिए अत्यन्त उपयोगी बताया है।

वेद–दृष्टि

वेद–दृष्टि को हम वेद विचार भी कह सकते हैं। लेकिन वेद–दृष्टि शब्द में जो गाम्भीर्य है वह वेद विचार में नहीं है। इस लिए हमें वेद–दृष्टि के गहरे और चिन्तनीय व्यापक अर्थों को ही आत्मसात् करना चाहिए। प्राच्य और प्रातीच्य दोनों दृष्टियों में वेद ज्ञान–विज्ञान के ग्रन्थ तो हैं लेकिन एकमेव सर्वज्ञानमय नहीं। प्राच्य विद्वानों की वेदों के सम्बन्ध में कोई एक दृष्टि नहीं रही है, इसी प्रकार प्रातीच्य विद्वानों की दृष्टि में भी। 'वेद–दृष्टि' पश्चिमी अर्थ में दर्शन नहीं है। पाश्चात्य परम्परा में दर्शन का अर्थ जानकारी (इन्फॉरमेशन) जो मूलतः तर्क पर आश्रित है, अर्थ है रूपान्तरण (ट्रासफॉरमेशन) जो मूलतः उस अन्तर्दर्शन पर आधारित है जो दृष्टा की दृष्टि को ही नहीं प्रत्युत जीवन को भी रूपान्तरित कर देता है। 'जानकारी' की परम्परा भारत में पश्चिम जैसी नहीं रही है। यही कारण है पिछली कुछ शताब्दियों में पश्चिम में भौतिक विज्ञान का विकास तेजी के साथ हुआ है। वहीं पर, भारत में धर्म की जो धारणा और परम्परा रही है वह जीवन और जगत् को सम्पूर्णता में ग्रहण करने वाली है। इस लिए भारत में पश्चिम की तरह भौतिकता का विकास नहीं हुआ।

श्रुति, स्मृति एवं विज्ञान की एकात्मकता (मात्र एकवाक्यता नहीं) न तो आज कोरी कल्पना की वस्तु रह गई है और न तो परम्परा विरोधी ही है। वेद–दृष्टि की समझ प्रातीच्य के आधुनिक विज्ञानिकों को भी रही है। इसमें महान् वैज्ञानिक आइन्सटीन का नाम प्रमुख है। वे जीवन के अन्तिम चालीस अमूल्य वर्षों में जिस 'एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त' (यूनीफाइड फील्ड थियरी) की खोज करते रहे, वह उस 'वेद–दृष्टि' में निहित है जिसे आज की शैली में हम 'दृष्टि–निष्ठा' कह सकते हैं। 'दृष्टि–निष्ठा' वस्तुपरक (निरपेक्ष, अनासक्त) होती है और 'व्यष्टि–निष्ठा' व्यक्ति के राग–द्वेषों से सीमित और प्रभावित होती है। इसे समझने की आवश्यकता है। 'दृष्टि–निष्ठा' में विज्ञान की वह शक्ति निहित है जिसमें वस्तुपारकता, निरपेक्षता की दृष्टि निहित है। 'वेद–दृष्टि' भी मूलतः इसी सत्य की स्थापना और स्वीकृति है परन्तु

प्रक्रिया भिन्न है। वेद 'दृष्टि–निष्ठा' के प्रतिपादक हैं जब कि विश्व के अन्य सभी ग्रन्थ 'व्यष्टि–निष्ठा' का किसी न किसी रूप में प्रतिपादन करते हैं। इस अर्थ में वेद अन्य सभी ग्रन्थों से भिन्न तरह के हैं। वेद का प्रवक्ता कोई पैगम्बर, अवतार या प्रोफेट नहीं है प्रत्युत यह ईश्वरीय वाणी है जो ऋषियों के अन्तःकरण में प्रकाशित हुई। व्यष्टि वेद का विषय नहीं है प्रत्युत समष्टि का ही वे प्रतिपादन करते हैं। इसके ऋचाओं के मंत्र–दृष्टा ऋषि शब्द के पूर्णतम अर्थ में वैज्ञानिक हैं। जिन्होंने अपनी कठिन साधनाओं के द्वारा जीवन के आधुनिक वैज्ञानिक–यंत्र से भी अधिक निर्वैक्तिक बना लिया था। इस लिए ऋचाएँ प्राचीनतम होकर भी आधुनिक ही नहीं शाश्वत और सनातन हैं।

वेद के सम्बन्ध में आधुनिक मानव को यह बात समझ में नहीं आती कि इतिहास के आरम्भ में निर्वैक्तिकता का विकास सम्भव था जो आधुनिक विज्ञान के लिए भी सम्भव नहीं हो पाया है। वैदिक ऋषियों का मानस आज के आधुनिक वैज्ञानिकों से भिन्न तरह का था। इस लिए, उस धरातल पर पहुँचना और पहुँचकर उन गवेषणाओं को ग्रहण करना, अभी सम्भव नहीं हो पाया है। आधुनिक भौतिक विज्ञान 'वहुधा वदन्ति' के रूप में ही हमारे सामने है, पर वह 'एकं सद्' तक नहीं पहुँच पाया है। क्योंकि इस निष्पत्ति के दार्शनिक–सामाजिक परिणति को ग्रहण करने या समझने के लिए पश्चिमी मानस तैयार नहीं है। वैदिक ऋषि '**एकंसद् विप्रा बहुधा वदन्ति**'(ऋ.1/164/46) के साथ–साथ 'कृण्वन्तो विश्वं आर्यम्'(ऋ.9/63/75) के भी दृष्टा थे जिसके लिए अन्य धार्मिक–सांस्कृतिक परम्पराओं में आज भी मानसिक तैयारी नहीं है। '**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**' भौतिक शास्त्र का पराभौतिक शास्त्र (मेटाफिजिक्स) है और 'कृण्वतो विश्वं आर्यम्' भौतिक विज्ञान का पूरक समाज–विज्ञान है जो पूरे मानव समाज को श्रेष्ठतम् स्तर तक के विकास का अधिकारी मानकर सबके लिए एक ऐसे निर्वैक्तिक मार्ग सुलभ कराता है जो आधुनिक विज्ञान के पूर्ण अर्थ में वैज्ञानिक है।

वैदिक ऋषियों ने जिस ध्यान–योग के द्वारा समष्टि का साक्षात्कार किया था, उसे आज का वैज्ञानिक समझना नहीं चाहता या वह इसे अपने बूते से बाहर का मानता है। जब कि इसे अत्यन्त गहराई से समझने की आवश्यकता है। एक प्रश्न सहजता से उठता है कि वैदिक ऋषियों ने 'वेद–दृष्टि' किस प्रकार प्राप्त की? इसका उत्तर है, ध्यान योग और तप के द्वारा। यह दोनों चीजें मानव को वह 'चक्षु' प्रदान करती हैं जिससे मानव वह 'दृष्टि' प्राप्त कर सकता है जिसकी उसे आवश्यकता है। आधुनिक वैज्ञानिक इस साधना पद्धति को कभी 'नव विज्ञान' के लिए अपनाते ही नहीं हैं। इस लिए आज का विज्ञान, उसका उपयोग और प्रभाव निरापद नहीं रह गया है। वैदिक ऋषियों ने कोई भी ऐसा आविष्कार अपने अनुसन्धानों के द्वारा नहीं किया जिससे समाज में भय पैदा हो। हम गर्व के साथ कह सकते हैं, हमारे ऋषि–मुनियों के सभी प्रकार के अनुसन्धान जीव–मात्र के कल्याण के लिए ही होते थे। विध्वंसकारी दृष्टि से छूटने के लिए 'ध्यानयोग' और तप से बढ़कर और कोई न तो रास्ता है और न तो कोई पद्धति ही है।

ध्यानयोग 'दृष्टि–निष्ठा' की पद्धति है। प्रक्रिया है, क्रिया योग है। उपनिषद् में इसे '**सत्यरूप सत्यम्**' (बृ.उ.2–20) कहा गया है। इस पद्धति से अर्जित शक्ति को प्राप्त करके वैदिक ऋषियों ने 'कृण्वतो विश्वमार्यम्' का उद्घोष किया था। बिना इसके अतुलित शक्ति प्राप्त किये 'वसुधैव कुटम्बकम्' का महान् दर्शन पूर्ण ही नहीं हो सकता है। **यत्र विश्वं भवति एकनीडम्**' (यजु.32–8) की उपलब्धि भी इस मार्ग के अपनाए बिना सम्भव ही नहीं है। अब योगध्यान की महत्ता पर विश्वभर को पता चल रहा है। यदि वैज्ञानिक भी इसे अपना लें तो विश्व के कल्याण में उनका अनुसन्धान निरापद हो सकता है। विश्व समाज में आज जो बेचैनी, एक विकट छटपटाहट, व्याकुलता और मानव–सृष्टि के विध्वंस का भय व्याप्त हो गया है उससे मुक्ति के लिए ध्यानयोग और तप सबसे निरापद, प्रभावकारी और उपयोगी हो सकते हैं।

ध्यानयोग की परम्परा में 'भूमा' (छांदो.07–23–1) को सुख का कारण बताया गया है और एक भौतिकता को नकारते हुए कहा है–'अल्प' में सुख नहीं, भूमा अमृत है और अल्प मर्त्य। हम बहुत छोटे सुख को ही जीवन के लिए प्रर्याप्त मान लेते हैं और इसमें ऐसे लीन हो जाते हैं कि वास्तविक सुख पर कभी ध्यान ही नहीं जाता है। ध्यानयोग और तप जीवन को सम्पूर्णता की ओर ले जाते हैं। सांसारिक जीवन जीते हुये भी हम इसे अपनाकर वास्तविक सुख की ओर निरन्तर बढ़ सकते हैं। वैदिक ऋषि गृहस्थाश्रम वाले हुआ करते थे। गृहस्थ–जीवन में रहते हुए भी उन्होंने 'ऋषित्व' को प्राप्त किया था। इस लिए गृहस्थ का त्याग वास्तविक सुख के लिए आवश्यक नहीं लगता।

ध्यानयोग और तप से अन्तर्दृष्टि की उच्चतर अन्तश्चेतना का जो विकास होता है उसे हम 'तृतीय नेत्र' कह सकते हैं। तीसरा नेत्र खुलने का यही रहस्य है। भारत ने इस पद्धति को अपनाकर ही 'जगत्गुरु' की पदवी प्राप्त की थी। यह पद्धति शारीरिक आरोग्यता, मानसिक आरोग्यता, आत्मिक आरोग्यता और पारिवारिक आरोग्यता के साथ ही साथ विश्व–सामाजिक–आरोग्यता का हेतु रही है। अन्य मत पन्थों में यह बहुत विरल रहा है। पतंजलि ने योग सूत्र में योग–साधना से प्राप्त होने वाली जिन

विभूतियों का विवरण दिया है उन्हें यहाँ गिनाने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती है। ये विभूतियाँ, उस लक्ष्य प्राप्त में बाधक हैं, जिसे प्राप्त कराना पतंजलि का लक्ष्य था। वह है विवेक–ख्याति अर्थात् प्रकृति और पुरुष के विवेक को प्राप्त करना और तत्पश्चात 'स्वरूप' को प्राप्त करना। इस प्रकार पतंजलि ने मानव को अन्तर–अनुसन्धान का जो नया अन्तर–विज्ञान योग–साधना के माध्यम से खोज करके प्राप्त करना शुलभ किया, वह मानव जाति के लिए सबसे बड़ा जीवन–विज्ञान था जिसे आज के वैज्ञानिक, अभी तक समझ नहीं पाए हैं या समझना ही नहीं चाहते हैं।

अन्तर्मन और अन्तर–प्रज्ञा के रहस्य भी अभी तक, आज के वैज्ञानिकों के लिए महत्त्व का विषय नहीं बन पाया है। पतंजलि ने ही सर्वप्रथम 'स्व' की प्राप्ति के लिए योग–साधना का मार्ग निरूपित किया। इसलिए हम जब भी योग–साधना और 'स्व' की प्राप्ति की बात करते हैं तो पतंजलि की इस महान् देन के सम्मुख नत्मस्तक होना ही पड़ता है।

योगी श्री अरविंद के 'अतिमानस' और 'अतिमानव' सम्बन्धी दृष्टि मूल 'वेद–दृष्टि' की परम्परा में ही प्रतीत होती है। जिनकी उन्होंने अपने ढंग की नयी व्याख्या करने का प्रयास किया है। वेद को समझना है तो 'वेद–दृष्टि' की गहराई को समझना अति आवश्यक है। '**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**' और

'**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**' की गहराई को समझकर हम वेद को भी समझ सकते हैं। इस लिए इन सूत्रों की गहराई को मानव को समझना आवश्यक है। मेरी समझ से इन सूत्रों की गहराई समझे बिना वेद की समुचित व्याख्या सम्भव नहीं है और न ही अध्यात्म–विज्ञान को और न ही मानव समाज की चुनौतियों का समुचित समाधान ही ढूढा जा सकता है। इस समय मानव समाज के समक्ष जितनी भी चुनौतियाँ हैं उनका जो समाधान ढूढा जा रहा है, वह इस लिए निरापद या पूर्णतः को नहीं प्राप्त हो पा रहा है क्योंकि इस दिशा में हमारा प्रयास भौतिक विज्ञान के द्वारा हो रहा है या समाज–विज्ञान के द्वारा अथवा मनोविज्ञान के द्वारा। जबकि इसका समाधान अध्यात्म–विज्ञान के द्वारा ही सम्भव है। इसलिए सही अर्थों में सबसे पहले समाधान की दिशा में अध्यात्म–विज्ञान को समझना होगा फिर चुनौतियों की गहराई समझते हुए, हम उनके अनुकूल समाधान की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' समाज–विज्ञान का ही सूत्र है जो हमें वेद में सर्वसुलभ है। यह सूत्र विकसित समाज–विज्ञान को सूत्र रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसे मानव को समझना आवश्यक है। इसे समझने के बाद समाज–विज्ञान सम्बन्धी लगभग सभी प्रकार की समस्याएँ समाधान की ओर आती हुई द्रष्टव्य होती हैं।

हमारे वैदिक ऋषि–महर्षियों की 'वेद–दृष्टि' कितनी व्यापक थी और कितनी अर्थपरक थी इसकी हम शायद ही कल्पना कर पाएँ। हम जो अर्थवत्ता समाज–विज्ञान की या अन्तर–विज्ञान की वेदों में पाते हैं, वह तो कहीं भी प्राप्त नहीं होती है। वेद किसी एक वर्ग, जाति, वर्ण या समुदाय के लिए नहीं प्रत्युत मानव मात्र के लिए हैं। यह उद्घोष उसी दिशा में है। **–यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।** (यजुर्वेद, 26/2) यह उद्घोष व्यष्टि–निष्ठा में सम्भव नहीं है, दृष्टि–निष्टा के कारण ही सम्भव है। इस वेद–दृष्टि को सग्रमता से समझकर हम मानव सभ्यता के उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकते हैं। वेद–दृष्टि को लेकर साधारणतौर पर लोगों में एक ऐसी धारणा है कि यह कृषि–प्रधान अर्थव्यवस्था पर ही आधारित हो सकता है। इस धारणा का कोई ठोस आधार नहीं है क्योंकि यदि धारणा को स्वीकार कर लिया जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि वेद नित्य नहीं हैं और सनातन सत्य की अभिव्यक्ति नहीं हैं। 'ऋत' शब्द की जो व्याख्या वेद में है उसके अनुसार यह सनातन नियम से कालातीत है। यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि यह मात्र श्रुति अर्थात् वेद–मंत्रों के लिए है, अरण्यकों, ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के लिए नहीं है। वेद के अतिरिक्त अन्य वैदिक वांगमय के ग्रन्थ ईश्वरीय वाणी नहीं हैं और वे कालातीत भी नहीं हैं– ये युगानुरूप हैं। कुछ शरारती लोगों द्वारा वेद और स्मृतियों को लेकर ही नहीं प्रत्युत ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों को लेकर भ्रम फैला दिया गया जिससे भारत के अतिरिक्त विदेशी विद्वानों में भी भ्रम पैदा हुआ। वैदिक धर्म की गिरावट के अनेक कारणों में यह भी एक बड़ा कारण रहा है। वेद की कसौटी को न समझने के कारण और भी अनेक प्रकार की समस्याएँ और भ्रम पैदा हुए। वैदिक धर्म में मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, शिव, राम व कृष्ण आदि के वचन और अन्य स्मृतियों के वचन ही नहीं ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् भी यदि वेद विरुद्ध हैं तो उन्हें मान्य नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इस परम्परा में वेद का सर्वोपरित्व निर्विवाद है। यही कारण रहा है कि वेद–मंत्रों की अक्षर–रक्षा ही नहीं प्रत्युत स्वर–रक्षा के लिए लाखों वर्षों से प्रयत्न किये जाते रहे हैं। ऐसे प्रयत्न कहीं और नहीं दिखाई देते हैं। इस लिए वेद आज भी उतने ही सुरक्षित हैं जैसे करोड़ों वर्ष पहले थे। मानव सभ्यता में यह एक मात्र आश्चर्य चकित करने वाली परम्परा रही है। वेद के लिए ही समर्पित गुरु–शिष्य परम्परा ने इस परम्परा को जीवित बनाए रखा।

वेद–दृष्टि की ओर विश्व समाज उन्मुख तभी होगा जब तक हम पुनः वेद–दृष्टि–निष्ठा को प्राप्त नहीं कर लेते हैं। हम अध्यात्म, ब्रह्म, ज्ञान या आत्म–विद्या के महत्व की चाहे कितनी भी बातें करें कोई नहीं सुनने वाला है। भारत को स्वयं को वेद–दृष्टि की ऊँचाई तक उठाना होगा। इस बात को

वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द, योगी श्री अरविन्द जैसे महान् वेद युगधर्मियों ने बहुत पहले कह दिया था। हम विदेशों की अंधी नकल करके स्वयं को विकसित बताने का प्रयास चाहे जितना करें, विदेशी हमारी ओर देखेंगे भी नहीं। इस बात को हमें स्वीकार करके ही आगे बढ़ना चाहिए। वरना हमारी पहचान ही नहीं मिटेगी प्रत्युत हम समाप्ति की ओर भी बढ़ सकते हैं। केवल भौतिक प्रगति से भारत वह ऊँचाई नहीं पा सकता जो उसे सबसे 'विशिष्ट' श्रेणी में खड़ी करती है। यह विशिष्टता, उसे वेद–दृष्टि–निष्ठा को स्वीकार करके, उसको जीवन और समाज का अंग बनाने के बाद ही प्राप्त हो सकती है। चारों आश्रमों और चारों पुरुषार्थों को स्वीकार केवल वेद–दृष्टि में ही है। इसका सन्तुलन ही यह सबसे बड़ी विशिष्टता है। शंकराचार्य या माधवाचार्य ने धर्म, अर्थ और काम ही नहीं बल्कि प्रारम्भ के तीन आश्रमों की भी उपेक्षा कर दी और केवल संन्यास को ही स्वीकार किया, इसलिए वे एकांगी रह गए। चारों का सन्तुलन रखना आवश्यक है। वेद–दृष्टि' ब्रह्म और क्षत्र के सामंजस्य पर विशेष बल देती है। – **यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चो चरतः सह। तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्रादेवा सहाग्निना।।** (यजु.20 / 25) अर्थात् जिस लोक में ब्रह्म–शक्ति और क्षत्र–शक्ति साथ–साथ चलती है, जहाँ देवता अग्निमय होते हैं, मेरी प्रज्ञा उसी को प्राप्त करेगी। वेद–दृष्टि इसी ओर हमें अग्रसित होने के लिए पुकार रही है। हमें श्रेष्ठत्व की ओर बढ़ने के लिए संकल्पित होना चाहिए। तभी हम अपने पुराने वेद–गौरव को प्राप्त कर पाएँगे।

आज भारत जिस मुकाम पर खड़ा है, वह भारत को उसके अपने पुराने गौरव को प्राप्त करने की दिशा नहीं है। इसलिए हमें आगे बढ़ने के पूर्व अपने प्रयासों और लक्ष्यों की समीक्षा करना आवश्यक है। विश्व के अन्य देशों के अन्धानुकरण से हम भले ही भौतिक प्रगति में विश्व की बड़ी शक्ति वाले देश में स्वयं को खड़ा कर लें, लेकिन भारत की जो पहचान और गौरव अध्यात्म–देश के रूप में रहे हैं, वह तो इससे कभी नहीं प्राप्त किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि वेद की उपेक्षा करके हम अपना पतन ही करेंगे, उत्थान नहीं होगा।

वेद और ब्रह्म

वेदों में ब्रह्म का वर्णन अलंकारों, समासों और बिम्बों के माध्यम से सूत्र–रूप में बहुतायत से मिलता है। चारों वेदों में विभिन्न नामों से ब्रह्म का निरूपण किया गया है। संसार में सबसे बड़ी शक्ति परमात्मा है। इसलिए परमात्मा या परमेश्वर को ब्रह्म कहते हैं। परमेश्वर से अधिक क्रिया, शक्ति, बल, ज्ञान और रहस्यमयता किसी अन्य शक्ति में नहीं है। इस लिए परमेश्वर को ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्माण्ड के कण–कण में प्रत्येक दिशाओं में, प्रत्येक तत्त्व व पदार्थ में, प्रत्येक प्राणी में अर्थात् जगत् के सभी जड़–चेतन में वही ब्रह्म व्याप्त है। वेद का यह मंत्र इन्हीं विशेषताओं को दर्शा रहा है। –

अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा।। (1 / 32 / 2)

कठोपनिषद् में सभी जीवों का आश्रय ब्रह्म बताया गया है–

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेणैव तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ।। (अध्या2, वल्ली5, श्लोक5)

अर्थात् कोई भी मरणधर्मा प्राणी न तो प्राण द्वारा जीता है और न अपान द्वारा। अर्थात् इन दोनों से भिन्न, उस शक्ति द्वारा प्राणी जीता है जिस शक्ति में ये दोनों प्राण और अपान 'आश्रित' रहते हैं। वह शक्ति ब्रह्म है। वेद के अनेक ऐसे मंत्र हैं जिसमें परमब्रह्म परमेश्वर के अविनाशी, अमर, निराकार और सर्वशक्तिमान–रूप का वर्णन किया गया है। इन मंत्रों से यह विदित होता है कि सकल ब्रह्माण्ड का आश्रय केवल ब्रह्म है। तात्पर्य यह है इस सकल संसार में परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई भी उपासना करने योग्य नहीं है। अथर्ववेद का यह प्रसिद्ध मंत्र इसी सन्दर्भ को प्रकट कर रहा है–

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद् विदुस्त इमे समासते।। (9 / 10 / 18)

अर्थात् ऋचाओं का प्रतिपाद्य जो अविनाशी परमरक्षक परमात्मा है, जिसमें ग्रह, उपग्रह, सूर्य और नक्षत्र आदि सब देव नितरां स्थित हैं, आश्रय पाए हुए हैं। जो स्वाध्यायी उसे नहीं जानता, वह ऋचाओं से क्या करेगा और जो स्वाध्यायी उसे जानते हैं, वे उस परमरक्षक परमेश्वर में समाहित हो जाते हैं। अर्थात् सम्यक् स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं।

वेद के अनुसार ऋचाओं का मुख्य प्रयोजन मोक्ष दिलाना है। जितने भी देवता, वायु, जल, अग्नि, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी, सभी को वही ब्रह्म धारण करने वाला है। इस संसार में कोई अपना विश्वसनीय मित्र, बन्धु, सखा, प्रेरक और रक्षक है तो वह ब्रह्म ही है। इसलिए जो लोग परमपिता परमेश्वर को छोड़कर अन्य किसी भी कल्पित देवता या देवी की स्तुति या उपासना करते हैं उनका जीवन व्यर्थ चला जाता है।

केवल परमात्मा की स्तुति एवं उपासना करने का निर्देश अथर्ववेद के इस मंत्र में बहुत ही प्रेरणादायक–रूप में दिया गया है–

माचिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत।। (20/85/1)

अर्थात् हे उपासक मित्रो! परमात्मा को छोड़कर किसी अन्य की विविध स्तुतियाँ कम किया करो। परमेश्वर से भिन्न की स्तुतियाँ करके विनाश को प्राप्त न होओ। भक्तिरस पैदा हो जाने पर मिलकर सुखों की वर्षा करने वाले परमेश्वर की ही स्तुति किया करो और स्तुति के लिए वैदिक सूक्तों का उच्चारण बार–बार किया करो।

वेद में जहाँ ब्रह्म का परिचय ऋचाओं के माध्यम से दिया गया है वहीं पर ऋचाओं के माध्यम से ही ब्रह्म स्वयं अपना परिचय दे रहा है। यह वेद की ही विशेषता है कि ज्ञान, ज्ञानदाता और ज्ञेय सभी का वर्णन वेदों में पाया जाता है।

ब्रह्म द्वारा आत्मपरिचय का सन्दर्भ

कई बार यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या वेद में परमात्मा ने स्वयं अपना परिचय वेदवाणी के कर्ता के रूप में दिया है? क्यों की वेद में तो परमात्मा का परिचय के साथ उसकी स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करना मानव का परम कर्तव्य बताया गया है। साथ ही ईश्वर के गुण, स्वभाव और कर्म को भी ऋचाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इस सन्दर्भ में वेद क्या कहते हैं, जानना आवश्यक है। जिस ब्रह्म को हम सृष्टिकर्ता, अविनाशी, निराकार, अवताररहित, सभी प्राणियों के कर्ता–धर्ता और संहर्ता जानते हैं, वह शबल ब्रह्म है। इसी के साथ यह प्रश्न उठता है कि क्या सबल ब्रह्म कोई अलग ब्रह्म है और कोई दूसरा भी ब्रह्म है जिसे हम नहीं जानते हैं? इस सन्दर्भ में वेद में निराकरण कर दिया गया है। ब्रह्म के दो रूप हैं, एक, शबल ब्रह्म और दूसरा, शुद्ध ब्रह्म। शुद्ध ब्रह्म को ही वेदों में नेति–नेति अर्थात् उसे नहीं जाना जा सकता है कहा गया है। इसमें कोई हलचल नहीं है। लेकिन शबल ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। इसी ब्रह्म को महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के दस नियमों में द्वितीय नियम में उल्लेख किया है। वेदों में उसका स्वयं परिचय देना अत्यन्त महत्त्व की बात है। अथर्ववेद के कई मंत्रों में इसके सन्दर्भ प्रमाण सहित दिये गये हैं। कुछ मंत्र यहाँ दिये जा रहे हैं–

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।
यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।। (अथर्व. 4/30/3)

अर्थात् ब्रह्म माता के रूप में कहता है, मैं ही स्वयं वेदों में, उन तत्त्वों का उपदेश करती हूँ जो तत्त्व देव–कोटि के लोगों और सर्वसाधारण मनुष्यों के लिए प्रेमपूर्वक सेवनीय हैं। प्रत्येक के कर्मानुसार जिस–जिस को मैं जिस–जिस योग्य समझती हू उस–उस को क्षत्रिय बनाती हूँ तथा उस–उस ऋषि तथा उस–उसको सुमेधा बनाती हूँ।

ऐसे ही अथर्ववेद के एक अन्य मंत्र में भी परमेश्वर ने स्वयं को ब्रह्माण्ड–रूपी **राष्ट्र** की स्वामिनी कहा है–

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तं मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूयावेशयन्तः।। (अथर्व 4/30/2)

अर्थात् मैं ब्रह्माण्ड–रूपी राष्ट्र की स्वामिनी हूँ। आठ वसुओं में परस्पर संगम मैं ही होकर रह रही हूँ। मैं यथार्थ ज्ञान सम्पन्न हूँ। पूजनीयों में सर्वश्रेष्ठ हूँ। ध्यान यज्ञ के ध्येयों में मैं ही सर्वश्रेष्ठ ध्येय हूँ। ध्यानी देव नाना स्थानों में उस मुझको धारणा ध्यान विशेष–रूप में करते हैं और अपने हृदयों में मेरी भावनाएँ बार–बार करते हैं। मैं सब में भरपूर स्थित होकर, उनका परित्राण कर रही हूँ।

ब्रह्म अपना स्वयं परिचय देता हुआ अपना स्थान और स्थिति को अथर्ववेद के इस मंत्र में इस प्रकार दिया है –

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मय योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वितिष्ठे भुवनानि विश्वोताम् द्यां वर्ष्मणोम स्पृशामि।। (अथर्व. 4/30/7)

अर्थात् मैंने इस जगत् के मूर्धास्थान में, पालक–सूर्य को उत्पन्न किया है। मेरा घर जल भरे समुद्रों तथा अन्तरिक्ष के भीतर है। मैं सब भुवनों में स्थित हूँ और मैं अपनी ऊँचाई द्वारा उस द्युलोक का भी स्पर्श कर रही हूँ। इन मंत्रों में ब्रह्म अपना परिचय मातृ–रूप में दिया है। अपनी विद्यमानता को बताते हुए ब्रह्म कहता है– वह ही सारे भुवनों का निर्माता है। वह द्युलोक से परे है। पृथ्वीलोक से भी परे है। उसकी महिमा महान् है। इस प्रकार वेद में ब्रह्म का स्वरूप अन्य सभी ग्रन्थों से भिन्न प्रकार का है। इससे उन सभी लोगों का संशय अवश्य मिट जाना चाहिए जो वेदों को मनुष्य–कृत मानते हैं।

वेद विषयक विचार

वेदों के विषय में मध्यकालीन आचार्यों, समाज सुधारकों और विद्वानों के विचार एक न होते हुए भी सभी ने वेदों की महत्ता, उपयोगिता, जगत्–कल्याण और उसमें निहित ज्ञान–विज्ञान को स्वीकार किया है। कतिपय वेद विषयक जगत् प्रसिद्ध महापुरुषों के विचार, वेद के सम्बन्ध में क्या हैं इसे भी जानना आवश्यक है। कुछ विशेष विचारकों, महापुरुषों और समाज सुधारकों के वेद–सम्बन्धी विचार इस प्रकार हैं–

महात्मा गौतम बुद्ध

आमतौर पर महात्मा बुद्ध को वेद विरोधी मानने की धारणा समाज में है लेकिन यह मान्यता और धारणा ही है। सत्यता तो इससे हटकर है। प्रसिद्ध बौद्ध पुस्तक सुत्तनिपात में गौतम बुद्ध के विचार वेद के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णित हैं–

एवं पि यो वेदगू भावितत्तो, बहुस्सुतो होति अवेध धम्मो।
सो खो परे निज्झपये पजानं, सोतावधानूपनिसूपपन्ने।। (` 322 नाबासुत्त)

अर्थात् जो वेद को जानने वाला है, जिसने स्वयं को साधा हुआ है, जो बहुश्रुत है और धर्म को निश्चिय पूर्वक जानने वाला है, वह निश्चिय से स्वयं ज्ञानी बनकर अन्यों को सिखाने का अधिकारी है, उन्हें ज्ञान दे सकता है। एक अन्य स्थान पर गौतम बुद्ध ने वेदों की महत्ता को इस प्रकार प्रतिपादित किया है–

विद्वा च सो वेदगू नरो इध, भवाभवे सग्ड.म् इमं विसज्जा।
सो वीततण्हो अनिघो निरासो, अतारि सो जाति जरांति बूमीति।। (सुत्तनिपात श्लोक1060)

अर्थात् वेद को जानने वाला विद्वान इस संसार में जन्म या मृत्यु में आसक्ति का परित्याग करके और तृष्णा तथा पापरहित होकर जन्म और वृद्धावस्था से रहित हो जाता है, ऐसा मैं कहता हूँ।

आचार्य सायण

आचार्य सायण ने वेदों का भाष्य किया। उन्होंने वेदभाष्य की भूमिका में वेदों को ईश्वर कृत माना है। –

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तहमं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम्।।

अर्थात् परमात्मा ने वेदों के ज्ञान के अनुसार ही जगत् की रचना की है।

गुरु नानकदेव

मध्यकालीन समाज सुधारकों में गुरु नानकदेव का नाम प्रमुख है। उन्होंने समाज को अन्धकार से निकालकर समाज में नई ज्योति जलाकर भटके समाज को नई दिशा दी। वेदों पर गुरु नानकदेव बहुत श्रद्धा रखते थे। वह वेदों को ईश्वरीय वाणी ही नहीं मानते थे प्रत्युत वेदों को सभी कल्याणों, ज्ञान–विज्ञान और व्यवहार की अद्भुत पुस्तक मानते थे।

हरि आज्ञा होए वेद, पाप–पुन्न विचारिआ। (मारुड खणे महल्ला 5 शब्द1)

अर्थात् ईश्वर की आज्ञा से वेद हुए, जिससे पाप–पुण्य का विचार कर सकें। यही नहीं, उन्होंने चारों वेदों को ज्ञान का कोष माना है–**ओंकार उत्पाती। किया दिवस सभराती। वण तृणत्रिभवन पाणी। चार वेद चारे खाणी।** (राग मारु महल्ला 5 शब्द 17) अर्थात् ओंकार (परमात्मा) ने ही दिन–रात, वन, घास तीनों लोक और पानी आदि बनाया और उसी ने चार वेदों को बनाया जो खानों के समान (ज्ञान कोष) हैं।

सन्त कबीर

महान् समाज सुधारक सन्त कबीर ज्ञानमयी शाखा के प्रमुख कवि माने जाते हैं। कबीर ईश्वर अवतार और मूर्तिपूजा का खण्डन ही नहीं करते बल्कि समाज की अन्य बुराइयों और पाखण्डों पर भी चोट करते हैं। उन्होंने समाज में तत्कालीन रीति–रिवाजों, परम्पराओं, शोषण और भेदभाव को जन्म देने वाले कर्मकाण्डों का भी खण्डन किया। वेद और अन्य शास्त्रों के सम्बन्ध में जो सुना उसको भी उन्होंने अपनी कविताओं में कहा है। वे वेदों को ईश्वर की वाणी मानते थे। और जो लोग वेदों को झूठा कहते थे उन्होंने उन कहने वालों को ही झूठा कहा। –**वेद कतेब कहहु मत झूठे, झूठा जो न विचारे।।** अर्थात् वेद शास्त्र को झूठा मत कहो। झूठा वह है जो विचार नहीं करता है।

आचार्य शंकर

महान् वेद भाष्यकर्ता वेदान्त दर्शन के सूत्र भाष्यकार आचार्य शंकर के दार्शनिक विचारों का लोहा प्राच्य ही नहीं प्रातीच्य विद्वान भी मानते हैं। वेदों के विषय में आचार्य शंकर का मन्तव्य है–**ऋग्वेदादि वेद शास्त्र अनेक विद्याओं से युक्त हैं। दीपक की भाँति सब पदार्थों का बोध कराने वाले हैं। इनमें इतना ज्ञान भरा हुआ है कि ये सर्वज्ञ जैसे दीखते हैं। इनका कारण ब्रह्म ही हो सकता है। महत ऋग्वेदादेः**

शास्त्रस्य अनेक विद्यास्थानोपवृंहितस्य प्रदीयवत् सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म (वेदान्त दर्शन का सूत्र भाष्य)

महर्षि दयानन्द सरस्वती

वेदोद्धारक और आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द वेदों की महत्ता, उपयोगिता, सर्वज्ञान के स्रोत, ईश्वरीयवाणी और उन्हें अपौरुषेय ग्रन्थ माना है। वेदों का ईश्वरीय वाणी और अपौरुषेय होने का प्रमाण महर्षि दयानन्द जहाँ वेदों से ही देते हैं वहीं पर वेद में वर्णित ईश्वर सम्बन्धी विचार, ज्ञान–विज्ञान, धर्म, अध्यात्म और अन्य अनेक विद्याओं को वे सम्मिलित मानते हैं।– **यस्माद्दचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वागि्ड.रसो मुखम्। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।।** (अथर्व 10/23/4/7/20) अर्थात् उस परमपिता परमेश्वर से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न हुए। इसी प्रकार रूपक अलंकार से वेदों की उत्पत्ति का प्रकाश ईश्वर करता है कि अथर्व मेरे मुख के समतुल्य, सामवेद मेरे लोमों के समान, यजुर्वेद हृदय के समान और ऋग्वेद प्राण के समान है। महर्षि दयानन्द का अभिमत है कि चारों वर्णों, तीनों लोकों, चारों आश्रमों, भूत, भविष्य और वर्तमान की सभी प्रकार की कल्याणकारी विद्याएँ वेदों से ही निसृत हुई हैं। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में वेदों का परमात्मा–कृत सिद्ध करते हुए लिखा है–'वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिए। जैसे माता–पिता अपने सन्तानों पर कृपा–दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं, वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है जिससे मनुष्य अविद्या–अंधकार, भ्रमजाल से छूटकर विद्या–विज्ञान–रूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहे और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जाये।

श्री अरविन्द

श्री अरविन्द आधुनिक युग के एक महान् योगी, वेदवेत्ता, कवि और दार्शनिक थे। उन्होंने वेदों का विस्तृत अध्ययन ही नहीं किया प्रत्युत वेद रहस्य और वेद सम्बन्धित अन्य अनेक पुस्तकों का सृजन भी किया। इससे वेदों को समझने में विद्वानों को सहुलियत हुई। उन्होंने वेदपरक पुस्तकों के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया कि वेद अपौरुषेय और ज्ञान–विज्ञान के अद्भुत स्रोत हैं। आर्काइब्स में (1 अप्रैल 1966) प्रकाशित श्री अरविन्द का वेदों के सम्बन्ध में यह विचार संग्रहणीय और अद्भुत है–"विश्व के अध्यात्म मत–पन्थ और चिन्तन का कोई भी अंग जो आज जैसा है, वैसा नहीं होता यदि वेद नहीं होते।' यह विश्व के किसी अन्य वाड्.मय के लिए नहीं कहा जा सकता है। वे वेदों को सभी का ज्ञान का स्रोत भी मानते थे। उन्होंने लिखा है–"वेद वह ज्ञान है जिसे पाने के लिए मानव का समस्त चिन्तन–मनन प्रयत्नशील है–**यस्मिन् विज्ञातेसर्वम् विज्ञातम्।।** अर्थात् जिसे जानने से सब कुछ जाना जाता है।

विदेशी विद्वानों के विचार

अरबी विद्वान लावी के वेद विषयक विचार

अरब जगत् में लाबी नाम के एक महान् अरबी कवि और विचारक हुए हैं। ये मुहम्मद साहब के 2400 वर्ष पूर्व पैदा हुए थे। इन्होंने अपनी अनेक कविताओं में वेदों और वैदिक धर्म की प्रशंसा की है। इनकी कविताएँ अस्माई मलेकुम् शरा द्वारा सीरुल–उकूल नामक पुस्तक में संग्रहीत हैं। इन कविताओं में वेद ही नहीं भारत भूमि की भी खूब प्रशंसा की गई है।

वहल तजल्लेयतुन् ऐनाने सहबी अरबातुन् हाज़ही युनाज्ज़ेल रसूलो ज़िक्रतान मिनल् हिन्दतुन्।

अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान के रूप में चारों पुस्तकें (वेद) हमारे मानसिक नेत्रों को आकर्षण और शीतल उषा की ज्योति देते हैं। परमेश्वर ने हिन्दुस्तान में अपने पैगम्बरों अर्थात् ऋषियों के हृदयों में इन चारों (वेदों) का प्रकाश किया। इतना ही नहीं, लावी ने विश्व को वेदों के पावन–पथ पर चलने की प्रेरणा देते हुए वेदों की इस प्रकार से प्रशंसा की है–**व अस्नैने हुमा ऋक् व अतर नासहीन क अखूवतुन् व अस्नात अला ऊदन् वहोव मशअरतुन्।** अर्थात् इन चारों वेदों में से शेष दो ऋक् और अतर (अथर्व) हमें विश्वभातृत्व का पाठ पढ़ाते हैं। ये दो ज्योति स्तम्भ हैं, जो हमें उस लक्ष्य (विश्व भातृत्व) की ओर अपना मुँह मोड़ने की चेतावनी देते हैं।

सत्यान्वेषक दाराशिकोह

फारसी के जानकार और गवेषक दाराशिकोह ने सत्य जानने की जिज्ञासा से अनेक धार्मिक पुस्तकों का अनुसंधान किया। अनुसन्धान के फलस्वरूप उन्होंने पाया कि वेदों में सारी मानवता के लिए एकता का संदेश है। ये वेद को ईश्वर की वाणी मानते हैं। **बाद अज़ तह़कीइन इमरातिब मालूक़शुद कि दरमियान ईक़ौमे क़दीमे पेश अज़ कुतब समावी चाह कुतब आस्मावी कि ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद व अथर्वणवेद बाशद बर इब्नाये आ वक्त के बुजुर्गेतर आहा आदम सफ़ी अल्लाह व अलीस्सल्लम अस्त बरज़मी अहकाम नाज़िल शुदा।** अर्थात् क्रमशः अनुसंधान करने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि इस प्राचीन

(हिन्दू) जाति में समस्त 'ईश्वरीय पुस्तकों' (कुरान, इंजील, तौरेत तथा जबूर आदि) के पूर्व चार ईश्वरीय पुस्तकें जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं, उस समय के ऋषियों पर जिनमें सबसे बड़े आदम (अथवा ब्रह्मा जी थे) समस्त आज्ञाओं के साथ ईश्वर की ओर से प्रकट हुई। इस प्रकार दाराशिकोह वेदों को ईश्वरीय वाणी मानते हुए इन्हें ज्ञान–विज्ञान की महान् अपौरुषेय ग्रन्थ माना है।

प्रो.मैक्समूलर

प्रोफेसर मैक्समूलर एक महान् विचारक और अनुसंधानकर्ता थे। उन्होंने वेदों को अपनी दृष्टि से देखने का प्रयास किया। महर्षि दयानन्द के वेद सम्बन्धी कार्यों के वे अत्यन्त प्रशंसक थे। उन्होंने वेदों को ज्ञान–विज्ञान व पराशक्ति का रहस्य बताने वाले और रहस्यमय ग्रन्थ कहा है। इन विदेशी विद्वानों के अतिरिक्त जैन दर्शन के विद्वान आचार्य कुमुदेंदु ,दार्शन डॉ. अल्फ्रेड रसेल वैलेस, नोबेल पुरस्कार विजेता मैटरलिंक, फ्रांसीसी विद्वान् लेओंदेल्बो, अमरीकी विचारक थोरियों, रूसी विद्वान बौलंगर, जर्मन दार्शनिक शोपरहार, विचारक मि.ब्राएन, फ्रांसीसी विद्वान जैकोलियट, अमरीकी विचारक डॉ.ह्यूम जैसे अनेक विश्वप्रसिद्ध विचारकों, विद्वानों, इतिहासकारों और गवेषकों ने वेदों को एक पराशक्ति का रहस्यमय ग्रन्थ मानते हुए इन्हें ज्ञान–विज्ञान, धर्म, अध्यात्म और मानव संस्कृति का अद्भुत ग्रन्थ स्वीकार किया है।

यह निरापवाद और निर्विवाद तथ्य है कि वेद से पुरातन विश्व में कोई ग्रन्थ नहीं है और वेदों में वर्णित मानव कल्याण जैसा अन्य कोई ज्ञान भी नहीं है। लेकिन इतना लिख देने या मान लेने से बात बनती नहीं। जब तक इस सबसे पुराने ज्ञान (पुराना शब्द वेद के लिए उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है, क्यों कि वेद सृष्टि के प्रादूर्भाव के साथ प्रकाशित हुए जिन्हें हर दृष्टि से अर्वाचीन कहा जाना चाहिए) का महत्त्व, उपयोग और प्रसार मानवता के लिए नहीं होता है। जिस प्रकार से अमूल्य हीरे–जवाहरात का महत्त्व उसके उपयोग में लाने पर समझ में आता है कुछ इसी प्रकार वेद–रूपी हीरे का उपयोग मानवता के कल्याण के लिए किया जाना आवश्यक है।

वेदों में ज्ञान–विज्ञान के सभी विषय

वेदों में इतने प्रकार के ज्ञान–विज्ञान, धर्म, अध्यात्म, व्यवहार, प्रेरणाएँ, उपदेश, मार्गदर्शन, दर्शन, गणित, आयुर्वेद, शिक्षा, विद्या, और अन्य अनेक विषयों की भरमार है कि यदि सभी का ठीक–ठीक, सन्तुलित और मर्यादित उपयोग किया जाए तो विश्व की लगभग सभी प्रकार की समस्याओं, संकटों, विपदाओं, दुखों और दुर्वृतियों का समाधान हो सकता है।

वेदों के नाम पर भारत और भारत के बाहर इतने प्रकार की भ्रान्तियाँ, अन्धविश्वास, पाखण्ड, जाल, वितण्डा और धारणाएँ फैले हुए हैं कि यह समझ पाना कठिन है कि वेद–ज्ञान मानवता की भलाई और सुख के लिए किस प्रकार से उपयोगी और कल्याणकारक हैं। इसी के साथ यह जान लेना भी आवश्यक है कि वेदों में किसी विशेष प्रकार के व्यक्ति, परिवार, समाज, वर्ग, जाति, वर्ण, देश या संस्कृति की भलाई या सुख का वर्णन नहीं है प्रत्युत सकल विश्व के मानव समाज ही नहीं ब्रह्माण्ड के सभी तत्त्वों, पदार्थों, दिशाओं, आकाशों, जलों, पृथ्वीयों, वायुओं और मानव मात्र की शाँति, कल्याण और प्रगति की कामना की गई है। कामनाएँ भी एक दो तरह की नहीं बल्कि अनेक प्रकार की हैं या कहें अनगिनत प्रकार की हैं। प्रार्थना एक–दो प्रकार की नहीं प्रत्युत अनेक प्रकार की हैं। भावनाएँ एक–दो प्रकार की नहीं बल्कि अनेक प्रकार की हैं। लेकिन सभी प्रसंग, सन्दर्भ और प्रकरण के अनुसार हैं। इन्हें समझना बहुत आवश्यक है। जब तक इन्हें नहीं समझा जाता, तब तक वेदों के सम्बन्ध में अतथ्य, अनगढ़, अविद्यायुक्त और भ्राँतियुक्त बातों को समाप्त करना असम्भव है। वेद–मंत्रों में आलंकारिक, सामासिक और बिम्बात्मक शैली का प्रयोग पग–पग पर है। इसलिए अक्सर स्वयं को ज्ञानी और विशेषज्ञ मानते हुए भी अनेक विद्वान भ्रम में पड़कर वेद से वह अतथ्य, असत्य और अनर्गल बातें, प्रतिकूल विचार निकालने लगते हैं जो उस वेद–मंत्र के मूलार्थ में होता ही नहीं। या जो न तो उस मंत्र का प्रकारण है, सन्दर्भ और न तो अवतरण ही। वेद–मंत्रों को समझने या समझाने के पूर्व पाणिनी कृत 'अष्टाध्यायी' और महर्षि यास्क कृत 'निरुक्त' का गहन स्वाध्याय और मंथन अवश्य कर लेना चाहिए। इससे जहाँ वेद–मंत्रों के अर्थ खुलने लगते हैं वहीं पर उनकी गहराई का भी पता चलने लगता है।

वेद और वेदांग

चारों वेदों में मानव समाज के कल्याण के लिए जितनी आवश्यक विद्याएँ, शिक्षाएँ, प्रेरणाएँ, उपदेश और विषयों की आवश्यकता है, उन्हें चारों वेदों के 20 हजार 516 मंत्रों में सूत्रवत् समावेश कर दिया गया है। चारों वेदों में मुख्यतः चार प्रकार के विषय समाहित किये गये हैं। ऋग्वेद में ज्ञानकाण्ड और ब्रह्मचर्याश्रम विषय, यजुर्वेद में कर्मकाण्ड एवं गृहस्थाश्रम विषय, सामवेद में उपासना कर्मकाण्ड और वानप्रस्थाश्रम विषय और अथर्ववेद में विज्ञानकाण्ड एवं संन्यासाश्रम विषय।

चारों वेदों के चार उपवेद हैं। ये हैं– ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का स्थापत्य या सर्पवेद। इसी प्रकार वेदों के छः उपांग हैं–**1–शिक्षा, 2– व्याकरण, 3–छन्द, 4–निरुक्त, 5– ज्योतिष और 6 कल्प।** ये सभी सूत्रशैली में लिखे गये हैं।

चारों वेदों में प्रतिपाद्य विषय जो भी हों लेकिन प्रत्येक वेद में मनुष्य के जीवन, परिवार, समाज, पृथ्वी की सुरक्षा और पर्यावरण की शुद्धि पर विशेष जोर दिया गया है। वहीं पर चारों वेदों में मनुष्य जीवन के करणीय और अकरणीय कर्मों और कर्तव्यों के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं। सौ वर्ष या इससे अधिक का निरोगी और सफल जीवन व्यतीत करने के लिए चारों वेदों का स्वाध्याय कई दृष्टियों से आवश्यक है। इसलिए कम से कम जीवन में वेदों का सांगोपांग चार बार स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। प्रथम स्वाध्याय ब्रह्मचर्याश्रम में अर्थात् 25 वर्ष के जीवन काल में। द्वितीय बार गृहस्थाश्रम में आने के बाद 26 से 50 वर्ष के मध्य में। तृतीय 51 वर्ष से 75 वर्ष के मध्य और चतुर्थ बार 75 वर्ष से आगे के जीवन काल में। इससे जहाँ आश्रमों का पालन करने में सहायता मिलती है वहीं पर सभी आवश्यक ज्ञान और विद्याओं के सम्बन्ध में भी जानकारी हो जाती है।

वेद केवल पढने–पढ़ाने, सुनने–सुनाने या लिखने–लिखाने के ग्रन्थ नहीं हैं प्रत्युत इसमें दी गईं शिक्षाओं, प्रेरणाओं, उपदेशों, आदेशों और ज्ञान–विज्ञान को जीवन में उतारकर एक आदर्श और पावन जीवन व्यतीत करने के भी प्रेरणा के स्रोत भी हैं। उदाहरण के तौर पर अथर्ववेद का आरम्भ एक आदर्श शिक्षा या विद्या से होता है। आदर्श शिक्षा क्या है? इसका जीवन, परिवार, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता के लिए इसकी कितनी महत्ता और उपयोगिता है, इसे भी जानना आवश्यक है।

वेद की आदर्श शिक्षा

वैयक्तिक जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय जीवन और सार्वभौम जीवन का आधार वेद में बताई गई आदर्श शिक्षाएँ हैं। ये मानव जीवन के सभी आवश्यक आधारों के लिए हैं ही, परिवार, समाज और मानवता के कल्याण में मानव के कर्तव्यों को समझाने के लिए भी हैं। वेद में शिक्षा और विद्या लगभग एक ही अर्थ में आए हैं। लेकिन आज के सन्दर्भ में शिक्षा और विद्या दोनों अलग–अलग विषय हैं। इस लिए वेद की शिक्षाओं को विद्या के भी अर्थ में लेने में कोई दोष नहीं है। लेकिन परा विद्या को शिक्षा के अर्थ में नहीं देखा जाना चाहिए। उदाहरण के तौर पर, **सा विद्या या विमुक्तये** के स्थान पर **सा शिक्षा या विमुक्तये** नहीं लिखा या समझा जा सकता है।

मूल गुणों की प्रकृति

एक श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए उत्तम संस्कार जिस प्रकार से आवश्यक हैं उसी प्रकार से उसे अच्छी शिक्षा और सत्य विद्या की भी आवश्यकता है। ऐसा व्यक्ति ही, परिवार, समाज, राष्ट्र, मातृभूमि और संस्कृति का सन्तुलित ढंग से अपना योगदान दे सकता है और अपने कर्तव्यों की पूर्ति भी कर सकता है। मानव में सत्त्वगुण, रजसगुण और तमस्‌गुण, जो मूल प्रकृति–रूप हैं और जो नित्य हैं, इनका कभी विनाश नहीं होता है। इस मूल प्रकृति से ही परम्परा और सकल जगत् का सृजन हुआ है। जगत् में जो प्रकाश और ज्ञान है उसका आधार सत्त्वगुण है। जीवन में सात्विक विचारों और आचरण का आधार भी यही सत्त्वगुण है। तात्पर्य यह है कि एक आदर्श मानव जीवन का निर्माण सत्त्वगुण के बिना सम्भव ही नहीं है। सत्त्वगुण से रहित मानव को मात्र दो–हाथ–पैरों का पशु माना गया है। इसी प्रकार क्रिया रजोगुण के बिना सम्भव नहीं है। जीवन में उत्साह, सत्साहस और उद्यम (परिश्रम से कार्य करना) का कारण रजोगुण है। रजोगुण के कारण ही युद्ध में सैनिक का वैरी के सम्मुख सत्साहस और उत्साह पैदा होता है। इस लिए जीवन में रजोगुण की भूमिका कम महत्त्व की नहीं है। तमोगुण के कारण निद्रा और स्थिरता का प्रादूर्भाव होता है। इससे यह पता चलता है कि तीनों गुणों की आवश्यकता सन्तुलित जीवन के लिए होती है, लेकिन सत्त्वगुण की प्रधानता इस लिए दी गई है कि यह ज्ञान, विज्ञान, प्रकाश और आनन्द का कारण है। ज्ञान, विज्ञान और प्रकाश सभी को चाहिए। उत्साह और सत्साहस भी जीवन के अति महत्त्वपूर्ण अंग हैं और स्थिरता भी किसी भी कार्य के लिए आवश्यक होती है। लेकिन तीनों का सन्तुलन होना चाहिए। जब तक इन तीनों का सन्तुलन नहीं होगा एक आदर्श, उन्नतिशील और आनन्दमय जीवन का निर्माण नहीं हो सकता है। भाव यह है कि तीनों का समन्वय होने पर ही, एक सम्पूर्ण जीवन का निर्माण सम्भव हो सकता है।

अथर्ववेद में अहंकार, महत्‌तत्त्व और पंच तन्मात्राओं का सूत्रबद्ध वर्णन किया गया है। सातों प्रकृति विकृति–रूप हैं। इसमें से सत्–रजस–तमस और महत्‌तत्त्व की विकृति है और अहंकार की प्रकृति है। कार्य भी है और कारण भी है। प्रकृति का अभिप्राय उपादान कारण और विकृति का अर्थ उपादान कारण से अभिव्यक्त हुआ कार्य। विद्वानों के अनुसार महत्‌तत्त्व विज्ञान–स्वरूप है। इसे महत् इस लिए कहा जाता है, क्योंकि इसका परिणाम सभी विकृ–तियों से महत् या बड़ा है और अपनी सब विकृतियों में समन्वित है। इसे हम सभी प्रकार के ज्ञान का भण्डार कह सकते हैं। प्रत्येक जीवात्मा के शरीर में चित्त की उपस्थिति इसी महत्‌तत्त्व के कारण ही है।

चित्त को समझने के लिए अहंकार को समझना आवश्यक है। अहंकार क्या है? अथर्ववेद के शिक्षापरक मंत्रों में इसकी सूत्रवत् चर्चा की गई है। मंत्र के अनुसार, चित्त में जब अहम भाव अभिव्यक्त होता है तो यह चित्त ही अहंकार कहा जाता है। यह अहंकार तीन प्रकार का होता है। 1–सत्त्वप्रधान अहंकार, 2– रजःप्रधान अहंकार, 3– तमसप्रधान अहंकार। सत्त्वप्रधान अहंकार से मन और ज्ञान्द्रियों की उत्पत्ति होती है। रजःप्रधान अहंकार से कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है तथा तम प्रधान अहंकार से पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। पाँच तन्मात्राएँ इस प्रकार हैं–**शब्द तन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, रस तन्मात्रा और रूप तन्मात्रा।** हमें जो शब्द, स्पर्श, गंध, रस और रूप का परिज्ञान होता है, वह इन्हीं तन्मात्राओं के कारण ही होता है। बिना तन्मात्राओं के सुख, दुख, उष्ण, शीत की अनुभति सम्भव नहीं है। इस प्रकार इन सात प्रकृतियों–विकृतियों द्वारा ज्ञान, अहम–भाव, संकल्प–विकल्प, इच्छा, ,ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और राग–द्वेष के अपने–अपने कार्य हो रहे हैं।

वेद में मातृभूमि की रक्षा, लगाव, पोषण और उसके प्रति प्रेम की भावना का स्फुटन शिक्षा के उपदेश द्वारा भी वर्णित है। वहीं पर आदर्श शिक्षा के अन्तर्गत लौकिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाओं को आत्मभूत करने की आवश्यकता बताई गई है।

लौकिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा की आवश्यकता

वेद में मातृभूमि, राष्ट्र, समाज एवं विश्व मानवता के कल्याण के लिए लौकिक और आध्यात्मिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया है। गुरु अपने शिष्य को लौकिक और आध्यात्मिक दोनों शिक्षाओं को दे जिससे शिष्य का समग्र विकास हो सके। आज ऐसी ही शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है। लौकिक का अभ्युदय और आध्यात्मिक को निःश्रेयस कहा जाता है। उपनिषद् में 'प्रणव' को धनुः कहा गया है। उदाहरण के तौर पर, वह धनुः है। यही ब्रह्म है। ओऽम ब्रह्म का निज नाम महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित किया है।

आध्यात्मिक साधकों, शास्त्रों और विद्वानों ने **ओऽम** का कई रूपों और तरीकों से वर्णन किया है। उपनिषदों के अनुसार ओऽम के जप द्वारा ब्रह्म के दो रूपों का स्मरण किया गया है। इसमें प्रथम है ब्रह्म का अकार्योपलक्षित रूप का और दूसरा है कार्योपलक्षित रूप का। इसे इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकते हैं–ब्रह्म के विशुद्ध रूप का जिसका कार्य जगत् के साथ सम्बन्ध नहीं है और ब्रह्म के उस स्वरूप का जिसका कार्य जगत् के साथ सम्बन्ध है। यही ब्रह्म विश्वकर्मा, विश्वधर्ता, विश्वसंहर्ता, माता–पिता, बन्धु एवं सखा आदि कहा गया है । यह ब्रह्म की ऐसी अवस्था होती है, जब ब्रह्म कार्य जगत् के सम्बन्ध से पूर्णतः रहित होता है। छान्दोग्य उपनिषद् में ब्रह्म के इन दो स्वरूपों को क्रमशः श्याम और शबल कहा गया है। श्याम अकार्योपलक्षित ब्रह्म है और शबल कार्योपलक्षित ब्रह्म। श्याम का अर्थ काली रात होता है। यह महाप्रलय, एक महाकाली रात्रि है जिससे केवल और केवल तमस का एक छत्र साम्राज्य होता है। इस लिए महाकाली प्रलय रात्रि से उपलक्षित ब्रह्म श्याम है। शबल का रूप ब्रह्म का कार्य जगत् से सम्बन्धित है। कार्य जगत् अनेक प्रकार के कार्य–रूपों वाला होता है। यही जगत् का अधिष्ठाता है। इस प्रकार, हम कह सकते हैं ब्रह्म के दो रूपों की शिक्षा जो उपनिषदों द्वारा दी गई है, गुरु अपने शिष्य को प्रदान करे जिससे शिष्य को ब्रह्म सम्बन्धी विद्या का विधिवत् ज्ञान हो सके। तात्पर्य यह है कि शिक्षा लौकिक विषयों के साथ ही साथ आध्यात्मिक विषयों से युक्त होनी चाहिए। यही आदर्श शिक्षा का रूप है। गुरु योग्य शिष्य को योग्य शिक्षा प्रदान करके अपने कर्तव्यों को पूर्ण करता है। और शिष्य योग्य गुरु द्वारा प्राप्त की गई शिक्षा को सात्विक विचारों से ग्रहण करके गुरु के प्रति सदा कृतज्ञ बना रहे।

इस प्रकार गुरु और शिष्य की वैदिक परम्परा को समझने के लिए वेदों का स्वाध्याय करना आवश्यक है। जीवन की पूर्णतः के लिए यह आवश्यक है।

सार्वभौम सदभावनाएँ

वेद में सकल विश्व समाज को एक मानव परिवार के रूप में देखने की प्रेरणा दी गई है। परिवार में एक दूसरे के प्रति द्वेष, कटुवचन, अविश्वास, विश्वासघात, स्वार्थ और अन्याय का कोई स्थान नहीं होता है। सभी में एक दूसरे के प्रति सद्भावना, सहृदयता, सुचिता, प्रेम, करुणा और सम्मान की भावना का होना आवश्यक होता है। इन सद्गुणों से ही एक आदर्श परिवार का निर्माण होता है। इसी प्रकार धरती पर शान्ति, सुख, प्रेम, अहिंसा की भावना, सदाशयता व एकता तभी सम्भव है जब भूमण्डलवासी प्रजाजनों के विचार छोटे–छोटे भूखण्डों तक सीमित न होकर भूमण्डल–व्यापी बन जायें। तात्पर्य यह है कि प्रजाजन अपने–अपने सीमित भूखण्डों को मातृभूमि और पितृभूमि न समझकर, समग्र पृथ्वी में मातृभूमि की भावना करें। इस प्रकार भूमण्डल के सभी निवासी प्रजाजन, जब स्वयं को विस्तृत और एक आदर्श परिवार के सदस्य समझेंगे तब इसमें सौहार्द, परस्पर सहानुभूति, परस्पर विश्वास का उदय होगा और ये परस्पर यथोचित सम्पत्ति विभाग करेंगे और इसमें परस्पर सेवा, मैत्री, रक्षा और शिवसंकल्प की सद्भावनायें जागृत होकर सभी को एक विश्व मानव के रूप में स्वयं को समझने की प्रेरणा बलवती होगी।

भूमिमाता की प्रार्थना

चारों वेदों में भूमिमाता (पृथ्वी) की विभिन्न नामों से प्रार्थना की गई है। कहीं 'अदिति' नाम से है तो कहीं 'गौ' के नाम से और कहीं अन्य नामों से। अथर्ववेद का बारहवाँ अध्याय जो 'भूमिसूक्त' कहलाता है में भूमिमाता का विभिन्न रूपों में गुणगान ही नहीं किया गया है प्रत्युत प्रजाजनों को पृथ्वीमाता के प्रति पुत्र जैसा व्यवहार करने, पोषण और संरक्षण की भी प्रेरणा दी गई है।

माता भूमिःपुत्रोऽहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तृ। (12/1/12।।)

अर्थात् समग्र भूमि मेरी माता है, मैं उसका (पृथ्वी का) पुत्र हूँ। मेघ मेरा पिता है वह हमारा पालन करता है। बिना धरती माता के हम जीवन और समाज की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। इसलिए सभी माताओं में सबसे ऊँचा स्थान हमारी धरती माता का ही है। इसके एक–दो कारण नहीं है बल्कि अनेक कारण हैं। जैसे पृथ्वी माता ही सबको जन्म देने वाली है और सबकी माता है।

विश्वस्व मातरम् (12/1/17) पृथ्वी से प्राणी–जगत् आश्रय प्राप्त करता है। (**विश्वम्भरा जगतो निवेशनी** (12/1/6) धरती सब को भोजन देती है।(**पृथिवीं विश्वभोजनम्** (18/4/6) आदि।

अथर्ववेद में सार्वभौम सद्भावना के साथ आत्मा और आत्मीयता का विकास, सबके लिए सुख–संवृद्धि की कामना, सभी के लिए उत्तम स्वास्थ्य की कामना, विद्या एवं विज्ञान की उन्नति में सतत् सहयोग, उत्तम शिक्षा लेकर अन्यों को इसके लिए प्रेरणा देना, सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझना, सत्य का उत्कट–प्रेमी बनना एवं असत्य से दूर रहने की भावना का विकास करना, मनुष्यत्व का विकास एवं दानवत्व का लोप करते रहना, पृथ्वी से हम जो कुछ लें, उसे धन्यवाद पूर्वक स्वीकार कर, मिल–बैठ बाटकर खाना एवं पोषण करना, सर्व–हितकारी, सर्व–मंगलमय, सर्व ज्ञानमय और सर्व–प्रेममय स्वभाव के द्वारा सब के प्रति मैत्री की सद्भावना रखना, 'मैं' के स्थान पर 'हम सब' की भावना रखना और किसी को बिना किसी उचित कारण के कष्ट, क्षति और दुख न पहुँचाना और शिवसंकल्प लेकर आत्मजयी के पावन–पथ पर निरन्तर बढ़ते जाने, जैसी बातें अथर्ववेद के भूमिसूक्त में अत्यन्त प्रेरक, ग्रहणीय और ज्ञानपरक दी गई हैं। वेद की जो विशेषता है वह इन्हीं सभी मूल्यों के कारण है।

वेद में मातृभूमि किसी जन्म–स्थान, खण्ड या सीमित क्षेत्र का नाम नहीं है अपितु सारी धरती को ही मातृभूमि माना गया है। यह भूमि हमारी माँ है। माँ के प्रति पुत्र के क्या कर्तव्य होते हैं और मातृभूमि से हमें कितना हव्य प्राप्त होता है, इसे हमें आत्मसात् करने की आवश्यकता है। मातृभूमि पर बसने वाले हम प्रजाजनों को मातृभूमि को समृद्ध बनाने वाले करणीय कर्मों का निर्देश, भूमिसूक्त में किया गया है। सूक्त के मंत्रों की प्रतिपद व्याख्या में मातृभूमि के प्रति निर्देशित बातों को पाठकगण अवलोकन कर, उसे आत्मसात् करेंगे जिससे सभी प्रकार के भावों, विषयों और मूल्यों को सहजता से समझ सकेंगे। सूक्त में किन–किन बातों का निर्देश है, यहाँ संकेत रूप में दिया जा रहा है। वर्णन में किसी विशेष भूमिखण्ड या विशेष समाज या राष्ट्र का गुणगान नहीं है प्रत्युत इस सम्पूर्ण धरा और एक महान् काल्पनिक राष्ट्र व समाज का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

सूक्त के प्रथम मंत्र में मातृभूमि की सात शक्तियों का वर्णन है। ये सातों शक्तियाँ किसी समृद्ध एवं महान् राष्ट्र और आदर्श समाज के लिए भी आवश्यक हैं। इन शक्तियों से विभूषित मातृभूमि हमेशा महिमामयी बनी रहती है। इन शक्तियों का वर्णन सूक्त के प्रथम मंत्र में किया गया है। ये शक्तियाँ हैं–**वृहद् ऋत, वृहद् सत्य, छत्र शक्ति, दीक्षा, तप, ब्रह्मशक्ति और यज्ञ।** सम्पूर्ण जगत् शक्ति से ही संचालित है। वह शक्ति अनन्त–रूपों में हो सकती है लेकिन जिनसे यह सारा ब्रह्माण्ड, जगत्, धरा, अन्तरिक्ष, और प्राणी–लोक संचालित है, वह मुख्य शक्ति है–ऋत और सत्य। सूक्त में इनका मन्थन किया गया है। मातृभूमि जिन शक्तियों को धारण करती है, उन शक्तियों को हम अपने राष्ट्र और समाज को उन्नतिशील बनाने में उपयोग करें, यह हम प्रजाजनों का कर्तव्य है। इसकी प्रेरणा सूक्त के कई मंत्रों में दी गई है।

एक आदर्श समाज का निर्माण करने में सभी प्रजाजनों को समृद्ध होना आवश्यक बताया गया है। जिस तरह से हमारे लिए मातृभूमि वन्दनीय होती है उसी प्रकार से हम प्रजाजनों के लिए राष्ट्र और समाज भी वन्दनीय होना चाहिए। मातृभूमि को वैभवशाली बनाने के लिए धन–सम्पत्ति, रत्न, धातुएँ, वनस्पतियाँ, खनिज, लोहा, कोयला, तेल, ताँबा और अन्य उपयोगी वस्तुओं या तत्त्वों का होना आवश्यक है। सभी चीजें इस धरती से ही पैदा होती हैं, लेकिन बुद्धिमान् व्यक्ति उन वस्तुओं का अपने उपयोग के काबिल बनाकर उसका ठीक–ठीक प्रयोग कर लेता है। कहा भी गया है–**रत्नं खनिः प्रसूते रचयति शिल्पी तु तत् शोभाम्।** अर्थात् खान रत्न को पैदा करती है, किन्तु शिल्पी उसमें शोभा पाता है। इस धराधाम पर अकूत सम्पदायें हैं। सूक्त में धन–सम्पदाओं के द्वारा कार्यों की सफलता एवं राष्ट्र को सुख–वैभव से सम्पन्न बनाने की प्रेरणा दी गई है। हम प्रजाजन अपनी बुद्धि को इस प्रकार से प्रखर बनायें कि धन–सम्पदा का हमेशा सदुपयोग करके, उन्नति की राह पर अनवरत आगे बढ़ते जायें। यदि हम ऐसा न कर सकें, तो धन–सम्पदा का होना व्यर्थ है। गाथा सप्तशती में कहा गया है–**भवन्त्यपि निष्फलैव धनऋद्धिर्भवति कृपणपुरुषस्य। ग्रीष्मातपसन्तप्तस्य निजच्छायेव पथिकस्य।।** अर्थात् कंजूस या बुद्धिमान व्यक्ति के लिए धन–सम्पदा होते हुए भी निष्फल ही है। जैसे ग्रीष्म की गर्मी से पीड़ित यात्री को उसकी अपनी छाया का कोई लाभ नहीं है। धन–सम्पदा उपयोग के लिए ही है। तात्पर्य यह है कि पृथ्वीमाता से हम जो धन–सम्पदा प्राप्त करें उसका उचित उपयोग करें। पंचतंत्र में कहा गया है–**अभोगस्य हतं धनम्।** अर्थात् जो व्यक्ति धन का उपयोग नहीं करता उसका धन व्यर्थ हो जाता है।

इस सकल ब्रह्माण्ड का आधार शक्ति को माना गया है। संसार की किसी भी प्रकार की सत्ता हो, शक्ति के बिना स्थिर नहीं रह सकती है। शक्ति का आधार सत्य है। सत्य के बिना शक्ति का कोई आधार नहीं। या कहें सत्य होगा तभी शक्ति होगी। इसी प्रकार सत्य और सत्ता के लिए 'ऋत्' का होना आवश्यक है। ऋत् ज्ञान की सत्यता को घोषित करता है। सत्य और ऋत् को वेद में सबसे अधिक महत्व दिया गया है। दोनों के बिना न तो मातृभूमि की उन्नति हो सकती है, न राष्ट्र की और न तो समाज की ही। वेद का विज्ञान कहता है कि ऋत् और सत्य के लिए निरन्तर अनुसन्धान करते रहना चाहिए। अनुसन्धान के साथ, उसे व्यवहार में लाना भी आवश्यक है। सत्य के सम्बन्ध में मनुस्मृति में कहा गया है–'**सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।** अर्थात् सत्य से पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य से सूर्य तपता है। वेद में कहा गया है–**सत्येनोत्तभिता भूमिः।** अर्थात् सत्य ने भूमि को उठाया हुआ है। पृथ्वी सत्य के आधार पर स्थित है। तात्पर्य यह है सत्य सभी का आधार है। पृथ्वी हो, आकाश हो, जीवन हो या कर्म, सभी का आधार सत्य है। यदि सत्य का आधार इनमें न हो तो ये टिक नहीं सकते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है–**सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्।** अर्थात् सत्य की नौकाएँ सत्कर्म करने वाले को पार उतार देती हैं। इस प्रकार, सत्य की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए।

वेद में सत्य और ऋत् के साथ 'उग्र' अर्थात् तेज को मातृभूमि, समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए धारण करना आवश्यक बताया गया है। उग्रता अर्थात् तेज व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण वसुधा के लिए आवश्यक है। तेज शुभसंकल्प, इच्छाशक्ति, दृढ़ता को बनाए रखने के लिए भी बहुत आवश्यक है। वेद में तेज को धारण करने की प्रेरणा दी गई है। वेद में कहा गया है–**तेज प्रशंसनीय है।** किरातार्नुनीयम् (भारवि) में कहा गया है–**सम्भावना ह्यधिकृतस्य तनोति तेजः।** अर्थात् अधिकार में लगाए गए पुरुष की प्रशंसा उसके तेज या कार्यक्षमता में वृद्धि करती है।

इसी प्रकार वेद में मातृभूमि और राष्ट्र की शक्ति के रूप में दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ को भी महान् आवश्यक शक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। दीक्षा का मतलब है किसी कार्य को दृढ़ता पूर्वक हाथ में लेना। दीक्षा शक्ति तभी प्राप्त होती है या उपयोगी होती है जब प्रजाजनों में संस्कार और शिक्षा भी हो। जो कार्य हाथ में लें उसे दृढ़ता पूर्वक करते हुए बिना बिचलित हुए– आगे बढ़ते जाना चाहिए।

इसी प्रकार तप शक्ति मातृभूमि एवं एक खुशहाल राष्ट्र के लिए अतिआवश्यक है। तितिक्षा सहन करना ही तप कहलाता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने कार्यों में निरन्तर लगे रहना, कभी पथ से कुपथगामी न होना। इसके लिए निरन्तर साधना की आवश्यकता होती है। ब्रह्म मातृभूमि की उन्नति की एक महान् शक्ति है। सर्वकल्याण का यह आधार है। वेद को ब्रह्म कहा गया है। ब्राह्मण को भी ब्रह्म कहा गया है। ज्ञान–विज्ञान को भी ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म का स्वाध्याय या ब्रह्म (ब्राह्मण) बनना दोनों अत्यन्त साधना के कार्य हैं। इसके लिए संकल्प, दृढ़ता और इच्छाशक्ति का होना बहुत आवश्यक है।

कृषि मानव सभ्यता, संस्कृति और कला की आधार है। कृषि का आधार जल है। जल का आधार भूमि पर लहराते सागर, कलकल करतीं नदियाँ और शान्ति का मृदुगान करते तालाब, झीलें और नहरें हैं । इन स्रोतों से जल मानव के उपयोग के लिए प्राप्त होता है। तृतीय मंत्र में जल का सदुपयोग करके कृषादि कर्म करने का उपदेश दिया गया है। साथ ही कृषि–कर्म के साथ व्यापार, शिल्प और अन्य कार्यों में रत प्रजाजनों को मैत्री भाव से कार्य करने की प्रेरणा भी दी गई है। अनुसन्धान तकनीक और हुनर तीनों का उपयोग करते हुए बिना किसी प्रकार के भेदभाव को अपनाने पर बल दिया गया है। ज्ञान–विज्ञान की उन्नति का लाभ कृषि और अन्य कार्यों को किस प्रकार मिले, इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है। जो कृषक–जन कृषादि–कर्मों में रत हैं उन्हें सम्मान, सुविधा और संसाधनों की पूर्ति करना सभी का पावन कर्तव्य होना चाहिए। कृषि अत्यन्त कठिन तपस्या का कार्य है। जितनी तितिक्षा कृषि में करनी पड़ती है अन्य किसी भी कार्य में नहीं।

भूमिमाता पर चारों तरफ हरियाली, सुखद वातावरण और वनस्पतियाँ लहराती रहें इसके लिए पर्याप्त जल के साथ उर्वर–भूमि, उनका रखरखाव और समुचित पोषण देना आवश्यक है। वेद–मंत्र में ऐसी कई अन्य बातों पर जोर दिया गया है। जल का वैदिक दर्शन में अत्यन्त महत्ता और व्यापकता है। आत्मा, परमात्मा, धर्म और प्रकृति को भी जल कहा गया है। आज जब कि विश्व स्तर पर जल की समस्या देखी जा रही है ऐसे में वेद का जल संरक्षण, उसके सदुपयोग और उसकी अर्थवत्ता अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं।

मातृभूमि सब का भरण–पोषण करने वाली है। मानव समाज की उन्नति में जल का महत्त्व निर्विवाद है, उसी प्रकार से अन्य संसाधनों, यातायात के साधनों का भी महत्त्व कम नहीं है। राष्ट्र को निर्विघ्न–रूप से आगे बढ़ाने वाले शासन–तंत्र और प्रशासकों का कर्तव्य है कि राष्ट्र–उन्नति में यातायात के साधनों को निरन्तर बढ़ाते रहें। उन्नति के लिए चारों दिशाएँ खुली हुई हैं। इस चतुर्थ मंत्र में प्रजाजनों को उन्नति के साधनों को निरन्तर बढ़ाने का उपदेश दिया गया है। ऐसे यातायात के साधन हों, जो आधुनिक हों, और जिन मार्गों पर ये साधन चलें वे खुले हुए होने चाहिए। अर्थात् सँकरें न हों। यातायात के साधन पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष में समान रूप से चलने वाले हों जो तीव्रगामी हों। यजुर्वेद में गमनागमन की चर्चा की गई है–**समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहा।** (यजु.6/21) यातायात की विस्तृत विवेचना यजुर्वेद के इस मंत्र में भी की गई है–**पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम्।** (यजु.17/67) अर्थात् मैं पृथ्वी से

अन्तरिक्ष में जाऊँ। अन्तरिक्ष से मैं द्युलोक में जाऊँ। द्युलोक का जो दुख रहित प्रदेश है उससे भी ऊपर का जो सुख तथा ज्योतिर्मय मण्डल है उसको प्राप्त होऊँ। यातायात का वर्णन ऋग्वेद के इस मंत्र में इस प्रकार किया गया है–**‘अनश्वो जातो अनमीशुरुक्थ्यो रथस्त्रि चक्रः परिवर्त्तते स नः।** (ऋ.4/36/1) अर्थात् बिना घोड़ों का, बिना लगाम का प्रशंसनीय तीन चक्र या पहियों वाला रथ इस मंत्र में बताया गया है। यहाँ यांत्रिक रथ के वाहन का संकेत किया गया है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष में चलने वाले वाहनों का वर्णन विविध–रूपों में किया गया है। वेद में यातायात, संचार–सम्बन्धी नामों का उल्लेख है जो इस प्रकार से है–यान, रथ, वाहन, नाव, विद्युद्रथ और विमादि। इसके अतिरिक्त वायुरथ, हस्ति, पतत्रि, श्येन, सुवर्ण और गरुत्मान का भी उल्लेख किया गया है। अनड्वान, अश्व, उष्ट्र और शकट जैसे शब्द भी वर्णित हैं।

वेद में मातृभूमि की वन्दना अनेक प्रकार से की गई है। हमारे पूर्वज जिस प्रकार से मातृभूमि की अनेक प्रकार से वन्दना अर्थात् पोषण, संरक्षण और सुरक्षा प्रदान करते आएँ हैं उसी प्रकार से हमें भी सतत् करते रहना चाहिए। इस धराधाम पर लाखों वर्षों से मानव समाज में ऐसे सूरवीर, तपस्वी, परोपकारी, ज्ञानी, विज्ञानी, साहित्यकार और राजनेता पैदा होते रहे हैं जिन्होंने अपने महान् कार्यों और अनुसन्धानों से भू–माता को गौरव प्रदान किया और उन असुर शक्तियों को परास्त किया जो मानव–सभ्यता और संस्कृति के लिए अभिशाप बने हुए थे। ऐसे दैवत्व के गुणों से परिपूर्ण देवों की भूरि–भूरि प्रशंसा की गई है। सूक्त के इस पंचम मंत्र का यही आशय संस्कृति के इस वाक्य में भी अत्यन्त उत्कृष्ट तरीके से बताया गया है। श्री हर्ष विरचित **नैषधीयचरितम्** के इस पँक्ति में उत्तम मानवों की प्रशंसा करते हुए कहा गया है–**बुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगगिताम्।** अर्थात् अच्छे लोग किसी का कुछ उपकार करके मुँह से नहीं कहते हैं अपितु करके दिखलाते हैं। मातृभूमि ऐसे परोपकारी व्यक्तियों से ही उन्नति को प्राप्त होती है। ऐसे व्यक्तियों का अमृततुल्य जीवन भरा किसे नहीं प्रिय होगा।

मातृभूमि का प्रजाजनों से सम्बन्ध माँ और पुत्र का है। जिस प्रकार से माँ पुत्र का पालन–पोषण करके उसे बड़ी करती है उसी प्रकार पुत्र माँ की सुरक्षा, सम्मान एवं भोजनादि की व्यवस्था करके अपने कर्तव्यों का पालन करता है। अथर्ववेद का यह मंत्र इसी बात को इस प्रकार कहता है–**अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवान्।** (अथर्ववेद 3/30/2) अर्थात् परिवार में माता–पिता, भाई–बहन, पुत्र–पुत्री, पति–पत्नी आदि सम्बन्ध से जीवन यापन करना होता है। प्रत्येक व्यक्ति परिवार में अनेक सम्बन्धों से युक्त होता है। पिता के आदेशों का पालन करने वाला बनें और माता के साथ ‘समान–मन–वाला’ बनें। सन्तान माता के मन के प्रतिकूल कार्य करने वाली न हो। तात्पर्य यह है कि मातृभूमि के लिए पुत्र (प्रजाजन) का हर विधि से पूर्ण समर्पण हो। यह धरती ऐसे श्रेष्ठ व्यक्तियों के लिए है जो उसे अपनी माता मानते हैं। जो स्वार्थ के वशीभूत होकर धरती माता के लिए अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते हैं, यह धरती उनके लिए नहीं है। धरती को हम किसी भी प्रकार से प्रदूषित न करें। सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् की भावना से ओत प्रोत होकर हम धरती माँ को हर प्रकार से संरक्षित करें। जैसी सुन्दर परम्परा भूमि माता पर चलती है, उस परम्परा को हम बनाए रहें। जिस प्रकार से देव–जन देवत्व का प्रचार–प्रसार करते हुए पापियों, अन्यायियों, आततायों और अधार्मिकों को परास्त करते रहे, यह पुण्य का कार्य, आगे भी निरन्तर करते रहें। समाज में सुभाषित का अनवरत् बने रहना आवश्यक है।

भू–माता की महिमा का कोई पारावार नहीं है। इस महिमा के कारण वेद में इन्हें अनेक नामों से पुकारा गया है। गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर धरती माता के अनेक नामों से पुकारा जाता है। वेद में अनेक मंत्रों में इसकी सूत्रवत् चर्चा की गई है। किसी मंत्र में वासुधानद’ कहा गया है तो किसी में ‘वेश्वानर’ तो किसी में ‘अदिति’। हे माँ! सर्वहितकारणी स्वभाव सभी प्रजाजनों को अत्यन्त प्रिय है। मातृभूमि का ‘इन्द्रऋषभा’ रूप अत्यन्त आदरणीय है। समाज एवं राष्ट्र में प्रजाजनों के हित के लिए जिस आदर्श, मर्यादित एवं प्रगतिशील व्यवस्था की आवश्यकता होती है उसका वर्णन पृथ्वी सूक्त के अनेक मंत्रों में विविध प्रकार से किया गया है। मंत्रों की गहराई, उपयोगिता और सुन्दरता को समझकर एक आदर्श एवं मर्यादित राष्ट्र और समाज का निर्माण किया जा सकता है।

वेद में विद्वान, परोपकारी, विद्यावान् और ऐश्वर्यवान व्यक्तियों को देव कहा गया है। निरुक्त में कहा गयाहै–**‘देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा।।’** विद्वान मनुष्य भी विद्यादि पदार्थों के देने वाले होने से ‘देव’ कहे जाते हैं। (द्योतन) इसी प्रकार माता–पिता (दीपन) आचार्य और अतिथि भी विद्या का दान और सत्योपदेशादि के करने से ‘देव’ कहे जाते हैं। इसी प्रकार सूर्यादि लोकों का प्रकाश करने के कारण परमेश्वर भी ‘देव’ कहाता है। भाव यह है देव वे ही कहाते हैं जो ‘देने’ का कार्य करते हैं। मातृभूमि की उन्नति में ‘दीपन’ ‘द्योतन’ दोनों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसी महिमामयी मातृभूमि की रक्षा निमित्त हम प्रजाजनों का कर्तव्य है कि सदैव जागृत रहें। हमारे पूर्वजों ने देवों के कार्यों को जो अपनाया था, उसे हम भी अपनाएँ। इससे जहाँ स्वयं की उन्नति होती है वहीं पर समाज एवं राष्ट्र की उन्नति होती है। वेद में कहा गया है–**‘देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम्’’** अर्थात् पितृदेव एवं गुरुदेव के कार्यों को अपनाना प्रत्येक जागरूक प्रजाजन का कर्तव्य है।

मातृभूमि की वन्दना हाथ जोड़कर या फूल माला विसर्जित करके नहीं अपितु उसके योगक्षेम पोषण, संरक्षण एवं सुरक्षा के द्वारा ही हो सकती है। अथर्ववेद के मंत्र में कहा गया है–मेरी मातृभमि स्वर्ग से बढ़कर है। सभी सुखों से बढ़कर है और सभी चीजों से अधिक महत्वपूर्ण है। संस्कृत के अनेक श्लोकों में मातृभूमि की भूरि–भूरि प्रशंसा की गई है। वहीं पर हिंदी और अन्य भाषाओं के कवियों ने भी मातृभूमि की वन्दना की है। महाकवि जयशंकर प्रसाद की ये

पंक्तियाँ जो देश पर लिखी गई हैं, लेकिन इसका भाव मातृभूमि परक ही है। –**अरुण यह मधुमय देश हमारा। जहाँ व्यथित अनजान पथिक को मिलता एक सहारा।** भूमिमाता जिस विश्वहितकारिणी–रूप को धारण करने वाली हैं, वह भी कम वन्दनीय नहीं है। इसी प्रकार जिस सत्य को सुवासित करने वाले स्वभाव का धारण करती हैं, वह भी अभिनन्दनीय है। और जिन अनगिनत जल धाराओं, नहरों, नदियों, झीलों, तालाबों, तालों, पोखरों और समुद्रों को धारण करती हैं, वह भी स्तुत्य हैं। ऐसी महिमामयी भूमिमाता के प्रति हम सब प्रजाजन एक पल के लिए भी विमुख न हों। यह श्रेष्ठ–भूमि मानव का निवास स्थान है। वेद में कहा गया है–**अहम् भूमिम्आददाय आर्याय।** यह भूमि श्रेष्ठ–जनों (उत्तम) अर्थात् गुण, कर्म व स्वभाव से उत्तम प्रवृति के लोगों के लिए ही है। अथर्ववेद के इस मंत्र में इसी बात को इस प्रकार से कहा गया है–**याम शिवनावामि मातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।** अर्थात् आत्मशक्ति से भरपूर देव–गणों की भूमि जो सब का कल्याण करने वाली है।

मातृभूमि विविध प्रकार के भावों, संस्कृतियों, धर्मों (कर्तव्य एवं कल्याणकारी नियम), शुभ प्रवृतियों और यज्ञों (सभी प्रकार के शुभकर्म) से सुसज्जित होकर सभी प्रजाजनों का कल्याण करने वाली है। ऐसी धरा पर, जिन पर जिनसे सम्पूर्ण प्राणी जगत् और अप्राणी जगत् का शाश्वत् धारा निरन्तर चलती रहती है और ऐसे कार्य, योजनाएँ, प्रवृतियाँ और धर्म का सतत् प्रवाह भी आगे बढ़ता रहता है।

वेद यज्ञ विविध सन्दर्भों में अलग–अलग रूपों एवं अर्थों में आया है। लेकिन परोपकार के सभी उत्तम कार्यों को एक स्वर में यज्ञ की श्रेणी में रखा गया है। भूमि सूक्त के तेरहवें मंत्र में विविध यज्ञों से सुसज्जित मातृभूमि की वन्दना की गई है। इस यज्ञ की वेदों में अत्यन्त भावपूर्ण और वैज्ञानिक ढंग से वन्दना और चर्चा की गई है। ऋग्वेद का प्रारम्भ ही यज्ञ से होता है। इसी प्रकार यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में विविध प्रसंगों में यज्ञों का वर्णन किया गया है। यजुर्वेद में यज्ञ की इतनी महत्ता दी गई है कि यज्ञ को यज्ञ के द्वारा सुसम्पन्न करने की बात कही गई है। कहा गया है–**'यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्'** । और आयु को भी यज्ञ से सम्बन्धित करते हुए कहा गया है–**'आयुर्यज्ञेन कल्पताम्।** (यजु. 18/29) यज्ञ अर्थात् परोपकार के सभी कार्य जब हम करें तो हमारी भावना 'इदं न मम्' की होनी ही चाहिए। अर्थात् तेरा तुझको सौंपते क्या लागे मेरा'। इस वसुन्धरा पर अनादिकाल से यज्ञ चलता रहा है। परमात्मा द्वारा रचाए गये महान् यज्ञ की शब्दों से प्रशंसा नहीं की जा सकती है। यजुर्वेद के इस मंत्र में इसी भावना का निरूपण किया गया है। –**'यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इष्मः शरद्धविः।।** (यजु.31/14) जब इस जगत् का कण–कण, दिशा–दिशा, प्रत्येक ऋतु, प्रत्येक ग्रह–उपग्रह ,वायु, जल, पर्वत, वन, उपवन और प्रत्येक प्राणी और वनस्पति यज्ञ में लगे हैं तो मानव तुम जिस धरा पर रहते हो उसकी खुशहाली, विकास, योगक्षेम, स्वतंत्रता, समृद्धि और पावनता के लिए यज्ञ करते चलो। यह मातृभूमि के प्रति तुम्हारा कर्तव्य और मानवता के प्रति तुम्हारा अवदान होगा। भूमि–सूक्त में इन सन्दर्भों को भिन्न–भिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया गया है।

लोक–परलोक दोनों को आनन्दमय बनाने के लिए यज्ञ से बढ़कर कोई अन्य कर्म नहीं है। यही यज्ञ, व्यक्ति को तीनों तापों (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक) से छुटकारा दिलाते हैं। यही यज्ञ, व्यक्ति को सांसारिक सुख और शारीरिक एवं आत्मिक सुख प्रदान करवाते हैं। यही यज्ञ, परिवार को सुख, शान्ति, सुसन्तान और मैत्री भाव से ओत प्रोत करने के साधन हैं, तो यही यज्ञ कृषि, व्यापार, उद्योग, शिक्षा और उत्तम स्वास्थ्य के कारण हैं। तात्पर्य यह है कि मातृभूमि का ऋण चुकाने और मानवता की भलाई के लिए यज्ञ कर्म को प्रजाजनों को कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

हमारी भावना यह होनी चाहिए कि 'सुजलाम् सुफलाम मलयज शीतलाम, शस्यस्यामलम्' के जिस महान् भाव और आदर्श–स्वरूप की अभिव्यक्ति मरुत स्वरों में, कलकल निनाद करती नदियों और घहराते समुद्र के मुखरित स्वर में सुनाई देता है, वह मातृभूमि हमेशा स्वाधीन बनी रहे।

मातृभूमि पर निवास करने वाले प्रजाजनों का स्वभाव, गुण और कर्म कैसा होना चाहिए इसकी प्रेरणात्मक चर्चा सूक्त के मंत्रों में दी गई है। उदाहरण के लिए, सूक्त के 16वें मंत्र में मधुरवाणी बोलने पर बल दिया गया है तो अगले ही मंत्र में मानव धर्म के पालन और ऐश्वर्यवान् अर्थात् मानव को सदगुण का भण्डार होना आवश्यक बताया गया है। स्पष्ट है ये सद्गुण ही प्रजाजनों को मातृभूमि के प्रति सम्मान और देश के प्रति एकता, शान्ति एवं समृद्धशाली भावना को ही नहीं पैदा करते अपितु सभी के लिए हर तरह से कल्याणकारी भी हैं। अथर्ववेद में कहा गया है–**वाचं वदत भद्रया** (अथर्व.3/30/3) अर्थात् हम लोग कल्याणकारी, सुखदायिनी व शान्तिदायिनी वाणी का प्रयोग करें। मधुर भाषण के लिए वेद बार–बार मानव मात्र को प्रेरणा देता है। ऋग्वेद में मृदु–वचन के कई लाभ बताये गये हैं। –**सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।** (ऋ.10/71/12) अर्थात् जिस प्रकार छलनी से पिष्ट द्रव्य छाने जाते हैं उसी प्रकार जहाँ विद्वान लोग अपनी वाणी को दोषों से पृथक करके, मधुरता से पूरित करके, कल्याणकारी वाणी को मन से शुद्ध एवं प्रेम से युक्त करके प्रयुक्त करते हैं वहीं पर मित्रता और लक्ष्मी निवास करती हैं। अतः वाणी को **'सं वदध्वं'** के आदर्श पर चलाना चाहिए।

भूमि–सूक्त में धर्मशासित मातृभूमि, धर्म शासित राष्ट्र, धर्म शासित राष्ट्रनायक (राष्ट्र–प्रमुख) और धर्मशासित प्रजाजन का अत्यन्त सारगर्भित वर्णन किया गया है। धर्म का यहाँ सन्दर्भ नियम, सद्गुण और कर्तव्यपारायणता से है। रामायण में कहा गया है–**'धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः''** अर्थात् धारण करने के कारण इसे 'धर्म' कहा गया है। धर्म सभी प्रजाओं को धारण किये हुये है। स्वधर्म अर्थात् कर्तव्य पर मर मिटना श्रेयस्कर माना गया है। भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं–**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मों भयावहः** अर्थात् अपने कर्तव्य कर्म पर मर मिटना ही श्रेयस्कर है। दूसरे के

कर्तव्य कर्म को अपनाना हानिकारक है। धर्मशासित शासक, प्रजा और मातृभूमि सदैव कल्याणकारी होते हैं। भूमि–सूक्त में ऐसे धर्मशासित लोगों को ऐश्वर्यवान् होने की कामना की गई है। स्पष्ट है कि धर्म (मानव के करणीय कर्तव्य और नियम) पर आरूढ़ जन चाहे किसी भी स्तर का हो, वह कभी अनिष्टकारी नहीं हो सकता है। इसलिए धर्म के पालन में कभी आलस्य या उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

वेद में अग्नि शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों और सन्दर्भों में प्रयुक्त हुआ है। अग्नि शब्द जहाँ परमात्मा, आत्मा, विद्युत के अर्थ में प्रयोग हुआ है वहीं पर वनस्पतियों, औषधियों, जल और सूर्य सहित अनेक वस्तुओं और तत्त्वों के लिए भी हुआ है, लेकिन सभी का सन्दर्भ और प्रकरण अलग–अलग है। ऋग्वेद का प्रारम्भ ही अग्नि से हुआ है। –**अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्न धातमम्।** (ऋ.1/1/1) वेदों से जो विज्ञान, व्यवहार, समाज और संस्कृति मानव में विकसित हुई उसमें उत्तरोत्तर अग्नि का महत्त्व बढ़ता ही गया। वेदों में अग्नि के अनगिनत अर्थ और सन्दर्भ हैं। मातृभूमि का स्तुतिगान करते समय भी अग्नि की महत्ता, उपयोग और उसके स्वरूप का भी बहुत मनोरम ढंग से चित्रण किया गया है। मंत्र में भूमिमाता को ही 'अग्नि–रूपा' माना गया है। यह अग्नि औषधियों, वनस्पतियों और विद्युत के रूप में स्फुरित हो रही है। अग्नि एक 'महाशक्ति' के रूप में है। इस ब्रह्माण्ड का कण–कण अग्नि से ही संचालित है। इसलिए अग्नि–स्वरूपा भू–माता हम प्रजाजनों के लिए सदैव वरेण्य है।

अग्नि के भौतिक, वैज्ञानिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक और दार्शनिक–रूप में वर्णन वेद से लेकर कालान्तर में सृजित संस्कृत और अन्य भाषाओं के ग्रन्थों में प्राप्त होता है। अग्नि अविनाशी है। हम प्रजाजनों में भी ऐसी ही अग्नि का उद्दीपन हो, ऐसी कामना करनी चाहिए। अग्नि सुखकारक है, निर्माणकर्तृ है और विध्वंसकारी भी है। यजुर्वेद में ऐसी अग्नि का वर्णन है जो सुवर्ण सदृश्य है –**अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान्। सहस्रदाऽअसि सहस्राय त्वा।।** (यजु.13/40) अर्थात् यह अग्नि ज्योति से ज्योतिष्मान् है। सुवर्ण सदृश्य सुखदायक वर्च से वर्चस्वान् है। अग्नि में ज्योति और वर्च (एनर्जी) होने से वह सहस्रों सुखों का दात्री है। अतः सहस्रों सुखों की प्राप्ति के लिए अग्नि स्वीकार है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से अग्नि गोचर होती है। इसमें अक्षर विज्ञान, भाषा विज्ञान एवं ध्वनि विज्ञान के दर्शन होते हैं। तात्पर्य यह है कि अग्नि का महत्त्व निर्विवाद है।

गन्ध, सुगन्ध और दुर्गन्ध तीनों से हम सभी परिचित हैं। लेकिन दिव्य–गन्ध का परिचय साधक–जनों को ही होता है। इस दिव्य–गन्ध से परिचय विशेष लोगों को एक विशेष स्थिति में ही होता है। सूक्त के मंत्रों में मातृभूमि को दिव्य–गन्ध से युक्त माना गया है। और मातृभूमि से प्रार्थना की गई है कि हे माँ! हम सभी प्रजाजनों को दिव्य–गन्ध से युक्त कर दें। मंत्र में प्रार्थना की गई है–**यस्ते गन्धः पुरुषेष स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः।** मातृभूमि के जिस दिव्य–गन्ध का वर्णन मंत्रों में है, वह सभी प्राणियों और वनस्पतियों में व्याप्त है। लेकिन उसका अनुभव हम नहीं कर पाते। आवश्यकता इस बात की है कि हम इस रहस्यमयी दिव्य–गन्ध को समझें और इसका जीवन में उपयोग करें।

मातृभूमि के गुणों एवं स्वभाव की चर्चा हम करते हुये यह पाते हैं कि वेद में इसके उस जीवन्त धैर्यमयी, क्षमाशीला और पावन–स्वरूप का वर्णन है, जो प्रत्येक व्यक्ति को इसके प्रति समर्पण के लिए प्रेरित करता है। कितने उत्कृष्ट–रूप में मातृभूमि को वेद में प्रस्तुत किया गया है। उस उत्कृष्टता को हम स्वाध्याय के द्वारा स्वयं अनुभव करें। सूक्त के एक मंत्र में कहा गया है–हमारी मातृभूमि शुद्ध, पवित्र और क्षमाशीला है। माँ जब ऐसे विशेष सद्‌गुणों से भूषित है तो हम प्रजाजनों को भी तो माँ के इन गुणों को धारण करना चाहिए। मातृभूमि के प्रति मेरा निवेदन है–**मातृभूमि के रूप अनगिनत /गुण व स्वभाव महान् हैं। आओ हम इसका करें वन्दन। इसमें सब का है कल्याण।** भाव यह है कि सूक्त के इन मंत्रों में मातृभूमि का उस स्वरूप, गुण व स्वभाव का दिग्दर्शन कराया गया है, जो सारी मानव जाति को एकता, सहृदयता, क्षमा, दया, अहिंसा, प्रेम, मैत्री और करुणा जैसे सदगुणों से भरने का कार्य कर सकता है। आज के सन्दर्भ में जब मानवता के सामने अनेक विकट चुनौतियाँ हैं, भूमिसूक्त के मंत्र अत्यन्त उपयोगी, महत्त्वपूर्ण और व्यावहारिक जान पड़ते हैं।

आज सम्पूर्ण धरती पर ऐसी अनेक समस्याएँ, जटिलताएँ, चुनौतियाँ, विसंगतियाँ, दुर्प्रवृतियाँ और विषमताएँ व्याप्त हैं जिससे मानव सभ्यता के लिए खतरा पैदा हो गया है। सूक्त के मंत्रों में इनसे सचेत किया गया है कि सभी दिशाओं से मातृभूमि की रक्षा करें, उसे हिंसा से बचाएँ और उन दानवीय प्रवृतियों से बचाएँ, जो मानव सभ्यता के लिए घातक बन गई हैं।

एक आदर्श समाज और उत्तम राष्ट्र के प्रजाजनों और उनका आपस में व्यवहार कैसा होना चाहिए इसका वर्णन सूक्त के मंत्र में किया गया है। जो मातृभूमि सभी के लिए वन्दनीय है, उस मातृभूमि पर निवास करने वाले प्रजाजनों की दैनिक दिनचर्या सन्तुलित और व्यावहारिक होनी चाहिए। शिक्षा, समृद्धि और शारीरिक शक्ति के आधार पर एक दूसरे के प्रति भेदभाव और अलगाव (द्वेष) या अन्य प्रकार की भेदभाव की भावना न हो। तात्पर्य यह है कि धन–सम्पत्ति को लेकर धनी–निर्धन से द्वेष या भेदभाव की भावना नहीं होनी चाहिए। मैत्री की भावना एक दूसरे के प्रति हमेशा बनी रहनी चाहिए। अमानवीय आचरण किसी भी दृष्टि से स्वीकार नहीं। देवत्व की उत्कृष्ट भावना से ओत प्रोत होकर हम एक सन्तुलित एवं सुखी समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में योगदान देने वाले बनें। महाराज भतृहरि ने बहुत सुन्दर बात कही है–**मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।** अर्थात् मन सन्तुष्ट हो, तो कौन धनी और कौन निर्धन। विचार–पूर्ण जीवन ऐसा ही होना चाहिए। ईशावास्यपोनिषद् में कहा गया है–**मा गृधःकस्यस्विद् धनम्।** आसक्त मत हो,

धन किसका है? भाव यह है कि धन–सम्पत्ति पर कभी इतराना या अहंकार नहीं करना चाहिए। इस विचार को जीवन का अंग बनाकर धनी व्यक्ति को निर्धन के साथ मित्रता पूर्वक व्यवहार करना चाहिए।

यह कहा जाता है कि भारत–भूमि ही ऐसी महान् भूमि है जहाँ वर्ष में षड् ऋतुएँ होती हैं। ऐसी अदभुत भूमि पर रहने के लिए देवता भी तरसते हैं। लेकिन वेद में मातृभूमि या धरती पर षड् ऋतुएँ होने की बात कही गई है न कि केवल भारत पर। सूक्त का मंत्र कहता है, हे मातृभूमि! ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर, हेमन्त और वसन्त हमारे लिए सदैव कल्याणकारी हों। इतना ही नहीं, रात–दिन भी हमारे लिए सतत् शुभकारी बने रहें। महाकवि कालिदास ने '**ऋतुसंहार**' में इन ऋतुओं का अत्यन्त मनोरम चित्र खींचा है। मातृभूमि से प्रार्थना करते हुए प्रजाजन कहते हैं– हे भू–माता! हम कभी इन ऋतुओं से व्यथित न हों। देखा जाए तो साधक जीवन वही है तो तितिक्षा सहते हुए कभी घबराता नहीं है और समाजसेवा के लिए तो कसौटी ही तितिक्षा सहन करना बताया गया है। लोक कवि घाघ–भण्डरी कहते हैं –**माघ मास की बादरी और क्वार का घाम। ये दोनों जो कोई सहे, वह करे पराया काम।** जिसके अन्दर तितिक्षा सहन करने की शक्ति है वही सेवा का कार्य कर सकता है। भाव यह है कि छः ऋतुओं की विकरालता (स्थिति) को सहन करके भी हमें अपने कार्यों में निष्ठा के साथ लगे रहना चाहिए। छः ऋतुओं भारत में ही होती हैं, वेद के इस मंत्र से सत्य प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि मातृभूमि की वन्दना भारतभूमि की ही वन्दना नहीं है अपितु इस धरती के सभी मानवों की यह मातृभूमि है।

गृहस्थाश्रम अन्य तीन आश्रमों का आधार है। गृहस्थ जीवन में सभी सुख–सुविधाओं, विषयों और वस्तुओं का उपयोग करने की छूट दी गई है। धन–ऐश्वर्यों से भरपूर कीर्ति, आयु, पशु और अन्य आवश्यक कामनाएँ गृहस्थ जीवन में रहकर ही करने की बात वेद कहते हैं। सुसंस्कारों से युक्त सन्तानोत्पत्ति और उन्हें विद्या, ज्ञान और विज्ञान से सम्पन्न करना, गृहस्थ जीवन का ही कर्तव्य बताया गया है। वर वधू के उत्तम स्वास्थ्य एवं दीधायु जीवन की कामना करता है तो वधू वर के उत्तम स्वास्थ्य की कामना करती है।

इसी प्रकार सर्व सुविधा युक्त आवास की भी कामना वेद में की गई है। भूमिसूक्त के 38 वें मंत्र में इसका गूढ़ वर्णन किया गया है। कहा गया है– **यस्यां सदोहविर्घाने यूपो यस्यां निमीयते।** सर्व सुविधायुक्त, सुन्दर और सन्तुलित गृह निर्माण करने का सन्देश अथर्ववेद के कई मंत्रों में दिया गया है। एक और मंत्र जिसमें गृहनिर्माण के सम्बन्ध में बहुत उपयोगी बात कही गई है–**उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत। शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि।** (अथर्व. 9/3/1) अर्थात् भवन या घर सब प्रकार की उत्तम उपमायुक्त हों, एक द्वार के सामने दूसरा, एक कमरे के सामने दूसरा कमरा फिर चारों ओर से परिमित और व्यवस्थित हों। घर के द्वार चारों ओर के वायु को स्वीकार करने वाले हों, दीवारें, छत, फर्श, प्लास्टर सभी अच्छी प्रकार बनें हों। तात्पर्य यह है कि एक उत्तम आवास में जो सुविधाएँ होनी चाहिए, वे हों। घर के वाह्य रचना ही उत्तम नहीं होनी चाहिए प्रत्युत आन्तरिक रचना भी हर तरह सुन्दर, सन्तुलित और सुगठित हो। इसकी भी चर्चा अथर्ववेद में की गई है। स्पष्ट है प्रजाजनों के लिए आवासीय–व्यवस्था उत्तम होने से समाज एवं राष्ट्र की उन्नति और व्यवस्था भी अच्छी प्रकार से बनी रहती है। हमारी मातृभूमि सर्व सम्पन्न हो, विद्वान, पुरुषार्थी, विद्यावान्, ज्ञानार्थी, साहित्यकार, वैज्ञानिक, राजनेता, न्यायविद्, दार्शनिक और शिक्षक हर तरह से अपने क्षेत्र में अनुकरणीय हों, ऐसी भावना वेद–मंत्रों में स्थान–स्थान पर की गई है।

इसी प्रकार मातृभूमि के महान् ऋषि–महर्षियों की अदभुत एवं अनुपम परम्परा, हमारी विरासत है। ये ऋषि–महर्षि अपनी तपस्या एवं ज्ञान सम्पदा से विश्व को ज्ञान–विज्ञान, धर्म, अध्यात्म एवं श्रेष्ठ विचारों से सम्पन्न करते रहे हैं। सूक्त के 40 वें मन्त्र में ऐश्वर्य, 41 वें में नृत्य गान, 42 वें में समृद्ध कृषि से सम्पन्न मातृभूमि का वर्णन किया गया है। यजुर्वेद में भी इसी प्रकार के भावों को अभिव्यक्ति करने वाले वर्णन पाए जाते हैं। यजुर्वेद में भूमिमाता की वन्दना करते हुए इसके पोषण एवं सुरक्षा का वर्णन सुन्दर ढंग से किया गया है–**नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या....। कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।।** (यजु.9/22) हे मातृभूमि! तुझे प्रणाम हो। हे भूमिमाता! तुझे शतशः वन्दन है। तुझे कृषि के लिए हम स्वीकार करते हैं। तुझे अपनी रक्षा के लिए ग्रहण करते हैं। तुझे ऐश्वर्य के लिए हम चाहते हैं और तुझे अपने पोषण के लिए वन्दनीय समझते हैं। कृषि के योग्य भूमि कैसे बने इसका उपाय कई मंत्रों में बताया गया है।–**कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्** (यजु. 18/9) अर्थ है–कृषि के लिए भूमि को उपयोगी बनाते समय यज्ञ का प्रयोग करो। फिर कहा, **वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्** (यजु. 18/9) इस पृथ्वी पर हम कृषि करते हैं उसके लिए वृष्टि भी यज्ञ के द्वारा समर्थ बनी हुई प्राप्त होनी चाहिए और फिर अन्न भी यज्ञ के द्वारा पैदा हो, ऐसी कामना की गई है–**वाजश्च मे, प्रसवश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।** (यजु.18/17) अर्थात् मेरा अन्न और पृथ्वी से उत्पन्न होने वाला ऐश्वर्य यज्ञ के द्वारा सम्पन्न एवं समर्थ हो।

सूक्त के मंत्रों में मातृभूमि की विविधता, रमणीयता, दिव्य गुणों और अपरमित सहनशीलता जैसे अनेक गुणों का वर्णन किया गया है। मातृभूमि की विविधता के कारण इसकी दिव्यता प्रकट होती है। महिमामयी माँ के गोद में चलने वाले धर्मवीर योद्धाओं और अनुसन्धानकों के कारण प्रजाजन निरन्तर हर प्रकार से रक्षित और समृद्धशाली होते रहते हैं। असंख्य रत्नादि और धन–सम्पदा से प्रजाजनों में ऐश्वर्य एवं सुख निरन्तर बढ़ता जाता है। सूक्त के 44 वें मंत्र में ऐश्वर्य का कितना अदभुत चित्रण किया गया है, यह देखते ही बनता है। –**निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे**'। भाव यह है कि धरती माता से उत्पन्न रत्नादि, खनिज और अन्य उपयोगी धातुएँ प्रजाजनों को सुखी बनाती है। धन के बिना सुख कहाँ और सुख के बिना जीवन कैसा। लोक कहावत है–'**पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख**

घर में हो माया। इसी सन्दर्भ में संस्कृत के महाकवि भरवि 'किरातार्जुनीयम्' में कहते हैं– **अर्थाद् धर्मश्च कामश्च स्वर्गश्चचैव नराधिप।** धन से धर्म और धर्म से काम और स्वर्ग सिद्ध होते हैं। मनुष्य धन का दास है। भरवि कहते हैं–**अर्थस्य पुरुषो दासः दासो ह्यर्थो न कस्यचित्।** अर्थात् मनुष्य धन का दास है, किन्तु निश्चित ही धन किसी का दास नहीं। तात्पर्य यह है कि मातृभूमि पर निवास करने वाले प्रजाजनों को ऐश्वर्यशाली होना ही चाहिए। ऐश्वर्य राष्ट्र और समाज के लिए उन्नति का आधार है।

मातृभूमि शत्रुओं, असुरों और हिंसक–जनों से ही रहित न हो प्रत्युत विषैले जीव–जन्तुओं से भी रहित हो। भूमिसूक्त के मंत्र में इसकी चर्चा अनुपम ढंग से की गई है। हिंसक जीव–जन्तु कृषि को ही नहीं हानि पहुँचाते है बल्कि प्रजाजनों को भी हानि पहुँचाते हैं। सूक्त में श्रेष्ठ मार्गों का निर्माण, पाप कर्मों की निंदा, शोभायुक्त सुन्दर पक्षियों और सर्व–कल्याणकारी रात–दिन का वर्णन भी सुन्दर ढंग से किया गया है।

मातृभूमि की उन्नति, विकास और विस्तार का वर्णन भी सूक्तों में किया गया है। इसके अतिरिक्त जीवन की सफलता, विरोधी शक्तियों पर विजय प्राप्त करने और मातृभूमि के कल्याण में प्रजाजनों द्वारा किये गये कार्यों की चर्चा भी मंत्रों में की गई है। यह भी बताया गया है कि मातृभूमि दुष्टों का दलन करने और प्रजाजनों का सदैव हित करने वाली है। प्रजाजनों में पाँच गुणों का समावेश हमेशा बना रहना चाहिए। आलस्य, प्रमाद, क्रोध और मद से दूर हमेशा सुसंस्कृतवान, पर्यवेक्षण शक्ति–युक्त, तेजस्विता, उन्नति और इच्छाशक्ति से भरपूर होना चाहिए। इन गुणों से ओत प्रोत होकर प्रजाजन मातृभूमि को हर तरह से सम्पन्न और खुशहाल बनाने का कार्य करें।

मातृभूमि प्रजाजनों को सुख, शान्ति, अन्न, पानी और समस्त भोग पदार्थ प्राप्त कराती रहे–इसका वर्णन भी मंत्र में सुन्दर ढंग से किया गया है। सर्व सामर्थ्यमयी भूमिमाता सब के लिए सदैव वन्दनीय बनी रहे। इस पर शासन करने वाले सम्राट (राष्ट्र प्रमुख) इसकी रक्षा में सदैव तत्पर रहें। सर्व मंगलमय करने वाली मातृभूमि पर निवास करने वाले प्रजाजन, अपने–अपने अवदान का भाग– समर्पित करते रहें। विविध प्रकार की चर्चाएँ सूक्त के मंत्रों में बहुत सुन्दर ढंग से की गई है। सूक्त के तिरसठ मंत्रों में मातृभूमि को सर्व सम्पन्न, सर्वरक्षित, सर्व पोषित और सर्व ऐश्वर्ययुक्त बनाने के लिए जिस प्रकार से विविध प्रकार की भावनाएँ व्यक्त की गई हैं, वह अत्यन्त स्तुत्य और आनन्द को देने वाली हैं।

मातृभूमि की वन्दना क्यों

अथर्ववेद का बारहवाँ अध्याय जो पृथ्वी या भूमि–सूक्त के नाम से जाना जाता है में 63 मंत्रों की व्याख्या विभिन्न प्रकार से विद्वानों और वेदभाष्यकारों ने की है। सभी ने इसे अपने दृष्टिकोण और धारणा से देखने का प्रयत्न किया है। वेद के प्रति पुस्तक लेखक के अन्तःकरण में हमेशा से एक पवित्र और जिज्ञासु–भावना रही है। इसलिए वेद–मंत्रों के किये गये विद्वानों के भाष्यों को पढ़ने और समझने का प्रयत्न करता रहा। 2006 की बात होगी। वेद मंत्रों का स्वाध्याय, उनका गहन चिन्तन करने, उन्हें जीवन में अंगीभूत करने के लिए हमारे एक शुभचिंतक वेदमनीषी विद्वान श्री प्रज्ञानचन्द ने मुझे अथर्ववेद के भूमि–सूक्त का स्वाध्याय हिंदी अर्थ सहित करने की प्रेरणा और सलाह दी। इसी प्रकार वैदिक वांगमय के मनीषी विद्वान डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी जी ने इस ओर बार–बार प्रेरित किया और मार्गदर्शन दिया। उनका मार्गदर्शन मेरे लिए स्वाध्याय, लेखन और व्याख्यान के लिए सदैव प्रेरक रहा है। मैं आजीवन सभी मार्गदर्शन और प्रेरणा देने वाले मनीषियों को हृदय से आभारी रहूँगा।

मैंने उक्त दोनों मनीषियों की सलाह स्वीकार करते हुए भूमि–सूक्त की काव्यमय व्याख्या (लेखक राजमणि पाण्डेय) पढ़ा। फिर वेद मार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति कृत 'वेद का राष्ट्रीयगीत' का भी अवलोकन किया। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक पुस्तकों के माध्यम से यत्र–तत्र भूमि–सूक्त की व्याख्याएँ देखता रहता था। फिर एक दिन सहसा विचार आया कि क्यों न इस विषय में अपनी रुचि के अनुसार कुछ कार्य करूँ। क्योंकि भूमि–सूक्त के सभी मंत्र मेरी बुद्धि और चेतना के लिए अत्यन्त संग्रहणीय और आनन्द देने वाले रहे हैं। शब्दार्थ के बाद उसकी व्याख्या भूमिपरक कैसे हो सकती है, इस पर गहन चिन्तन किया करता। बस, फिर क्या था संकल्प को पंख लग गये। उस समय मैं नांगलोई में एक स्वदेशी आंदोलन के स्वदेशी केंद्र पर रहा करता था। वेद के प्रति अतिशय प्रेम, सद्भावना और लगाव रखने वाले मेरे अन्य शुभचिन्तकों ने भी मुझे वेद–मंत्रों के चिन्तन के सम्बन्ध में प्रोत्साहित किया। आठ वर्ष के अन्तराल में दो बार मैंने मंत्रों की व्याख्याएँ करने का प्रयास किया। मैं वेदों का अधिकारी विद्वान न होते हुए भी ईश्वरीय कार्य मानकर इसे अपनाया, जो मुझे सुख देने वाला रहा है। पाठकों को यदि इससे सुख, प्रेरणा और ज्ञान मिलता है तो यह मेरे परिश्रम का प्रतिफल होगा।

वेद के सम्बन्ध में मानव समाज में अनेक प्रकार की धारणाएँ, मान्यताएँ, भ्रान्तियाँ और जिज्ञासाएँ रही हैं। विशेषकर अथर्ववेद को लेकर बहुत गलत और मिथ्या धारणाएँ एवं मान्यताएँ जनसाधारण में ही नहीं प्रत्युत विद्वानों, इतिहासकारों में रही हैं। मुझे लगा, अथर्ववेद को ही अधिक 'समझने' का प्रयास करना चाहिए। इसके निमित्त कई पुस्तकों का स्वाध्याय किया और अथर्ववेद में वर्णित विषय को गहराई से समझने का प्रयास किया। वैसे तो अथर्ववेद में कई विषय वर्णित हैं, लेकिन मातृभूमि, राष्ट्रोत्थान और आदर्श समाज जैसे विषय मुझे अधिक प्रिय लगे। मातृभूमि शब्द अपने आप में इतना गहरा, मननीय, प्रेरक, सुखद और पावन लगता है जिस पर लाखों पंक्तियाँ वारी जा सकती हैं।

वेद में मातृभूमि के अत्यन्त विस्तृत, गाम्भीर्य, गवेषणात्मक और शोभायमान अर्थ हैं। वेद भगवान कहते हैं–यह सारी वसुधा ही मातृभूमि है। यह सब की माँ है। सारे प्राणी–अप्राणी जगत् इस पर निर्भर हैं। विकास, प्रगति, उन्नति, सुख, शुभ, लाभ और आनन्द की प्राप्ति मातृभूमि की कृपा के बिना सम्भव नहीं है। सारी समस्याओं, संस्कृतियों, धर्म,

अध्यात्म, साहित्य, विज्ञान, दर्शन, व्यापार, कृषि, शिक्षा, व्यवहार, संस्कार और गणित का विस्तार सभी की उद्‌भावना ही, मातृभूमि को वन्दनीय मानकर हुई है। आज के विकास और नये विज्ञान के दौर में अनेक ऐसी जटिल समस्याएँ हैं जिनका समाधान वेद में बहुत ही कारगर ढंग से दिया गया है। यदि सम्पूर्ण वसुधा को मातृभूमि मान लिया जाए तो राष्ट्रों के आपसी लड़ाई–झगड़े समाप्त हो जाएँगे। यह प्रेरणा भूमिसूक्त के मंत्रों में दी गई है।

पृथ्वी–सूक्त में एक आदर्श मातृभूमि, एक उत्तम राष्ट्र और एक आदर्श समाज के निर्माण के लिए क्या आवश्यकता होती है और हम प्रजाजनों का मातृभूमि या समाज के प्रति क्या कर्तव्य होने चाहिए, किस प्रकार के अवदान इसके लिए समर्पित करने चाहिए, जैसे अनेक सन्दर्भ मातृभूमि सम्बन्धित, इसमें समावेशित किये गये हैं।

मानव सभ्यता का विकास ही इस पृथ्वी के संरक्षण में हुआ है। इसी भूमि पर जहाँ मानवीय शक्तियों का विकास हुआ वहीं पर अमानवीय शक्तियाँ भी अपना पोषण इसी से प्राप्त करती रही हैं। भौतिक, रासायनिक, भौगोलीय, खगोलीय, सूक्ष्मजैविक, मनोवैज्ञानिक, कृषि वैज्ञानिक और यंत्र वैज्ञानिक उन्नतियाँ भी इसी भूमि पर हुईं। सुख–दुख, हानि–लाभ, जीवन–मरण, उत्थान–पतन, शुभ–अशुभ और सत्य–असत्य की धाराएँ इसी मातृभूमि पर चलती आई हैं। अनेक प्रकार की संस्कृतियों, सभ्यताओं, कलाओं के अतिरिक्त अनगिनत भाषाएँ, साहित्य, दर्शन और प्रवृतियों की धाराओं का उद्‌गम स्थल भी यही भूमि है। इन सब विशेषताओं को एक साथ प्रस्तुत करने वाला अथर्ववेद का बारहवाँ अध्याय अन्य अनेक विशेषताओं से भी युक्त है। वेद की चर्चा तो होती है लेकिन अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त के 63 मंत्रों की चर्चा ऐसी नहीं होती, जैसी इसकी महत्ता को देखते हुए होनी चाहिए।

वेद में इस धरती के प्रति क्या दृष्टिकोण है, इसका वर्णन चारों वेदों में यत्र–तत्र पाया जाता है। वहीं पर अथर्ववेद में मातृभूमि का एक साथ किया गया वर्णन, विश्व साहित्य में दुर्लभ है। आज विश्व में 'विश्व सरकार' और 'विश्व का एक शासन–तंत्र' की बात हो रही है। अन्तरजाल (इंटरनेट) मोबाइल (वायुदूत) और अन्य वायुयंत्रीय यंत्रों के विश्व स्तर पर फैलाव के कारण सारा जगत् एक गाँव या परिवार सरीखा हो गया है। पत्रकारिता की भाषा में कहें तो 'दुनिया सिकुड़ गई है'। ऐसे में पृथ्वी–सूक्त में सारी वसुधा को ही मातृभूमि के रूप में वन्दना की महत्ता और भी बढ़ जाती है।

वसुधा के सभी जन

जिस प्रकार से पृथ्वी को भूमिमाता के रूप में वन्दना की गई है, उसी प्रकार से धरती पर बसने वाले सभी लोगों का 'प्रजाजन' के रूप में सम्बोधन है। धरती माँ का प्रजाजनों से कैसा सम्बन्ध होना चाहिए। धरती से प्रजाजन अकूत धन–सम्पत्ति, ज्ञान–विज्ञान, अन्न, रत्न, खनिज, वनस्पतियाँ और औषधियाँ प्राप्त करते हैं। उसके बदले में प्रजाजनों (धरती के पुत्रों का) का क्या कर्तव्य होना चाहिए इसका वर्णन अत्यन्त, सारगर्भित, चिन्तनीय और संग्रहणीय है। माँ जिस प्रकार से अपनी सन्तान का पालन–पोषण, संरक्षण, योगक्षेम एवं सुरक्षा का दायित्व संभालती है उसी प्रकार से पुत्र का कर्तव्य माँ के पोषण, संरक्षण, सुरक्षा एवं योगक्षेम (स्वतंत्रता) को बनाये रखने की होनी चाहिए। यही भाव सभी सूक्तों के प्रमुख विषय हैं।

जिस प्रकार से माता सदैव पूज्या और वन्दनीया होती है उसी प्रकार से हमारी मातृभूमि भी प्रजाजनों के लिए सदैव पूज्या (सम्माननीया) एवं वन्दनीया होनी चाहिए। यह भूमि सब की रही है और सब की ही रहेगी। सभी संस्कृतियाँ, सभ्यताएँ और कलाएँ और साहित्य इससे ही उत्पन्न हुए हैं। इस लिए धरती के किसी एक खण्ड के लिए न तो अहंकार पालन चाहिए और न तो दुर्भावना ही रखनी चाहिए। यही पृथ्वी–सूक्त का मुख्य सन्देश है।

इस धरती पर सैकड़ों राष्ट्र और देश हैं। अनगिनत संस्कृतियों और सभ्यताओं वाले लोग हैं। लेकिन किसी के मन में यह नहीं होना चाहिए कि वे 'विशेष' हैं। वे ही उन्नतिशील संस्कृति और कला वाले देश के निवासी हैं। या उनकी जाति या वर्ग 'विशेष' है।

धरती के हर ओर सडकें बनाईं गईं हैं। यातायात के साधन हर जगह मौजूद हैं। हर जगह उन्नत साहित्य, संस्कृतियों, कलाओं और विज्ञानों का सृजन हुआ है। हर स्थान पर उन्नत मस्तिष्क वाले लोग बसते हैं। सभी ने अपनी क्षमता, योग्यता, परम्परा में अपने गुण–कर्म–स्वभाव में उन्नति की है। इस सत्यता को ध्यान में रखकर यदि सारी मानव जाति मानवता के एक सूत्र में बधकर रहे और विकास करे तो एक 'आदर्श विश्व समाज' की स्थापना हो सकती है।

यह विश्व गीत है

हमने वेद के भूमि–सूक्त के 63 मंत्रों को 'मातृभूमि की वन्दना' नाम दिया है। इसके पीछे **अनेक कारणों** में एक कारण यह भी है कि यह सारी धरती हम मानवों की क्रीड़ा–स्थली है। यह ही जीवन–उत्थान, पतन की साक्षी और संरक्षण देने वाली है। तात्पर्य यह है कि यह धरती (भूमिमाता) ही मानव सभ्यता की आधार–भूमि है। यह एक–दो कारणों से नहीं प्रत्युत अनेक कारणों से वन्दनीया है। इन दृष्टियों से इसका 'मातृभूमि की वन्दना' नाम देना उपयुक्त लगता है। यह विश्व–जनों का गीत है। इसमें किसी विशेष भूमि, राष्ट्र और समाज को अभिलक्षित करके कुछ भी नहीं कहा गया है। साथ ही एक सर्वसम्पन्न मातृभूमि का निर्माण कैसे हो, एक उत्तम राष्ट्र में किन–किन चीजों और व्यवस्थाओं का होना आवश्यक है, एक आदर्श समाज की स्थापना किन–किन उपायों से सम्भव हो सकती है, ये सभी विषय इसमें सम्मिलित हैं। इस दृष्टि से भी यह विश्व गीत है जिसे **मातृभूमि की वन्दना** के रूप में देखने का प्रयास किया गया है। कल्पना कीजिए, यदि सभी राष्ट्र सीमा रहित हो जाएँ, मानव जनित सभी प्रकार के भेदभाव, जात–पाँत, छुआछूत, धनी–निर्धन और अन्य सभी भेद

समाप्त हो जाएँ, तो वह मानव समाज कैसा होगा? यही भाव पृथ्वी–सूक्त के मंत्रों में मुझे दृष्टि गोचर हुआ। ईश्वर की अनुकम्पा से हमें जो भी अन्तर्भाष हुआ उसके अनुसार इसकी व्याख्या करने का प्रयास किया है। आशा ही नहीं विश्वास है, यह मानव समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

मंत्रों के शीर्षक

भूमि–सूक्त के मंत्रों की व्याख्या जहाँ अत्यन्त कठिन कार्य है उससे अधिक कठिन कार्य उनका शीर्षक देना। सत्य बात तो यह है कि वेद के किसी मंत्र का कोई शीर्षक दिया ही नहीं जा सकता है, क्योंकि मंत्र के एक–एक शब्द और एक–एक चरण कई प्रकार के भावों को द्योतित करते हैं। इस कारण कई भावों को किसी एक शीर्षक (जिसका एक निश्चित भाव है) प्रकट नहीं किया जा सकता है। इसलिए जो भाव मेरी उक्त मंत्र की व्याख्या (विवृति) में प्रमुखता से दिखाई दिया, मैंने उसे शीर्षक के रूप में दे दिया। पाठकगण, उक्त मंत्र का भाव दूसरा समझकर उसका नया शीर्षक भी दे सकते हैं। यह इसलिए संकेत करना पड़ रहा है कि पाठकगण कहीं इस भ्रम में न पड़ जाएँ कि जो शीर्षक उक्त मंत्र का दिया गया है उसका मात्र वही भाव है अन्य गौड़ हैं। व्याख्या के दौरान मुझे अनुभूति हुई कि मंत्रों में निहित भाव गूढ़ विचारों या दर्शनों को प्रकट करते हैं। हम अपनी क्षमता और साधना के द्वारा इसमें निहित गाम्भीर्य विचारों को चिन्तन के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

मंत्रों का स्वाध्याय

मंत्रों को सहजता से समझने के लिए उसकी व्याख्या (विवृति) तक के क्रम को सरलता से समझा जा सके इसके लिए हमने प्रत्येक मंत्र के नीचे उसका शब्दार्थ, फिर भावार्थ उपरान्त विवृति की है। शब्दार्थ के गूढ़ार्थ को समझने के उपरान्त मंत्र में निहित भाव (जो मुझे समझ में आया) को भावार्थ में दिया है। फिर विवृति मंत्र के भावों को समझते हुए की गई है। वेद–मंत्रों का स्वाध्याय करते समय यह ध्यान देना चाहिए कि मंत्र को कम से कम दो या तीन बार पढ़ने के उपरान्त उसके शब्दार्थ को ध्यान से पढ़ने के बाद, फिर भावार्थ को हृदयगम् करना चाहिए अर्थात् विवृति पर ध्यान दें। जैसे मैं बता चुका हूँ कि वेद–मंत्रों का अर्थ निकालना अत्यन्त कठिन है। इस लिए सर्वप्रथम वेद के प्रति स्वयं को समर्पित करके फिर एक–एक शब्द, फिर चरण को समझते हुए, उसमें निहित भावों का चिन्तन करते हुए ही आगे बढ़ना चाहिए। मंत्र को कंठस्थ करके यदि उसका चिन्तन भाव के साथ करें तो और भी अच्छा होगा। भूमि–सूक्त के सभी मंत्र कोई साधारण पुस्तक के श्लोक नहीं हैं। यह आत्मा का सबसे उत्तम सात्विक भोजन है, जो इस भोजन को करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे वे उसकी सात्विकता का स्वाद भी अनुभव कर पाएँगे। पाठकगण, पुस्तक का स्वाध्याय करेंगे साथ ही अपने जीवन, परिवार, समाज, राष्ट्र, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म और सकल विश्व के निमित्त उसके सन्देशों को हृदयगम करके, उसे जीवन में उतारेंगे ऐसी आशा करता हूँ।

सर्वप्रथम में केंद्रीय हिन्दी निदेशालय के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिसके आर्थिक सहयोग से कृति का प्रकाशन हो सका।

अमुख लिखने के लिए मेरे विनम्र निवेदन को स्वीकार करने वाले पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि जी का हृदय से आभार व्यक्त करते हुए उनके प्रति नम्रता से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ और उनके शतायु होने की शुभकामना करता हूँ।

इसी क्रम में योगगुरु मेरे प्रेरक श्री विजय सैनी का आभार व्यक्त करता हूँ जिनका मार्गदर्शन और सहयोग अनवरत मिलता रहता है।

वेद के लिए समर्पित देवगुरु पदवी–भूषित डॉ. प्रज्ञान चंद्र जी का आशीर्वाद और श्री सतीश आर्य का सहयोग कैसे भुला सकता हूँ जिनका सारा जीवन ही वेद के लिए समर्पित है।

प्राचार्य श्री यज्ञ शरण कुलश्रेष्ठ जी जिनका मेरे जीवन–विकास यात्रा में अमूल्य सहयोग और आशीर्वाद रहा है, जिन्होंने वेद–कार्य के लिए मुझे सदैव प्रोत्साहित किया, उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। साथ में भाई श्री कुलदीप कुलश्रेष्ठ जी के प्रति अपना सद्भावना व्यक्त करता हूं जिनका सहयोग हमें अनवरत विविध प्रकार से मिलता रहा है।

कृति का टंकण का कार्य जिस प्रकार से संजय कुमार ने अत्यंत लगन पूर्वक किया इसके लिए उसके उत्कर्ष की कामना करता हूँ।

और सहधर्मणी शकुंतला आर्या का भी आभार व्यक्त करता हूं जिनके सहयोग के बिना इसका पुस्तक–रूप में आना संभव ही नहीं था।

मैं उन विषमताओं के प्रति नतमस्तक हूँ, जिनके कारण मन में प्रतिकूलताओं और अनुकूलताओं के ज्वार–भाटे उठते रहते हैं। लेकिन वेद के प्रति उत्कट विश्वास के कारण समाधान की दिशा मिल ही जाती है और संवेदनाओं का काव्यमयी स्वर मुखरित हो उठता है।

अस्तु ! मेरी साधना का सुफल लोक–जीवन के लिए सुखदायी और प्रेरक बने ऐसी शुभ कामना करता हूँ।

लोक के मंगल भाव के साथ!

–अखिलेश आर्येन्दु

फाल्गुन कृष्ण दशमी तदनुसार 14 फरवरी 2014
नांगलोई, दिल्ली–110041

1

मातृभूमि की प्रधान सात शक्तियाँ

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।

शब्दार्थ और पदार्थ – (सत्यं) शाश्वत्, अनन्य, सत्य (बृहत्) बड़ेपन का भाव, विस्तार वाला (उग्रम्) क्षत्र–शक्ति (ऋत्) सत्य ज्ञान, ऋत (तपः) सुख–दुख सहन करने की शक्ति, धर्मानुसार चलना (दीक्षा) कार्य को संकल्प पूर्वक हाथ में लेना (ब्रह्म) ब्रह्म–शक्ति, चिन्तनीय ज्ञान (यज्ञ) सर्वहित के लिए निज हित का बलिदान (पृथिवीं) भू–माता (धारयन्ति) जो धारण करती हैं, पोषण करने वाली (सा) वह (नः) हमारे लिए (भूतस्य) भूतकाल एवं जो सत्य मार्ग पर चलकर किया गया (भव्यस्य) भविष्य एवं जो ज्ञानपूर्वक किया जाएगा (उरुं लोकं) विस्तृत प्रकाश एवं अन्तः वजनीय स्थान (कृणोतु) जो करे।

भावार्थ – भूमि–सूक्त के इस प्रथम वन्दनीय मंत्र में मातृभूमि और राष्ट्रोत्थान के लिए जिन प्रमुख सात शक्तियों की आवश्यकता होती है या जो इनके सात आधार हैं, उनका वर्णन इनमें किया गया है। इन सात शक्तियों का महत्त्व क्या है और मातृभूमि में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका क्या होती है, मंत्र में विवेचनात्मक ढंग से पिरोया गया है।

विवृति – हे महिमामयी मातृभूमि! आप की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है। आप ऐसी शक्तियों से भूषित हैं, जो किसी भी आदर्श राष्ट्र और एक श्रेष्ठ समाज के लिए आवश्यक होती हैं। इन शक्तियों से आप हमेशा महिमामयी बनी रहती हैं। हम सभी इन शक्तियों को जानें और इनको समझें। ये सात शक्तियाँ हैं–बृहद् ऋत, सत्य, छत्र–शक्ति, दीक्षा, तप, ब्रह्मशक्ति और यज्ञ। ये सात शक्तियाँ मानव के सतत् विकास के लिए भी आवश्यक हैं। जिस समाज और राष्ट्र में ये सात शक्तियाँ विद्यमान नहीं होती हैं, वह समाज और राष्ट्र प्रगति, विकास और उन्नति के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकते हैं। तात्पर्य यह है हम इन शक्तियों की महत्ता को समझें और इनको राष्ट्र और समाजोन्नति के लिए उपयोग में लायें। ये सात शक्तियाँ राष्ट्र के प्रजा–जनों में पूर्णरूपेण विद्यमान् हैं। इससे हमारा समाज और राष्ट्र श्रेष्ठ समाजों और राष्ट्रों में समझा जाता है। हमारा समाज इन शक्तियों के कारण दृढ़, अजेय, विकासमान और उन्नतिशील हो गया है। हमारी मातृभूमि का गौरव दिगदिगन्त में व्याप्त है। हमारी मातृभूमि इन सात शक्तियों को निरन्तर धारण कर रही हैं।

हे भू–माता! जिन सातों शक्तियों को आप निरन्तर धारण करती रहती हैं वे शक्तियाँ अत्यन्त पावन, अजेय और दृढ़ता से परिपूर्ण हैं। हे माता! आप ही भूत और भविष्य की रक्षिका कही जाती हैं। हमारा राष्ट्र अतीत में कई क्षेत्रों में अत्यन्त उन्नति वाला रहा है। राष्ट्र का गौरव सभी क्षेत्रों में हुआ करता था। हमारे पूर्वजों ने अनेक प्रकार की परम्पराएँ बाधी थीं जिसकी रक्षा हम सभी आज भी कर रहे हैं। वे परम्पराएँ हल्की किस्म की नहीं हैं, बल्कि बहुत उच्च श्रेणी की हैं। हम अपने पूर्वजों द्वारा परम्पराओं और अन्य महिमायुक्त चीजों के बारे में कितना वर्णन करें। सब एक से बढ़ कर एक रही हैं। हमारा भूतकाल, इस लिए भी महिमामण्डित रहा है, क्योंकि सातों महाशक्तियाँ, उनके जीवन का आधार हुआ करती थीं। और, मैं यह कह सकता हूँ कि भविष्य में भी ये शक्तियाँ हमारे जीवन का आधार बनी रहेंगी और हमारी रक्षा भी करती रहेंगी। हे मातृभूमि! हमारा समाज एक आदर्श समाज और हमारा राष्ट्र एक उन्नतशील राष्ट्र के रूप में विश्व में अपना स्थान बनाने में सफल रहेगा। भाव यह है कि हमारे समाज और राष्ट्र का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। मातृभूमि की जिससे जिस प्रकार हमारे समाज और राष्ट्र के प्रजा–जनों ने रक्षा की वैसे भी भविष्य में भी करते रहें। इससे प्रजा–जनों का भविष्य उन्नति के शिखर पर निरन्तर आगे बढ़ता रहेगा। भविष्य में भी ये सात शक्तियाँ हमारा साथ देते हुए हमारा रक्षा भी करेंगी साथ ही, हमारे राष्ट्र को मजबूत आधार प्रदान करेंगी।

हे महिमावती सात शक्तियों वाली मातृभूमि! हम आप से चाहते हैं कि आप हमें ऐसा प्रकाशमय क्षेत्र प्रदान करें जिससे हमारा सर्वकल्याण होता जाये। हम सभी प्रत्येक क्षेत्र में निरन्तर आगे बढ़ते जाएँ। हे भू–माता! हम प्रजा–जनों को इन सात शक्तियों की सहायता से निज जीवन और राष्ट्र के निमित्त एक प्रकाश का आधार मिल जाए, जो हम सबके जीवन का ही नहीं सम्पूर्ण समाज को प्रेरणा देने वाला हो।

इससे उन लोगों के नयन खुल जाएँगे जो किन्हीं कारणों से अभी तक बन्द रखे हुए हैं। नयन खुलते ही उन्हें सत्य के उन्नति का मार्ग दिखाई पड़ने लगेगा और वे सभी लोग उन्नति के सभी साधनों के साथ आगे बढ़ते जाएँगे। हे माँ! आप का दिया हुआ विस्तृत प्रकाश हम सभी के जीवन के लिए एक खुला आकाश देने जैसा होगा, फिर तो हम सभी लोग आगे बढ़ते हुए, अपना स्थान सुरक्षित कर ही लेंगे।

हे मातृभूमि! हम आप के भक्त, आप की महिमा का गुणगान करते हैं और समाज और राष्ट्र की उन्नति में जिन सात शक्तियों की बहुत महिमा बताई गई है, उसे समझकर उन्नति के मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ते जाना चाहते हैं। जिन सात शक्तियों का गुणगान

हमारे महान् पूर्वजों ने की, उन सात शक्तियों की विशेषता क्या है इसे हमें जान लेना चाहिए।

जिन सात शक्तियों से व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की उन्नति होती है, जिनका आधार पाकर उन्नति के शिखर पर चढ़ा जा सकता है, उनमें सबसे पहली शक्ति 'सत्यम्' कही गई है। सत्यम के सम्बन्ध में कहा गया है कि सत्य ही सबका आधार है। इस लिए, यह सभी को प्रिय होना ही चाहिए और असत्य से हमेशा दूर रहना चाहिए। सत्य क्या है? सत्य का अनुसन्धान के लिए जिस प्रकार से हमारे पूर्वज सदैव तत्पर रहते थे, उसी प्रकार से हमें भी तत्पर रहना चाहिए अर्थात् सत्य तक पहुँचने के लिए गम्भीर, शान्त, अध्यावसाय, कष्ट–सहिष्णु और घटनाओं के तह तक जाने के लिए हमें सूक्ष्म बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। और जब सत्य क्या है इसका पता लगा जाए तो उसके अनुसार हमें मन, वचन और कर्म से उन्हें आचरण में लाने के लिए पूरे मनोवेग और संकल्प पूर्वक तत्पर हो जाना चाहिए। सत्य के साथ 'बृहत्' विशेषण लगाया गया है, इसका अर्थ है –महान्। इसका तात्पर्य यह है कि समाज और राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को सत्य के अतिरिक्त और किसी का आश्रय नहीं लेना चाहिए। अर्थात सत्य हम सभी के जीवन का महान् आधार बन जाए।

जिन सात शक्तियों की महिमा का गुणगान हम कर रहे हैं उनमें द्वितीय महाशक्ति है 'ऋतम्'। व्याकरण के अनुसार 'ऋतम' का अर्थ होता है–सत्य ज्ञान। वैदिक परम्परा में ऋत और सत्य कभी–कभी एक साथ ही प्रयुक्त होते हैं, तो कभी पर्याय के रूप में, तो कभी अलग–अलग रूप में। यहाँ ऋत् और सत्य का प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। ऋत् का अर्थ है पूर्णतः सत्य पर ही आधारित। जैसे आचरण करने को सत्य कहा जाता है। लेकिन मेरा ज्ञान अशुद्ध हो सकता है। और जिसे मैं समझता हूँ, उसके अनुसार अशुद्ध ज्ञान को ठीक समझता हुआ आचरण करता हूँ। और मैं समझता हूँ जो आचरण कर रहा हूँ वह ठीक है। लेकिन देखा जाए तो मेरा ज्ञान ठीक नहीं है। इस लिए यह सत्य ज्ञान नहीं हो सकता। आशय यह है कि इस ज्ञान को ऋत् नहीं कहा जा सकता है। केवल मेरे समझने से कोई भी ज्ञान ठीक या सत्य नहीं हो सकता है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ऋत् के अनुसार हमें समझने की चेष्टा करनी चाहिए कि जिसे मैं अपने ज्ञान के अनुसार सत्य समझा था, वह ठीक है भी कि नहीं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ऋत् ज्ञान की सत्यता को घोषित करता है। वेद में ऋत ज्ञान के बोधक के साथ ही साथ जगत् के नियमों का भी बोधक होता है। हम प्रजा–जनों को चाहिए कि ऋत को समझते हुए सत्य–आचरण के लिए हर समय, तत्पर रहें। सभी लोगों को चाहिए कि वे ब्रह्माण्ड में काम कर रहे भौतिक और

आध्यात्मिक नियमों का ज्ञान तत्परता और निष्ठापूर्वक कर लें। सत्य और ऋत् दोनों के ज्ञान हो जाने पर प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन्नति के साथ ही साथ समाज और राष्ट्र की उन्नति में अपना योगदान ठीक तरह से दे सकता है। समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए बहुत विस्तार वाला ज्ञान चाहिए। जिसे 'बृहद्' शब्द दिया गया है। भाव यह है कि ऋत और सत्य ज्ञान के लिए हमें गहन अनुसन्धान करते रहना चाहिए और अनुसन्धान के अनुसार उसे आचरण में भी लाना चाहिए।

सात शक्तियों में तीसरी शक्ति को 'उग्रम' शब्द से अभिहित किया गया है। वैसे, साधारण रूप से उग्र शब्द शक्ति और तेज का द्योतक है अर्थात् यह क्षत्रिय वाचक है। उग्रम् शक्ति व्यक्ति, समाज और राष्ट्र–तीनों के लिए अति आवश्यक है। भाव यह है कि प्रजा–जनों में शक्ति और तेज का होना अति आवश्यक है। यह ऐसी शक्ति है जो संकल्प, इच्छाशक्ति और दृढ़ता को स्थिर करने में बहुत उपयोगी है। इस लिए इसे भी समाज और राष्ट्र का परम आधार माना गया है।

दीक्षा सातों शक्तियों में चौथी महान् शक्ति है। दीक्षा का मतलब, किसी कार्य को दृढ़ता पूर्वक हाथ में लेना। समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए ही नहीं व्यक्तिगत उन्नति के लिए भी इस शक्ति की आवश्यकता पग–पग पर होती है। लेकिन यह सम्भव तभी है जब प्रजा–जनों की शिक्षा और संस्कार ऐसे हों कि जब वे किसी कार्य को हाथ में लें तो बहुत सोच–विचार करके, उसे पूर्ण करके ही, विश्राम लें। चाहे इसमें कितनी ही बाधायें सामने आएँ, उससे च्युत न हों। एक बार कार्य पूरा करने का संकल्प ले लें तो फिर पीछे हटने के बारे में सोचें तक नहीं। चाहे कितने ही लोभ–लालच दिये जाएँ। यज्ञ–दीक्षा–भंग एक प्रकार का पाप माना गया है। क्योंकि यज्ञमान् का इससे जहाँ संकल्प टूटता है वहीं पर उसमें निराशा और हताशा के भाव भी उदय होते। भाव यह है कि किसी भी कार्य को पूरा करके ही दम लेना चाहिए। यदि ऐसा न कर सकें तो हमें यह सोचना चाहिए कि हमने जो कदम उठाया है जो आत्मानुकूल नहीं था। जिस कार्य को करने का संकल्प लें उसे पूरा करके ही विश्राम लें, क्योंकि कार्य बीच में अधूरा छोड़ देने पर कई प्रकार की समस्याएँ और जटिलताएँ पैदा हो सकती हैं।

सात महाशक्तियों में पाँचवीं शक्ति का महत्त्व भी कम नहीं है। यह पाँचवीं शक्ति है– तप। तितिक्षा सहन करना ही तप कहा जाता है। सब की उन्नति का मूल आधार तितिक्षा अर्थात् कष्ट सहन करते हुए भी अपने लक्ष्य की ओर लगे रहना। चाहे जितनी प्रतिकूल परिस्थितियाँ हों, अपने मग से डगमगाएँ नहीं। तितिक्षा सहन करना कोई साधारण बात नहीं

है। इसमें साधना चाहिए। धैर्य चाहिए। दृढ़ता चाहिए और आत्मबल चाहिए। इसके लिए आवश्यक है–सतत् अभ्यास। अभ्यास मानव जीवन को वज्र जैसा बना देता है। व्यक्ति अभ्यास के द्वारा वह हीरा बन जाता है जिसके सभी प्रंशसक होते हैं। स्वयं की उन्नति के साथ ही साथ समाज और राष्ट्र की उन्नति करने के लिए अपने कर्तव्यों का सतत् पालन और कार्यों का सम्यक् निर्वाहन करते जाना जीवन का लक्ष्य बनाना चाहिए। जिनके जीवन में तितिक्षा सहने का संकल्प, सहजता, सादगी और दृढ़ता नहीं होती ऐसे लोग आलसी और आज का कार्य कल पर टालने वाले होते हैं। ऐसे लोगों को यदि कभी कष्ट या संकट का सामना करना पड़े तो घबरा जाते हैं। ऐसे लोगों से न तो समाज का भला हो सकता है और न ही राष्ट्र का ही। भाव यह है कि प्रजा–जनों को तपस्वी होना चाहिए।

सात शक्तियों में छठवीं शक्ति ब्रह्म बताई गई है। यह ब्रह्मशक्ति मानव जीवन की आधार है। सर्वकल्याण की आधार है। वेद को ब्रह्म कहा गया है और ब्राह्मण को भी ब्रह्म कहा गया है तथा ज्ञान–विज्ञान को भी ब्रह्म कहा गया है। जो व्यक्ति वेदों और अन्य वैदिक ग्रन्थों का पठन–पाठन, यजन और विद्या–विस्तार का कार्य करना अपने जीवन का लक्ष्य बनाते हैं वेद के अनुसार वही ब्राह्मण हैं। (जन्म से प्रत्येक व्यक्ति शूद्र और अज्ञानी होता है और संस्कार से ही वह द्विज अर्थात् सच्चे अर्थों में ब्राह्मण बनता है) वेद–विद्या राष्ट्र और समाज के लिए अति आवश्यक है, इस लिए समाज में ब्राह्मणों का होना आवश्यक है। समाज के लिए वेद, ब्राह्मण और ज्ञान–विज्ञान तीनों की आवश्यकता है। भाव यह है कि ब्राह्मण बनकर के वेद–विद्या के साथ ही साथ ज्ञान–विज्ञान और अन्य आवश्यक विद्याओं का प्रचार–प्रसार करना समाज और राष्ट्र–हित में है। लेकिन यह कार्य वैदिक ब्राह्मण ही कर सकता है। ब्राह्मण को तितिक्षा सहन करने की शक्ति वाला, सद्गुणी, तपस्वी, संयमी और परोपकारी तथा आत्मजयी होना चाहिए। प्रजा–जनों में सद्वृतियों का प्रचार, विद्या का प्रचार और मानवता का प्रचार ब्राह्मण के जिम्मे होते हैं। इस लिए ब्राह्मण को सात शक्तियों में एक महाशक्ति माना गया है।

सात महाशक्तियों में सातवीं और अन्तिम महाशक्ति को यज्ञ कहा गया है। सबसे पहले हमें यज्ञ किसे कहते हैं, इसे जानना चाहिए। यदि एक वाक्य में हम यज्ञ को समझना चाहें तो यह कह सकते हैं–सभी प्रकार के परोपकार के कार्य– यज्ञ हैं। यज्ञ की परिभाषा देते हुए शास्त्रकार कहता है–**"सामुदायिकं योगक्षेममुदिद्श्य समुदायांगतया क्रियमाणं कर्म यज्ञः!"** यज्ञ का सामान्य अर्थ में संगतिकरण भी है। हम प्रजा–जनों को प्रत्येक कार्य मिलकर, संगति बैठाते हुए, सब की भलाई में अपनी भलाई समझते हुए करना चाहिए। हमारी वृति

हमेशा परोपकार वाली ही होनी चाहिए। समाज और राष्ट्र के लिए यज्ञ वाली वृति अत्यन्त कल्याणकारी होती है। वैयक्तिक लाभ के स्थान पर हमें समाज और राष्ट्र के कल्याणकारी कार्यों को ही श्रेयस्कर समझना चाहिए। अपने तुच्छ सुख के स्थान पर समाज और राष्ट्र के सुख के लिए हमेशा तत्पर रहना चाहिए। भाव यह है कि यज्ञ की भावना से किये हुए कार्य अपने लिए ही मंगलकारी नहीं होते प्रत्युत समाज और राष्ट्र के लिए भी कल्याणकारी होते हैं।

जिन सातों शक्तियों की चर्चा अभी मैंने की वे प्रत्येक व्यक्ति और समाज के लिए आवश्यक हैं। राष्ट्र के लिए तो ये आधार ही हैं। इस लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति में इन सातों शक्तियों का होना बहुत आवश्यक है। ये सातों शक्तियाँ हमारे जीवन के गुण बन जाएँ, ऐसा प्रयत्न हमें करते रहना चाहिए। जिस राष्ट्र के लोगों में ये सातों शक्तियाँ (सदगुण) उपस्थित होती हैं, वह समाज और राष्ट्र निरन्तर ऊपर उठता चला जाता है और उसकी कीर्ति, गौरव, महिमा की श्रीवृद्धि भी लगातार होती चली जाएगी। तात्पर्य यह है कि ये प्रजा–जनों के सदगुण हैं जो उन्हें महान् बनाती हैं। यही राष्ट्र की उन्नति का आधार भी हैं। इस लिए इन्हें सात शक्तियाँ माना गया है।

वेद स्तुतिगान में मातृभूमि की वन्दना करता हुआ भक्त सात्विक अभिमान के साथ कह रहा है कि समाज और राष्ट्र के लोगों में सत्य, ऋत, उग्रता, तप, दीक्षा, ब्रह्म और यज्ञ नामक सात शक्तियाँ विद्यमान हैं। ये हम सभी के सदगुण हैं। इनसे हमारा वैयक्तिक जीवन ही नहीं बल्कि सामाजिक, राष्ट्रीय और धार्मिक जीवन की उन्नति होती है। इन सात शक्तियों की ही महिमा से हमारे समाज और राष्ट्र की उन्नति लगातार होती चली जाती है। चारों ओर खुशहाली, स्वतन्त्रता, सादगी और सुन्दरता के साथ ही साथ शुभता और प्रियता की धाराएँ बहती हुईं दिखाईं देंगी। वह दिन कैसा अद्भुत होगा जब हर जगह वेदों की ऋचाएँ गुंजायमान् होंगी और सारा समाज यज्ञमय होकर अपनी उच्चता को प्राप्त कर रहा होगा। हमें ऐसे अद्भुत दिवस के लिए अपने सद्गुणों को समाज और राष्ट्रहित में समर्पित करते रहने की प्रवृति बनानी चाहिए। अर्थात् प्रजा–जनों को सातों शक्तियों से ओत प्रोत हो जाना चाहिए।

2

हम मनु की सन्तान

असंवाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः।।

शब्दार्थ– (मानवानाम्) मनुष्य गण (यस्याः) जिससे वे सम्बन्धित हैं (उद्वतः) ऊर्ध्वगामी, सतत ऊँचाई पर रहने वाले (बध्यतः) जो सन्तुलन बनाए रहते हैं, मध्य में (प्रवतः) जो नीचा–ऊँचा समझते हैं (बहु) बहुत से (समम्) समभाव वाले (असंबाधम्) जो एकता या मैत्री को स्वीकार या पसन्द करते हैं (या) जिससे या जो (नः) हमारे लिए, हमारी (पृथिवी) भू–माता (नानावीर्याः) जो वीर्यवान बनाने की क्षमता रखती है या शक्ति व गुणों वाली (ओषधीः) जड़ी और बूटियों को (विभर्ति) धारण करके (नः प्रथताम्) साध्य पूर्वक सदैव बनी रहे (राध्यताम्) समृद्ध बनें।

भावार्थ– मंत्र में हमें 'मनुर्भव' का बोध कराया गया है। हम मनु की सन्तान हैं। जिस प्रकार से मनु का जीवन पावन, पवित्र और सत्साहस से भरपूर था उसी प्रकार के जीवन का निर्माण करना हमारा ध्येय होना चाहिए। धरती माता सद्गुणों, सदवृतियों और संघर्षशील व्यक्तियों को अपना आशीष देती हैं। हमें प्रत्येक कार्य को उसके गुण और दोषों को विचार करके करने चाहिए।

विवृति– हे हमारी भू–माता! आप पर निवास करने वाले प्रजाजन कोई साधारण मानव नहीं हैं बल्कि वे तो महान् सृष्टि के प्रथम मानव, मनु की सन्तान हैं। मनु अर्थात् **मनुर्मननात् मननशीलः या अमनुत इति मनुः** कह कर पुकारा गया है। ऐसे मनु की सन्तान भला साधारण कैसे हो सकती है। हम मनु की सन्तान ऐसे विवेकवान्, विचारशील मानव हैं जो प्रत्येक कार्य को उसके गुण–दोष के आधार पर विचार करके करते हैं। कोई कार्य ऐसा नहीं करते जो अपने महान् पूर्वज मनु की श्रेष्ठता को नीचा करे। इस लिए हम भी एक प्रकार से मनु ही हैं अर्थात् मननशील मानव हैं। हम ऐसे मनु की सन्तान हैं जो निरन्तर आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं। हम किसी भी बाधा से कभी रुकते नहीं हैं। उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते जाना हमारे स्वभाव में है। कोई भी विरोधी हमें रोक नहीं सकता है।

हे भूमिमाता! हम बाधाओं से विचलित नहीं होते हैं। जो विघ्न बाधा डालने वाली

प्रवृतियाँ, शक्तियाँ और लोग हैं –हम मनु की सन्तान उन्हें दूर करने के लिए सदैव तत्पर रहें। भले–बुरे का विवेक रखने वाली बुद्धि को निरन्तर वृद्धि करते हुए, हम निरन्तर आगे बढ़ते रहें। मातृभूमि पर निवास करने वाले मानवों ने उन्नति के सोपानों पर निरन्तर चढ़ते हुए अनेक लोग बहुत उच्च स्थिति में पहुँच गए। अनेक लोग आगे बढ़ गए हैं और बहुत से लोग अभी पीछे चल रहे हैं। कोई किसी क्षेत्र में उच्चता को प्राप्त हुआ तो कोई किसी क्षेत्र में। लेकिन सभी में आगे बढ़ने की रुचि और इच्छा–शक्ति है। हे मातृभूमि! ऐसे लोग जो पीछे छूट गए हैं वे भी उच्चता को प्राप्त कर लें, ऐसी शक्ति उन्हें दें।

हम मनु की सन्तान हैं। विवेकवान, विचारवान और मन्थन करने के कारण ही मनु–पुत्र कहे जाते हैं। सृष्टि का प्रारम्भ ही मनु और श्रद्धा से हुआ। सकल जगत् में हम श्रेष्ठ संस्कृतिवान् होने के कारण ही पूज्य रहे हैं। हमारा परिवार व समाज संस्कृतिवान होने के कारण विश्व के सम्मुख एक प्रतीक रहे हैं। जिस प्रकार से विविध रूप–रंगों वाले प्रसून विहँसते हुए आपस में सर्वथा एवं सर्वदा एक दूसरे के पूरक व प्रिय बनें रहते हैं, उसी प्रकार से हम भी एक दूसरे के पूरक बनकर उन्नति के मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ते रहें। अर्थात **प्रिय बनकर सबको अपना मित्र बना लो/जीवन को प्रिय प्यारा पवित्र बना लो।** प्रियता ऐसा भाव, व्यवहार और शब्द है जो अनायास व्यक्ति प्राणीमात्र का चहेता या प्यारा बन जाता है। सुजलाम, सुफलाम, मलयज शीतलाम की वन्दना मातृभूमि के प्रति जब हम करते हैं तब हमारा जीवन सार्थक ही नहीं धन्य भी हो जाता है। जीवन–धन्य मातृभूमि को अर्पित करने वाले हम सत्साहस और शिवसंकल्प से परिपूर्ण हों। कवि ने लिखा है– **हे जगदाता, जल सा उज्ज्वल हमको जीवन दो। क्यों न रहूँ मैं अतल में, किन्तु दूसरों के हित पल में। आवें अतल तोड़कर पल में, ऐसा सत्साहस बल दो।**

हम सत्साहस और सदगुणों से युक्त होकर मातृभूमि के सच्चे वीर पुत्र बनें। जब सत्साहस व सदगुणों से हम युक्त हो जाएंगे तो हम अपना ही नहीं धरती माता की हर विधि से सेवा कर पाएंगे। शुभत्व, प्रियत्व, सुकृतत्त्व और सातृत्त्व के हम सहभागी बनें ऐसी शक्ति, सामर्थ्य और संकल्प मुझमें उद्देलित हों। हे माँ! आप ने अपनी वात्सल्यमयी गोद में हमें पाल पोशकर सुकर्ता बनाया, अब मेरा भी कर्तव्य बनता है कि एक सुपुत्र बनकर आप की हर प्रकार से रक्षा, सेवा और पोषण करूँ।

हे मातृभूमि! आप रत्नगर्भा हैं। आप के द्वारा अनन्तकाल से अनन्त रत्न, प्राणी, धन–धान्य और ऊर्जा स्फुटित होते रहे हैं। आप वसुओं की आधार हैं। इसी लिए 'वसुधा' कहलाती हो। पवित्रता, सुचिता, सौन्दर्य और सदगुणों के वैभव से युक्त आप की गोद में

अनगिनत प्राणियों और अप्राणियों का पोषण होता है। कहने का भा यह है, असंख्य–जड़ी बूटियाँ और अन्य वनस्पतियाँ पृथ्वीमाता के गर्भ से उत्पन्न होती हैं। सभी का उपयोग मनुष्य जहाँ अपने अच्छे स्वास्थ्य, बल एवं शक्ति के लिए करता है वहीं पर रोगों को नष्ट करने के लिए भी करता है।

मातृभूमि के इस स्तुतिगान में वेद का पावन उपदेश सभी प्रजा–जनों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसमें कहा गया है, समाज एवं राष्ट्र के लोगों को कार्य करने के पूर्व भले–बुरे का विचार अवश्य ही करना चाहिए। यही नहीं ऐसे विचारों और बातों को रोकना भी चाहिए जो न तो वैयक्तिक हित में हैं, न समाज हित में और न ही राष्ट्रहित में ही। प्रजा–जनों को चाहिए कि सभी प्रगति के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते रहें। कृषिादि कार्य करके समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए, अन्न प्रदान करने वाले कार्यों को भी निरन्तर करते रहना चाहिए। यही नहीं, इस धरती पर जो भी वनस्पतियाँ और औषधियाँ उगती हैं, सब के गुणों को समझकर उनका पूरा उपयोग करते रहना चाहिए। मंत्र का भाव यह है कि समाज एवं राष्ट्र की उन्नति के लिए जो करना अभीष्ठ हो, उसे करने में कभी आलस्य और प्रमाद नहीं करना चाहिए। यह समाज और राष्ट्र–कल्याण का परम पावन मंत्र है।

3

मैत्री भाव से कृषि आदि कर्म करें

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः।
यास्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।।

शब्दार्थ– (यस्यां) जिस मातृभूमि पर (समुद्रः) विशाल जल भण्डार (सिन्धुः) नदियाँ या जल स्रोत (उत्) और (आपः) शीतल जल (यस्याम्) और उसी भूमि पर (अन्नं) प्राणादि को तृप्त करने वाले भोज्य–पदार्थ (कृष्टयः) कृषि के माध्यम से प्राणी–जन को पोषण करने वाले एवं संरक्षण देने वाले कृषक, श्रमिक, शिल्पकार, कारीगर जिससे समाज का सब विधि कल्याण होता है (संभूवुः) सर्वहित करने वाले जन–जो एक होकर कार्य करते हैं (यस्यां) जिस धरा पर (इदं) प्राणीभूत सभी (एजत् जिन्वति) जिस वसुन्धरा पर प्राणवान जन रहते हैं (प्राणत्) सांस लेकर निरन्तर गति करते हुए (सा) उस पर (भूमिः) उस भू–माता की गोद में

(नः) हमारे लिए, हर तरह से (पूर्वपेये) विभिन्न प्रकार के खाद्य, मेवे और पेय पदार्थ (पान) सेवन करके (दधातु) निरन्तर प्रदान करें।

भावार्थ– मंत्र में कृषि–धर्म और कृषि–संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए मानव को मातृभूमि के प्रति समर्पित रहते हुए सभी को आपस में मिलकर कृषि, व्यापार और अन्य कार्यों को निरन्तर करते रहने की प्रेरणा दी गई है। जल ही जीवन है। इस लिए जल जिस भी स्रोत से प्राप्त करें उसका समुचित सदुपयोग करें। सभी उन्नतियों के लिए मैत्री, मुदिता और सदाशयता जैसे सदगुणों को अपने स्वभाव में अवश्य समावेशित करें।

विवृति– हे मातृभूमि! आप के विशाल विस्तृत भू भाग से लगता हुआ सागर और इसी से लगती हुईं अनेक पयस्विनी कही जाने वाली नदियाँ भी बहती हैं। इन विशाल जल धाराओं पर हम प्रजाजन समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए व्यापारादि कर्म करते रहते हैं। इन विशाल जल धाराओं के अतिरिक्त जल की और भी अनेक धाराएँ हैं–जिसमें छोटे–बड़े तालाब, कुयें, झीलें और अन्य प्रकार के जलाशय हैं। इन जलाशयों से हमारी धरती हरी भरी रहती हैं। इन जलाशयों से नहरों के माध्यम से कृषिादि करके अन्न और फल पैदा किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये जल धारायें, हमारे अन्य अनेक कार्यों को करने में सहयोगी होती हैं। भाव यह है कि उत्तम जलाशयों से जल को हम विविध कार्यों में उपयोगी बना कर के कृषिादि करके हम समाज और राष्ट्र की उन्नति में आगे बढ़ते जाते हैं।

कृषि मानव जीवन का आधार और प्राण है। मानव की संस्कृति, कला और साहित्य का उन्नयन और पोषण इसके ही सहारे होता आया है और आगे भी इससे ही होगा। कृषि करने वाला कृषक इस धरती का प्रतिपालक कहा जाता है। धरती का सीना फाड़कर और वर्ष के बारह महीने जिस तरह से तितिक्षा सहकर अन्न, फलादि को उपजाता है, वह सबसे कठिन तपस्या है। ऐसे जीवन–धर्मियों को कवि ने ग्राम–देवता कह कर वन्दना की है। सबको इनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। वेद में कृषि–कर्म को सबसे श्रेष्ठ और उत्तम कर्म कहा गया है। कवि ने लिखा है **–हे ग्राम देवता नमस्कार। सोने चाँदी से नहीं किन्तु, तुमने मिट्टी से किया प्यार।।**

इस महान् वसुन्धरा पर उद्योगपति, शिल्पकार और कारीगर अपने सूझबूझ और हुनर से तरह–तरह की आकर्षक और उपयोगी वस्तुएँ बनाते हैं। श्रमशक्ति और संसाधन–शक्ति के बल पर इस भूमि को सर्वविधि से सम्पन्न बनाते हैं। पृथ्वी पर, सब कोई कैसे सुखी और शान्ति से प्रेमपूर्वक जीवन बिता सकें इस पर हमें ध्यान देने की आवश्यकता है। सभी जन, यदि निज कर्तव्यों को करते हुए सदाचार पूर्वक जीवन गुजारने लगें तो विश्वसमाज में

व्याप्त विषमता और अन्याय का समूल नाश हो सकता है। भू–माता हमें जीवन बिताने के लिए हमें जितना देती हैं उसे यदि ठीक और न्याय पूर्वक उपयोग करें तो न तो कोई भूखा मरेगा और न किसी की आवश्यकता से अधिक खाकर ही मृत्यु होगी। इस धरा पर जितनी भी तरह की वनस्पतियाँ, औषधियाँ और फलादि उत्पन्न होते हैं, वे सभी प्राणी मात्र के लिए उपयोगी और उपकारक हैं। ज्ञान–विज्ञान की उन्नति करके सबको सुखी करने वाले वैज्ञानिकों की भूमि भी यही है। हम सभी लोग ऐसे कर्मवीरों की प्रशंसा करते हैं। धरती माता का यह विशाल क्षेत्र असंख्य वस्तुओं और संसाधनों से भरा हुआ है।

सृष्टि से लेकर अद्यतन काल तक इस वसुधा पर निवास करने वाले प्राणिादि धरती की हर वस्तु का निरन्तर उपयोग करते हुए समाज के अहिर्निश विकास को आगे बढ़ाते हैं। जल को जीवन कहा गया है। बिना जल के यहाँ जीवन सम्भव ही नहीं है। इसी से हमें दूर–दूर तक हरियाली दिखाई देती है। जिस तरह से जल के माध्यम से चारों ओर हरा भरा हो जाता है उसी तरह से श्रम करके हम सभी विश्व समाज में हरियाली अर्थात सुख और शान्ति का वातावरण बनाएँ। पृथ्वी पर जितने भी जल के स्रोत हैं हम उनका निरन्तर संरक्षण और विकास करें। बिना विकास के मनुष्य और दूसरे प्राणियों का सतत् विकास नहीं हो सकता है। सत्य, शिव और सुन्दर समाज तभी बन सकता है, जब हम सभी जन इसके लिए संकल्पवान् बन जाएँ। जितने भी सुरभिवान समाज निर्माण में बाधा डालने वाले तत्त्व हैं उनका हम तभी मूलोच्छेन कर सकते हैं, जब हम सब में संकल्प और साहस की दिव्यता अदम्यता के साथ बनी रहेगी।

हे पृथ्वी मॉ! आप के द्वारा ही अमृत और बिष का सृजन होता है। हम सदा अमृत का पान करने वाले बनें। क्योंकि अमृत से ही शरीर, बुद्धि और आत्मा का निरन्तर विकास होता है।

इस मातृभूमि पर जल से भरे हुए तालाब, तड़ाग, नहरें, चश्में और झील हैं। नीर के इन भण्डारों से जीवन का प्रादुर्भाव सम्भव हुआ। विश्वसमाज में जो भी विकास, सौंदर्य और अनुसन्धान हो रहा है उसमें जल का बहुत बड़ा योगदान है। पवित्रता और शीतलता का आधान वारि के माध्यम से ही होता रहा है। हम सभी जल के सदृश्य अपना जीवन बनाएँ अर्थात हममें शीतलता और पवित्रता का अनवरत समावेश बना रहे। समाज को उत्कृष्ट बनाए रखने के लिए हर मनुष्य में शीतलता और पवित्रता का होना अतिआवश्यक है। वैदिक दर्शन में आत्मा, परमात्मा, धर्म और प्रकृति को जल कहा गया है। अर्थात जिसमें गति और परिवर्तन होता रहे उसे जल कहा जा सकता है। या जिससे जीवन का शाश्वत विकास

हुआ और हो रहा है, वह जलमय है। इस लिए जल सदृश्य जितनी भी वस्तुएँ हैं सभी जीवन–निर्माण का कार्य करती हैं। हमारा जीवन भी ऐसा पावन और पवित्रता से परिपूरित हो ऐसी संकल्पना हममें शाश्वत होनी चाहिए। यही मनुष्यता है और यही धर्म–भाव है। हम सभी अहिर्निश ऐसे पथ के अनुगामी बनें, जो सब के दुखों से मुक्ति दिलाने वाला हो। धरती माता हमारे लिए सदैव शुभकारी हो। जीवन देने वाला अमृत सदृश्य सन्तोष हमें अहिर्निश निरोगी बनाए। हम निरोग बने रहेंगे तो वन्दनीया मातृभूमि की रक्षा भी अहिर्निश कर सकेंगे।

मातृभूमि के स्तुतिगान द्वारा वेद में दिया गया यह परम पावन एवं पवित्र उपदेश प्रजा–जनों को यातायात और कृषि कार्यों के सम्बन्ध में है। इसमें कहा गया है कि समुद्र एवं नदियों की जल धारा के मार्ग से भी यात्रा करके यातायात और व्यापार निरन्तर करते रहना चाहिए। धरती पर जिन जलाशयों और कुंओं का पानी पीने योग्य, कृषि–योग्य और अन्य कार्यों के लिए ठीक हैं, उनका उपयोग अच्छी तरह से करना चाहिए। हम जो कृषि करें उसमें सहकार की भावना का समावेश होना ही चाहिए। सभी नर–नारियों को प्रेमपूर्वक परस्पर मिलकर रहना चाहिए। संभूय–समुत्थान अर्थात् सभी की उत्थान की भावना से प्रेरित होकर उद्योग–धन्धों को बढ़ाने और व्यापार करते रहना चाहिए। सभी को अपने कर्तव्यों का पालन और कार्य धैर्य के साथ करना चाहिए। जब प्रजा–जनों में इस प्रकार के सदगुण आ जाएँ तो समाज और राष्ट्र में चारों ओर मंगल ही मंगल दिखाई पड़ने लगेगा। तात्पर्य यह है कि समाज और राष्ट्र में मंगल तभी आता है, जब समाज और राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य और कर्तव्यों को बहुत ही सच्चाई, संकल्प, निष्ठा और तत्परता के साथ करने के लिए आगे आता है।

4

भरण–पोषण करने वाली मातृभूमि

यास्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्व्प्यन्ने दधातु।।

शब्दार्थ– (यस्याः) जिस मातृभूमि के साथ (चतस्रः) चार (प्रदिशः) हमेशा मंगलमय करने वाली दिशाएँ (यस्यां) और उस भूमि पर (अन्नं) जीवन देने वाले अन्न (कृष्टयः) परिश्रम

करके प्राणी मात्र को जीवन देने वाले किसानादि (संबभूबुः) मिल कर उन्नति के पथ पर चलने वाले (यस्याः पृथिव्या) जिस भूमि पर (चतस्रः प्रदेशः) धरणि के चारों कोनों पर (सा भूमि) हमारी मातृभूमि (नः) हमें हर तरह से (अष्टम) अन्नादि– चावल, गेहूँ आदि (सा बहुधा) वहाँ अनेक प्रकार से (प्राणात् यजत) मातृभूमि पर निरन्तर कर्म करने वाले (गोषु) गौदि (अपि) और है (बिभर्ति) जो धारण करके पोषण देती रहती हैं (अन्ने दधातु) अन्नादि देकर जो हमें परिपुष्ट करे।

भावार्थ– मंत्र में उन्नति के आधारों की चर्चा की गई है। मातृभूमि के प्रत्येक मानव का अपने समाज और राष्ट्र के साथ ही साथ मातृभूमि के प्रति उसके क्या कर्तव्य हैं इसको भी बताया गया है। इस धरती पर मानव की उन्नति के लिए वह सब कुछ उपलब्ध है जिसकी उसे आवश्यकता है। लेकिन आवश्यकता से अधिक की उपलब्धता तो यह धरती माता भी नहीं कर सकती हैं। उन्नति के लिए सभी दिशाएँ खुली हुईं हैं इस लिए मानव को चाहिए कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार उन्नति के मार्ग पर सदाचार पूर्वक आगे बढ़ता जाए।

विवृति– हे मातृभूमि! तुम्हारी सभी दिशाएँ पूर्णतः फैली हुई हैं। हर प्रकार के विकास का प्रथम कारण यही है। चारों दिशाओं में बसने वाला मनुज समाज ने यातायात के साधनों को बढ़ाने के लिए राजमार्गों का निर्माण किया हुआ है। उन्नति के अनन्त क्षेत्र हमारे सम्मुख हैं। सभी क्षेत्र पूर्णतः खुले और अवगाहनीय हैं। जो जितना चाहे और जिस क्षेत्र में चाहे उन्नति कर सकता है। उन्नति के लिए किसी भी मार्ग पर किसी भी प्रकार की बाधा नही है। शासन व प्रशासन की ओर से मातृभूमि पर निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं। तात्पर्य यह है कि जो जितना चाहे उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ सकता है।

हे धरती माँ! आप की गोद में खेलने वाले सभी नर–नारी प्रेम से मिलकर रहें, ऐसी उनके अन्दर सद्भावना निरन्तर बनी रहे। कृषादि–कर्म से भोजन सामग्री और उद्योग–कर्म से सुख के संसाधनों की सामग्री उपलब्ध होती है। खेतों से केवल प्रजा–जनों को अन्न व फलादि नहीं मिलते प्रत्युत पशुादि का चारा भी प्राप्त होता है।

हे मातृभूमि,! आप हर विधि से प्रत्येक प्राणी का भरण–पोषण एवं संरक्षण करती हो। देश व समाज का प्रत्येक प्राणी आप से बल, स्वास्थ्य, शक्ति व कर्म करने की क्षमता प्राप्त करता है। ऐसा कौन सा साधन, संसाधन, शक्ति, साधना और गति नहीं है जो मातृभूमि से प्राप्त न हो अर्थात् धरती माता ही सब का आधार है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आधार के बिना कोई भी व्यक्ति निर्माण के कार्य को आगे नहीं बढ़ा सकता है। इस लिए आधार का संरक्षण पोषण करना हर मानव का प्रथम और अनिवार्य कर्तव्य होता है। हम

सभी नर–नारी अपने कर्तव्यों का सतत् पालन करते जाएँ।

हे मातृभूमि! उन्नति के चारों दिशाओं के खुले होने से प्रत्येक नर–नारी का उन्नति करने के अनगिनत अवसर प्राप्त होते हैं। इन अवसरों का हम पूर्णतः उपयोग करें। इससे जहाँ जीवन के उद्देश्य पूरे होते हैं वहीं पर सम्पन्नता भी आती है। वेद का उपदेश यही है कि हम हर प्रकार से सम्पन्न एवं ऐश्वर्यशाली बनें। गौओं के दूध का दुग्धपान कर स्वस्थ व बलवान बनें। अपनी क्षमता व योग्यता का भरपूर उपयोग करके हम मातृभूमि के सभी नर–नारी मातृभूमि के विकास में निरन्तर अपना अवदान देते रहें।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद का अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण उपदेश प्रत्येक नर–नारी के लिए है। इसमें कहा गया है कि समाज एवं राष्ट्र में हर व्यक्ति को उन्नति करने के मार्ग और साधन उपलब्ध होने चाहिए। क्योंकि बिना स्वतंत्रता पूर्वक खुले मार्ग के कोई भी व्यक्ति निर्भय होकर उन्नति नहीं कर सकता है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आपसी कटुता को भुलाकर बहुत ही प्रेमपूर्वक रहना चाहिए। कृषिादि कर्म सभी प्रजा–जनों को मिलकर करना चाहिए।

शरीर से बलवान, बुद्धि से प्रखर और मन से संकल्पी बनकर हमेशा स्वस्थ और क्रियाशील रहने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। समाज और राष्ट्र की उन्नति के ये अनमोल सूत्र हैं, जिसे अमल में लाने की आवश्यकता है। समाज और राष्ट्र में खुशहाली तभी आती है, जब प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन बिना किसी स्वार्थ के पूरा करने के लिए संकल्पित होगा। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ ही साथ सामाजिक स्वास्थ्य को भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है। प्रत्येक परिवार में गौवंश का पालन बहुत श्रद्धा के साथ करना चाहिए। क्योंकि गौवंश व कृषि, स्वास्थ्य, उन्नति और सर्वकल्याण का आधार हैं। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को दूध, दही, घी और मक्खन सन्तुलित मात्रा में मिले, इसे भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। गौओं को अच्छा चारा और प्रत्येक प्रजाजन को सन्तुलित अन्न मिलना आवश्यक है। इसकी व्यवस्था राष्ट्र में राज्य की ओर से बिना भेदभाव के होनी चाहिए।

5

असुरों को परास्त करने वाले हमारे देवपुरुष

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु।।

शब्दार्थ– (यस्याम्) मातृभूमि पर जिस तरह से (पूर्व जनाः) हमारे पूर्वज अर्थात् श्रेष्ठ तपस्वी जन (विचक्रिरे) भाँति–भाँति के कार्य या विक्रम, उत्साह और मेद्याशक्ति से पूर्ण (यस्यां) जिस भूमि भाग पर (देवाः) देवगण, परोपकार करने वाले श्रेष्ठ–जन (असुरान्) यज्ञ कर्म को विनष्ट करने वाले (अभ्यवर्तयन्) विजय पाने वाले, असुरों को हराकर (गवां) गायादि (अश्वानाम्) तीव्र दौड़ने वाले शक्तिशाली घोड़े (वयसः च) पशु–पक्षियों के लिए सुरक्षित या अन्नों का (विष्ठा) सुख वाले स्थान (सा नः पृथिवी) वह हमारी मातृभूमि हम सबको (भगम्) ऐश्वर्य से युक्त कर दे (वर्चः) वर्चस्व बढ़ाने वाला ज्ञान, तेज और मेद्या (दधातु) निरन्तर प्रदान करें।

भावार्थ– मंत्र में देवत्व की प्राप्ति और दानवत्व के शमन की प्रेरणा दी गई है। हमारे अन्दर शक्ति, साहस, उत्साह और वीरता जैसे सदगुण निरन्तर बने रहने चाहिए। जिससे असुर शक्तियों को समाज में उभरने से रोका जा सके। जिस 'भग' शब्द पर विशेष बल दिया गया है वह इस बात को बताने के लिए है कि हममें ऐश्वर्य, धर्म, यश, शोभा, ज्ञान प्राप्त करने की उत्कंठा शाश्वत बनी रहे। और दुर्गुणों के प्रति वैराग्य की प्रवृति हो। मानव होने के नाते हमारा कर्तव्य समाज तक सीमित नहीं है प्रत्युत पशु–पक्षियों के पोषण, संरक्षण और सुरक्षा पर भी हमें ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए जो आवश्यक कदम हो, उसे उठाने में देर नहीं करना चाहिए।

विवृति– हे मातृभूमि! आप की महानता की प्रशंसा हम नहीं कर सकते हैं, क्योंकि आप की महिमा शब्दों के माध्यम से बखान नहीं की जा सकती है। हमारा परम सौभाग्य है कि आप मुझे मातृभूमि के रूप में प्राप्त हुई हैं। हे भूमिमाता! हमारे महान् पूर्वज पैदा हुए और उन्होंने अपने पुरुषार्थ, कार्य और स्वधर्म के माध्यम से अपनी भूमिका निभाकर के, मानवता के कल्याण को प्राथमिकता दी। हमारे पुरखे जीवन के सभी क्षेत्रों में उन्नति के शिखर पर पहुँचे थे। उनके कार्यों की कीर्ति आज भी धरती पर चारों ओर फैली हुई है और आज भी उनके कार्यों की प्रशंसा करने वाले हैं। वे हमारे इतिहास पुरुष हैं और मानव सभ्यता उनसे

प्रेरणा लेती है। समाज के हर परिवार में उनके गुणों की बखान आज भी होती है। उनके महान् होने का कारण, उनकी योग्यता, तपस्या और साधना है, जिसके कारण वे देवता बन गए थे।

यह मातृभूमि केवल मानव की ही नहीं है, बल्कि पशु–पक्षियों का भी विश्राम एवं कार्य स्थल है। सकल प्राणी जगत् धरती माता से ही अवलम्बन, पोषण और जीवन–समृद्धि के निमित्त आवश्यक सम्पदा अर्थात् ऊर्जा प्राप्त किया करता है। माँ की यह अदभुत सम्पदा प्राणी संसार के लिये उसी प्रकार से उपलब्ध है, जैसे हवा, जल और अंशु–रश्मियाँ। हम सभी मातृभूमि के प्रति नतमस्तक हैं। इसी पृथ्वी माता के पावन गोद में गौ, अश्व और दूसरे उपयोगी प्राणी सृष्टि–काल से निवास करते रहे हैं। जिस प्रकार से वनस्पतियाँ, पशु–पक्षी से भूषित यह मातृभूमि, जिस तरह से सारे जीव जगत् को संरक्षण देती आयी हैं, उसी प्रकार से हम सभी मनुष्य जन भू–माता से संरक्षण, पोषण, वात्सल्य, प्रेम से अनुप्राणित हो शौर्य, बल, विक्रम, उत्साह, सत्साहस, संकल्प और निरन्तर सद्–इच्छाओं को बढ़ायें। ऐसी हम सभी की पावन अभिलाषा है।

धरती पर निवास करने वाले प्रगतिगामी मनुष्य अपने श्रेष्ठ कार्यों से मातृभूमि को समृद्धि और विकास के लिये अपना सर्वस्व समर्पित करते हैं। उनका यह समर्पण सकल जगत् के लिये सदैव हितकारी और सुखदायक बना रहता है। हम सभी भद्रजन ऐसे कर्मवीर, धर्मवीर और आचारवान् प्रगतिशील जनों की वन्दना और प्रशंसा करते हैं। जिस प्रकार से हमारे महान् पूर्वज धरती माता को विविध प्रकार से अपने दिव्यातिदिव्य धर्मों (कर्तव्यों) और संकल्पों से आनन्दमयी और प्रगतिगामी बनाने का सुखद वातावरण बनाते थे, उसी प्रकार हम सभी भद्रजनों को चाहिये कि उन दिव्य गुणों से भूषित पूर्वजों का अनुसरण करते हुये पृथ्वी माता की रक्षा और पोषण के निमित्त समर्पित भाव से कार्य करते रहें। इस वसुधा पर ज्ञान–विज्ञान की अनन्त धारायें अनन्त काल से समाज को उन्नत बनाने के लिये, अपना अक्षुण्य योगदान करती रहीं हैं। इससे धरती पर निवास करने वाले श्रेष्ठ–जनों को सुख देने वाली निहारिकायें पल्लवित और पुष्पित होती रहीं हैं। हम सभी लोगों को यह पावन कर्तव्य है कि पृथ्वी के पर्यावरण, विकास और शुभ के निमित्त बिना किसी स्वार्थ और प्रशंसा की अभिलाषा के सबके शुभ, समृद्धि और संरक्षण के लिये अपने कर्तव्यों का निरन्तर योगक्षेम पूर्वक प्रेमदान करते रहें। इससे धरती पर एक आदर्श और सन्तुलित समाज का निर्माण हो सकेगा।

वेद के एक प्रसिद्ध मंत्र में कहा गया है–यह धरती माता उन श्रेष्ठ लोगों के लिये है

जो इसे अपनी माँ मानते हैं। धात्री को माँ मानने का अर्थ है हमारा कर्तव्य एक सुपुत्र होने के कारण इसका निरन्तर पोषण, संरक्षण और आनन्दमयी बनाना है। इसके पर्यावरण को हम उसी प्रकार संरक्षित और शुभकारी बनायें, जैसे हमारे पूर्वज हमें विरासत में हमें सौंप गये थे। हमारा कोई भी कर्म, ज्ञान और संकल्प (उत्साह) ऐसा न हो जो मातृभूमि के लिये उपयोगी न हो अर्थात् हम सत्यम, शिवम्, और सुन्दरम् के अनुगामी और पोषक बनें। इससे हम मातृभूमि को स्वर्ग बना सकते हैं।

मातृभूमि की महिमा का गान करते हुए वेद के इस मंत्र में उपदेश दिया गया है कि समाज और राष्ट्र में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे हमारे महान् पूर्वजों के द्वारा डाली गईं महान् परम्पराएँ निरन्तर आगे भी चलती रहें। सभी प्रजाजन सब के हित करने वाले कार्यों को करते हुए प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ें। समाज में जो देवपुरुष कहे जाते हैं, वह अपने देवत्वपूर्ण कार्यों से समाज के अधम लोगों को परास्त करते रहें जिससे देवत्व के मूल्य समाज में निरन्तर आगे बढ़ते रहें। भाव यह है कि समाज में जो दुष्ट–प्रकृति के व्यक्ति हैं, उनका दमन होते रहना चाहिए। समाज और राष्ट्र का कल्याण तभी निष्कंटक रूप से होगा। समाज के हर व्यक्ति को उन्नति के लिए समान अवसर देना चाहिए। जिस 'भग' नामक ऐश्वर्य की प्रशंसा वेदों में की गई है, उस 'भग' की प्राप्ति प्रत्येक व्यक्ति को हो जिससे समाज में कोई पीछे न रह जाए।

6

जगत् हितकारी वैश्वानर अग्नि धारण करने वाली

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु।।

शब्दार्थ– (विश्वम्भरा) सब का अपने ऊपर धारण करने वाली या सभी ऐश्वर्यों को अपने में धारण करने वाली पृथ्वी माता (प्रतिष्ठा) सब का सबल सम्बल है जो (हिरण्यवक्षाः) स्वर्ण जैसे जिसके वक्ष हैं (जगतः) सारे प्राणी जिस पर निवास करते हैं (निवेशनी) सभी प्राणियों एवं अप्राणियों का विश्राम स्थल (वैश्वानरम्) विश्वभर को तेज व गतिशील करने वाली (अग्नि) ऊर्ध्वगामी गति जिसमें हो–ऐसी सार्वभौमिक तेजोमय को (विभ्रती) सदैव जो धारण करती आयी है, अपने में रखने वाली (भूमिः) मातृभूमि जो कहाती है (अग्रिम) सदैव नेतृत्व

करने वाले (इन्द्र–वृषभा) जो इन्द्र की शक्ति है (नः) हम सभी को (द्रविणं) ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला धन (दधातु) सदैव दृढ़ता पूर्वक धारण करें।

भावार्थ– पृथ्वी माता मातृभूमि, सारे जगत् की आधार कही जाती हैं। सारे प्राणी–अप्राणी, कीट–पंतगें, पशु–पक्षी, वनस्पतियाँ, औषधियाँ और अन्य सभी वस्तुएँ भू–माता के गर्भ से पैदा होते हैं। इस कारण से मातृभूमि को 'विश्वम्भरा' 'वासुदानद' 'हिरण्यवक्षा' 'वैश्वानर अग्नि' एवं 'इन्द्रऋषभा' कहा गया है। प्रजा–जनों का पालन–पोषण, ऐश्वर्य और जीवन–शक्ति मातृभूमि से ही प्राप्त होती है। जिस भू–माता से अनन्तकाल से मानव और अन्य सभी प्राणियों को जीवन की सभी आवश्यकताएँ प्राप्त हो रही हैं, वह सभी के लिए सदैव वन्दनीय हैं।

विवृति– हे मातृभूमि! आप विश्वम्भरा कहलाती हैं। आप प्रजा–जनों का भरण–पोषण करने वाली हैं। आप अपने ऊपर सबको धारण करने वाली हैं। समाज का प्रत्येक मानव, पशु–पक्षी, कीट–पतंग और वनस्पतियाँ, आप पर ही टिके हुए हैं और इन सब को इनकी आवश्यकताओं के अनुसार इनकी रक्षा, पोषण और धान्य प्रदान करती हैं। हे माँ! आप ही 'वासुधानी' कही जाती हैं। जितने भी प्रकार के वसु और धन हैं सभी आप के अन्दर ही विद्यमान हैं। जैसे ही, हम कामना करते हैं वैसे ही आप अपने सहस्र हाथों से हमारे लिए ऐश्वर्य प्रदान कर देती हो। भाव यह है कि मातृभूमि सभी प्रजा–जनों को वह सब कुछ प्रदान करती है जो उनकी आवश्यकता होती है।

हे भूमिमाता! आप हम सब की आधार हैं। आप का आश्रय पाकर हम अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आप के कारण ही हम सभी प्रजाजन प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, इस लिए आप भी प्रतिष्ठित हैं। आप के कारण (मातृभूमि) ही हम प्रजाजन दूसरे राष्ट्रों में भी प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। हम आप के कारण ही आदर और सत्कार प्राप्त करते हैं। इस लिए हम आप पर बलि–बलि जाते हैं कि आप हमारी महिमामयी मातृभूमि हैं। आप की महिमा के क्या कहने। हम सभी प्रजाजन हर स्थान पर कितनी प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं।

हे मातृभूमि! इस सकल ब्रह्माण्ड में तुम ही वासुधानद कही जाती हो। सारे वसु–सभी तरह का धन–तुम ही धारण करती हो। तुम्हारी दया और कृपा का कोई पारावार नहीं। मुझे, जिस भी कल्याणकारक वस्तु की आवश्कता होती है, वह सभी आप प्रदान करती हो। मेरी इच्छाएँ, मेरी कामनाएँ पूर्ण करती हो।

हे मातृभमि! आप ही हिरण्यवक्षा कहलाती हो। मानव स्वर्णादि बहुमूल्य धातु आप से

प्राप्त करता है। इतना ही नहीं प्रत्युत स्वर्ण से भी बहुमूल्य रत्न आप की छाती में भरे हुये हैं। हम मानव इन धातुओं को प्राप्त कर धनवान और सुखी बनते हैं।

हे भूमिमाता! आप अपने अन्तः में 'वैश्वानर' अग्नि को धारण करती हो, जिससे सर्वहित होता है। यह गुण और स्वभाव में सृष्टिकाल से ही विद्यमान रहा है। आप से अपरिमित ऊर्जा प्राप्त कर मनुष्य, पशु–पक्षी, कीट–पतंग और तरह–तरह की वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं। यदि धरती में ऊर्जा न होती तो कोई भी जीव–जन्तु या वनस्पति इस पर उत्पन्न होकर, जीवन न पाते। इस ऊर्जा के कारण ही आप 'वैश्वानर–अग्नि' कहलाती हो।

अग्नि के विविध रूप हैं। परमात्मा को अग्नि (परमात्म–अग्नि) आत्मा को अग्नि, संकल्प और ब्राह्मण को अग्नि तथा सत्साहस को भी अग्नि कहा जाता है। परमात्मा अग्नि इस लिए कहा जाता है क्यों कि सारा ब्रह्माण्ड इसी ने बनाया है। यह ही सबका रक्षक और पालक है।

ब्राह्मण को भी अग्नि कहा गया है। ब्राह्मण की अग्नि उसका ज्ञान, महान् चरित्र, परोपकार के कार्य और धर्मोपदेश है। ब्राह्मण को महान् तपस्वी, संयमी, अहिंसा पालक, दयावान् और परोपकारी होना चाहिए। उसे अनुसन्धानक, तत्त्वदर्शी और ज्ञान का प्रसारक और प्रचारक होना चाहिए। समाज और राष्ट्र की रक्षा करना उसका परम पावन कर्तव्य होता है। इन गुणों के कारण ही ब्राह्मण वैश्वानर अग्नि है। हे भूमि–माता! इस प्रकार आप भी वैश्वानरग्नि हैं।

परमपिता परमात्मा को भी वेद में अग्नि कहा गया है। वह तो सकल जगत् का निर्माण करने वाला, सब का रक्षक, सब का हित करने वाला और सम्पूर्ण संसार की प्रजा का पालक है। समाज में वैश्वानर अग्नि विद्यमान है। सभी लोग उस परमात्मा पर विश्वास करने वाले हैं। और ईश्वर पर विश्वास ही ईश्वर को मानने और जानने की पहली सीढ़ी है। प्रजा–जनों का जीवन ईश्वर–विश्वास और आध्यात्मिकता से भरा पूरा है। सभी में उदारता, शान्ति, गम्भीरता और सन्तुष्टि है। सभी धर्मपरायण हैं और प्राणीमात्र को ईश्वर की सन्तान समझकर सभी एक दूसरे को भाई समझते हैं। और सभी में एक दूसरे के प्रति प्रेम, सहानुभूति और सदाशयता की वृति का समावेश है। सभी प्रजा–जनों में न्याय, अहिंसा, सत्य और धर्म का भाव रोम–रोम में भरा हुआ है। सभी में अधर्म, अन्याय और हिंसा का प्रतिरोध करने की भावना पूरी तरह से भरी हुई है।

हमारी प्यारी मातृभूमि 'इन्द्रऋषभा' कही जाती है। कहने का भाव यह है कि इन्द्र आप

का अधिपति है। वेद में इन्द्र का अर्थ सूर्य भी बताया गया है। हे माता! सूर्य रात–दिन अपने ज्योति से आप पर आश्रय पा रहे सभी प्राणियों को प्राण प्रदान करके रक्षा कर रहा है। धरती माता, आप रात–दिन सूर्य की पदक्षिणा करती हैं जिससे की छः ऋतुओं का निर्माण होता है। सूर्य के प्रकाश के कारण ही वनस्पतियाँ और औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, और हम प्रजाजन इन वनस्पतियों और औषधियों का उपयोग करके अपनी जीवन–यात्रा को चलाते हैं। भाव यह है कि सूर्य के रक्षक और पालक होने के कारण मातृभूमि आप 'इन्द्र ऋषभा' हैं।

हे भूमिमाता! इस जगत् में कितनी प्रकार की विशेषताएँ और सद्गुण विद्यमान् हैं। इनके कारण ही इस जगत् में चारों ओर धन्य–धान्य भरा हुआ है। और यह ऐश्वर्य, उस इन्द्र से प्राप्त होता है जो सम्राट भी कहा जाता है। यह सम्राट प्रजाओं द्वारा चुना जाता है। और वह सम्राट प्रजाओं का पालन, रक्षण और राज्य का सारा प्रबन्धन करने वाला है। इस लिए हे मातृभूमि, आप इन्द्रऋषभा कही जाती हो।

आत्मा और परमात्मा को इन्द्र कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि सभी प्रजाजन अपनी आत्मा का ध्यान करते रहते हैं जिससे वे पतित नहीं होते हैं। कोई भी व्यक्ति कोई निकृष्ट कार्य करके अपनी आत्मा का हनन ही करता। इस लिए सभी प्रजा–जनों की आत्मा सदैव निर्मल बनी रहती है। इसी प्रकार सभी प्रजा–जनों में ईश्वर पर विश्वास हमेशा बना रहता है। ईश्वर–विश्वासी व्यक्ति कभी किसी को धोखा नहीं देता है। इस प्रकार सभी लोगों में आत्मा–परमात्मा को समझने में बहुत तीव्रता है। इस लिए भी हे भूमि–माता! आप इन्द्रऋषभा हैं।

मातृभूमि की स्तुति का गान करते हुए भक्त वेद के इस मंत्र में कहता है कि एक आदर्श राष्ट्र और राज्य में कौन–कौन सी विशेषताएँ होनी चाहिए। समाज और राष्ट्र एक आदर्श समाज और राष्ट्र तब बनते हैं, जब सब लोग ऐश्वर्य से परिपूर्ण हो जाते हैं। अर्थ का विभाजन इस प्रकार का होना चाहिए कि कोई भी भरण–पोषण से वंचित न हो सके। समाज और राष्ट्र में आदर्श स्थापित करने के लिए 'वैश्वानर अग्नि' सबके अन्तःकरण में जलती रहनी चाहिए। एक आदर्श समाज एवं राष्ट्र को सन्तुलित ढंग से संचालित करने के लिए इन्द्र–तत्त्व को अपना अधिपति बनाना चाहिए। जिससे समाज व राष्ट्र प्रगति के पथ पर अहिर्निश आगे बढता रहे। भाव यह है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति में ऐसे महान् तत्त्व होने चाहिए जो समाज और राष्ट्र को गौरव प्रदान करें।

7

मातृभूमि रक्षार्थ सदा जागृत रहें

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।

शब्दार्थ– (रक्षन्ति) जिससे हम रक्षित होते हैं या जिसकी हम रक्षा करते है (अस्वप्नाः) पूर्ण स्फूर्ति से युक्त (आलस्य, प्रमाद व निद्रा से रहित) (देवाः) जो देने के बदले कुछ भी ग्रहण नहीं करते ऐसे देवगण (यां) जिस मातृभूमि पर (विश्वदानीम्) सदा या विश्व जिस दान से सुखी होता है (भूमिं पृथिवीम्) वंदनीय मातृभूमि के निमित्त, विस्तार वाली (अप्रमादम्) सदैव तेजयुक्त रहते हुए (सा) वह (नो) हम सब की (प्रियं) जो सदैव प्रिय या प्यारा है (दुहाम्) अमृत प्राप्त करते हैं (वर्चसा) जिससे तेज, ओज एवं ऐश्वर्य प्राप्त हो (उक्षतु) हमें परिपूर्ण बनाकर पुष्ट करें।

भावार्थ– पृथ्वी पर निवास करने वाले प्रजा–जनों में आत्मगौरव, आत्मबोध और तेज हमेशा बना रहता है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति धन–धान्य, आत्मबल, सत्साहस, प्रेम, अहिंसा, सत्य और अन्य सभी सद्गुणों से सदैव भरा रहता है। अपने मातृभूमि के प्रति श्रद्धा, भक्ति, सेवा और सुरक्षा की भावना प्रत्येक व्यक्ति में निरंतर बनी रहती है। मातृभूमि का उसके प्रजा–जनों का सम्बन्ध माँ और पुत्र जैसा है। मातृभूमि से प्राप्त शक्ति से प्रत्येक मानव में मनस्विता और तेजस्विता की धारा निरन्तर बहती रहती है। इससे किसी के अन्दर तमस्, अज्ञान और अविद्या का प्रादुर्भाव नहीं होता है। सभी अपने स्वधर्म (मानव जीवन के करणीय कर्तव्य) का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं।

विवृति– हे मातृभूमि! हम आप का शत् शत् बार नमन् करते हैं। हे माता, आप पर निवास करने वाले प्रजाजन देव अर्थात् विद्वान, परोपकारी, विद्यावान, ऐश्वर्यवान हैं। जो धन सम्पदा है उसकी हम सदा रक्षा करते रहें। हे माता, हममें ऐसा ज्ञान दें कि हम परिपूर्ण अपने परम पुरुषार्थ से ज्ञान का संरक्षण करते रहें। निज कर्तव्य से तेजोमय दिव्यवान विद्वान, उद्योगधर्मी, ऐश्वर्यवान और परहित करने वाले मनस्वीगण मातृभूमि पर बढ़ रहे अंधकार आलस्य, प्रमाद, अज्ञान और भ्रष्टाचार को समूल नाश कर दें। जब तक धरती पर आलस्य, प्रमाद, अज्ञान और अन्याय (शोषण) को प्रश्रय मिलता रहेगा, तब तक मातृभूमि पर अशान्ति, तनाव और क्लेश छाया रहेगा। इसलिए आवश्यक है, हम सभी में मातृभूमि के प्रति वह अनन्य भक्ति, श्रद्धा और सेवा की भावना अनवरत बनी रहे जिससे किसी को भी किसी प्रकार का भय, भ्रान्ति, डर और

विभीषिका का सामना न करना पड़े। सभी हर तरह से सुखी, निरोग और सुशान्तिमय वातावरण में प्रमुदित जीवन व्यतीत करें। हम सभी में ऐसा तेज, तप ऐश्वर्य, ईश्वर–भक्ति और नर–सेवा की भावना ओत प्रोत हो जिससे विश्व समाज को मानवीय मनस्विता का अहिर्निश एहसास हो। हमारे रोम–रोम में मातृ–वन्दना का संचार हर क्षण होता रहे।

हे वंदनीय माँ! हमारी धमनियों में आत्मगौरव, आत्मबोध और आत्म–तेज का संचार हो। आप ऐसी कृपा करें। जिससे समाज का हर व्यक्ति ऐश्वर्य, ज्ञान, धन, आत्मबल और सुविद्या से पूरित हो जाए। धर्म का पालन (= धर्म का मतलब = प्राकृतिक नियमों का पालन) कर जन मानवीय चेतना से परिपूर्ण बनें। जिस तरह से एक माँ अपने शिशु की रक्षा करती है, लेकिन यही शिशु जब तन, मन, हृदय और बुद्धि से बड़ा हो जाता है, तब वह माँ की रक्षा, संरक्षण ही नहीं करता, बल्कि पोषण भी करता है। शास्त्र में कहा गया है, माता कभी कुमाता नहीं बन सकती चाहे शिशु (बालक, पुत्र) कुपुत्र भले ही हो जाए। ऋग्वेद के मंत्रों में कहा गया है, मातृभूमि की सेवा, संरक्षण और पोषण करना स्वर्ग से बढ करके है। मातृभूमि की शक्ति से ही हममें शक्ति, बल, विक्रम, उत्साह और उमंग (उद्वेग) बढ़ता है। जो व्यक्ति आलस्य, प्रमाद, निद्रा और तन्द्रा तोड़कर मातृभूमि की सेवा कर्तव्य भावना से ओत प्रोत होकर करता है, उसका जन्म लेना सार्थक हो जाता है। मनुष्य इस ब्रह्माण्ड में ऐसा प्रज्ञावान प्राणी है जो मातृभूमि की सेवा, वन्दना और पोषण कर सकता है।

हे मातृभूमि! आप की वात्सल्यमयी गोद में पलने–बढ़ने वाले प्रजाजन देव हैं। उनमें आलस्य, प्रमाद नहीं है। वे हर पल अपने कर्तव्य और कार्यों के प्रति सजग हैं। कभी भीरूता और स्वार्थ की भावना, उनमें नहीं है। उनको अपने कार्यों के प्रति अदम्य साहस व उत्साह है। वे आप की शत्रुओं से रक्षा करने में भी आलस्य व प्रमाद नहीं करते हैं। वे अपने कला–कौशल, व्यवहार और श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम व्यवस्था करने में सक्षम हैं। जिससे देश व समाज में सब को प्रगति व विस्तार का सुअवसर प्राप्त होता है। प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त अवसरों का सदुपयोग करके स्वयं को देव की श्रेणी में ला सकता है। वह महान् बनकर कीर्ति अर्जित करके प्रसिद्धी के उच्च शिखर तक पहुँच सकता है।

हे मातृभूमि! आप देवों से सर्वथा व सर्वदा रक्षित हैं। ऐसे देवों को आप से 'मधु' की आवश्यकता है। सभी प्रजा–जनों को 'मधु' देकर आप उन्हें तृप्त करें। सभी प्रजाजन 'मधु' प्राप्तकर ऐवर्श्यवान (धन–धान्य एवं सद्गुणों से युक्त) बन जायें। आप में वह सामर्थ्य है कि जो भी वांक्षा प्रजाजन करें, उसे आप सहजता से प्रदान कर सकती हो। इस लिए प्रजा–जनों की सभी को सुखी बनाने वाली और सुमंगल करने वाली कामनाओं को पूर्ण करें। सभी देवों को तेज

से भर दें। सुमंगल–पथ पर अग्रसित करते हुए उन्हें 'उक्षित' भी कर दें। इससे प्रत्येक व्यक्ति का जीवन तेजोमय हो जाएगा। प्रगति और पूर्णतः के मार्ग पर प्रजा–जनों को आगे बढ़ाते हुए उन्हें इतना बल विक्रम, उत्साह और सत्साहस से परिपूर्ण कर दें कि उनमें अजेय और अखण्ड संकल्प का भाव उत्पन्न हो जाए। इससे वे आप की रक्षा के कार्य में सदैव तत्पर रह सकेंगे। मातृभूमि की रक्षा हेतु कर्तव्यबोध के इस भाव धरा पर मातृभूमि के प्रार्थना हेतु वेद के इस मंत्र में प्रत्येक प्रजा–जनों को उपदेश दिया गया है कि जिनकी इच्छा है कि मातृभूमि उन्हें हर प्रकार से मधु, सुख, आनन्द, समृद्धि प्राप्त हो, उन्हें चाहिए कि वे स्वयं को 'देव' बनायें। स्पष्ट है कि देव वह है जो ज्ञानी, विद्वान, और विद्या से युक्त हैं। व्यवहार–कुशलता, विद्या, बल, उत्साह, बुद्धि, ज्ञान, और विज्ञान के ज्ञाता बनकर सदैव जाग्रत रहते हुए मातृभूमि की रक्षा में हर पल तत्पर रहें। इससे मातृभूमि की शत्रुओं से रक्षा हो सकती है।

वेद स्तुति गान के इस मंत्र में उपदेश दिया गया है कि मातृभूमि के सभी प्रजा–जनों में बल, सत्साहस, उत्साह, विक्रम और अखण्ड संकल्प होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति मातृभूमि के प्रति बैर–विरोध रखने वाले शत्रुओं को परास्त करके मातृभमि की रक्षा करने में सामर्थ्य होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि सभी मन, तन और धन्य–धान्य से पूर्णतः सामर्थ्यवान हो। सभी के अन्दर सुमंगल करने की भावना भी निरन्तर बनी रहनी चाहिए। जीवन में सत्कर्म करके 'देव' की श्रेणी में पहुंचने के लिए संकल्प होना ही चाहिए। सदगुणों की ग्राह्यता और दुर्गुणों के त्याग के लिए प्रत्येक क्षण तैयार रहना चाहिए। मातृभूमि के प्रति जो एक प्रजा का कर्तव्य होना चाहिए उसके पालन में और सम्पूर्ण मानव समाज के प्रति अपनी सदभावना निरन्तर बनाए रखने का संकल्प और सद्–इच्छा होनी चाहिए।

8

सदा सत्य सुवासित करने वाली

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे।।

शब्दार्थ– (या) जिस भूमि पर (अग्रे) पहले पहल (सलिलं) प्रवाहमान जल में (अर्णवे) समुद्र में (अधि) विशेष रूप से (आसीत्) थी या स्थिति (यां) जिसकी (मनीषिणः) बुद्धिमान लोग,

विद्वानों ने (यस्याः पृथिव्याः) वह मातृभूमि (हृदयं) केन्द्र विन्दु है (मायाभिः) विधिपूर्वक (परमे व्योमन्) उस अनंतलोक में (सत्येना वृतं) पूर्णरूपेण सत्य से आच्छादित (अमृतम्) जो मरणशील नहीं है (अन्वचरन्) आचरण के माध्यम से (साभूमिः) वह भू–माता (नः) हम सबके (उत्तमे राष्ट्रे) विज्ञवान राष्ट्र के लिए (त्विषिम्) तेजोमय (बलं) सामर्थ्यवान, बल विद्या, ज्ञान, और शूर–वीरता से युक्त हो (दधातु) निरन्तर प्रदान करतीं रहे।

भावार्थ– मातृभूमि की महिमा को विविध रूपों में हम देखते और अनुभव करते हैं। संस्कृति की धारा हो या मानव धर्म की धारा, नदी की धारा हो या समुद्र की, सभी प्रकार की धाराएं इस वसुधा पर ही प्रवाहित होती हैं। यह सारी भूमि अनंत विविधताओं और रहस्यों से भूषित है। हम सभी मातृभूमि पर निवास करने वाले प्रजाजन इन विविधताओं और रहस्यों को समझें और धरती पर उपलब्ध वस्तुओं और द्रव्यों का संतुलित ढंग से लाभ उठाएं। कभी भूलकर भी मातृभूमि पर बसने वाले किसी भी प्राणी की हानि न करें।

विवृति– भूमि का आविर्भाव समुद्र से हुआ। इस लिए इसे सिन्धु दुहिता कहा जाता है। ऋग्वेद में सृष्टि–क्रम विधिवत् समझाया गया है। सृष्टि के सृजन के पूर्व इस ब्रह्माण्ड में ऋत और सत्य था। ये दोनों अनादि माने जाते हैं। जल ही जीवन है। इसका अर्थ जल से ही सृष्टि का चक्र आगे बढ़ा। परमात्मा की बनाई इस रहस्यमयी और अद्भुत सृष्टि के कण–कण में ज्योतिर्मय परमात्मा विद्यमान है। इस तरह से जैसे लकड़ी या पत्थर में अग्नि मौजूद रहती है। घर्षण के बाद ही अग्नि प्रकट होती है उसी तरह साधना या योगचर्या के बाद (जिसे आत्म–घर्षण कहा जा सकता है) अन्तःकरण में परमात्म–अग्नि प्रकट होती है।

हे मातृभूमि! आप सब को धारण करने वाली हो। जड़, जंगम, चेतन, प्राणिक, अप्राणिक, पर्वत, सागर, नदी, नाले, वन, रत्न–माणिक्य, और खनिज लवणों से भूषित आप की हम सभी वन्दना करते हैं। धरणि, मही, वसुन्धरा, रत्नगर्भा और महीमति रूप में आप का स्तवन स्तुत्य है। आप के गर्भ से उत्पन्न प्राणी आप से सदैव सुख, शान्ति और पोषण पाकर सदा आनन्द का अनुभव करते हैं। विद्वान, वीर, योद्धा, सूरवीर, ज्ञानी और योगी जन से आप सदा सुशोभित होती आई हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी, और संन्यासी आप की विविध रूपों में वन्दना करते हैं। जिस सत्य संकल्प और विधि–विधान से विद्वान जन आप का अन्वेषण करते हैं वह सत्य संकल्प विश्व समाज के लिए मार्ग दर्शक बने। सत्य मनुष्य मात्र के जीवन का आधार बनें, ऐसी कामना हम सभी करते हैं।

कविजन कहते हैं कि भूमि हमारी माता है और आकाश पिता। माँ पुत्र–पुत्रियों को अपने

दुग्ध, स्नेह और वात्सल्य से जहां सिंचित करती है वहीं पिता पालन–पोषण करके जीवन को मर्यादित कर आगे बढ़ाता है। परमात्मा ब्रह्माण्ड के कण–कण, भाव–अभाव, सत्य–असत्य और आकार–निराकार हर वस्तु में व्याप्त है। वह हमारा परमपिता और परम माता है। हम सभी मातृभूमि के प्रतिपालक जन मिलकर परमपिता एवं परम माता स्वरूप सच्चिदानन्द की वन्दना करते हैं। वह इस लिए भी कि उसके ही सत् संकल्प से जल, थल, सूर्य, चंद्रमा और ग्रह–नक्षत्रों का आविर्भाव हुआ।

मातृभूमि का हृदय अमृत–तत्त्व से सदा भूषित रहता है। इस लिए हम सभी जन अमृत–पुत्र कहे जाते हैं। आकाश सत्य के सहारे टिका हुआ है। यह सत्य और कुछ नहीं परम शक्तिवान परमेश्वर है। हम सभी उसका आधार लेकर निरन्तर विकास और विज्ञान मार्ग पर आगे बढ़ते रहें। सृष्टि का विकास का मतलब मनुष्य का विकास। मनुष्य के विकास का मायने ज्ञान, विज्ञान, भूगोल, योग, यज्ञ, धर्म, अध्यात्म, साहित्य और अन्य सभी में राष्ट्र वन्दना की भावना निरन्तर जागृत होती रहे, ऐसी शक्ति, साधना, ऊर्जा और संकल्प हममें भर दें।

वेद और विज्ञान के अनुसार यह मातृभूमि सागर से आच्छादित थी। समय के साथ यह समुद्र से बाहर आई और इसका अस्तित्त्व अलग हुआ। भूमि की जब परिचर्या की गई तब यह मातृभूमि के रूप में आ गई। इस प्रकार इसका (मातृभूमि का) और इसकी परिचर्या करने वालों के बीच माँ और पुत्र का एक अटूट सम्बन्ध निर्मित हो गया। यह सम्बन्ध ऐसा मौलिक सम्बन्ध बना कि अन्य अनगिनत सम्बन्ध मानव समाज में निर्मित हुये। कहा जाता है, एक भूखण्ड पर साथ मिलकर अत्यन्त प्रेम से जब लोग परस्पर मैत्रीभाव से रहते हैं, तो अपने सुख–दुख को दूसरों का सुख–दुख समझने लगते हैं। इससे सभी की समृद्धि और विकास होता है। ऐसी मातृभूमि पर रहने वाले प्रत्येक जन की वह मातृभूमि हो जाती है। दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझने का भाव उत्पन्न हो जाता है। अपना दुख नहीं दूसरों का दुख दूर करने में हृदय में जो संवेदना उत्पन्न होती है, वह परस्पर एक–दूसरे को मैत्री भाव से युक्त कर देती है। सुख–दुख ही क्यों, रहन–सहन, वेश–भूषा, व्यवहार सभी कुछ में पूरकता बढ़ने लगती है। एक दूसरे को सुखी बनाने की चेष्टा आपस में एक ऐसा सम्बन्ध विकसित करती है जो अटूट बन जाती है। जो भी मैत्री सम्बन्ध विकसित होते हैं, वे मातृभूमि की परिचर्या–सेवा के लिए सतत् आगे बढ़ते जाते हैं। जो भूमि एक माटी के ठेर के समान थी, वह आपस की परस्पर मैत्री भाव जाग्रत होने के बाद मातृभूमि के रूप में वन्दनीय हो जाती है। हम सभी उसके पुत्र और वह हमारी माता बन जाती है।

हे मातृभूमि! तुम्हारी महानता का क्या वर्णन करूँ। जिसका हृदय सदैव सत्य से

आच्छादित रहता है और परमव्योम परमाकाश में आश्रित रहता है। विभिन्न देशों की संस्कृति जिसका हृदय होती है। विविधता के होते हुए भी सभी परस्पर मातृभूमि के कारण बधे रहते हैं। सभी की संस्कृति सतत् धारावाही रूप में प्रवाहमान होती रहती है। संस्कृति की यह धारा एक पीढ़ी से दूसरे, दूसरे से तीसरे और तीसरे से चौथे अर्थात् पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रवाहित होती रहती है। ऐसे सब राष्ट्रों का हृदय, अर्थात संस्कृति की धारा अमर बन जाती है, यही संस्कृति की विशेषता है।

मातृभूमि पर बहने वाली संस्कृतिधारा की स्थिरता, तेजोस्विता और विकास का आधार संस्कृति में समाहित सत्य होता है। राष्ट्रों की संस्कृति की स्थिरता और अमरता का आधार सत्य ही होता है। यदि संस्कृति में सत्यांश का अंश पूर्ण नहीं होता तो संस्कृति की स्थिरता व अमरता नहीं हो सकती। दीर्घजीवी संस्कृति के लिए इसी लिए सत्य का आवलम्बन कभी समाप्त नहीं होना चाहिए। मातृभूमि के प्रजा–जनों का यह कर्तव्य है कि वे सतत् ध्यान रखें कि सत्य का संस्कृति से विलगन न होने पाए। कहने का भाव यह है कि राष्ट्र–संस्कृति का हृदय सत्य से सदैव आवृत रहे।

व्योम का अर्थ रक्षा करने वाला होता है। 'परमेव्योमन्' शब्द परमपिता परमात्मा का सब के रक्षा करने के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। परमेश्वर से बढ़कर इस ब्रह्माण्ड में दूसरा कोई रक्षक नहीं है। साथ ही इस शब्द का प्रयोग परमात्मा का व्यापक होने में प्रयुक्त होता है। यहाँ कहने का भाव यह है कि परमरक्षक और परम व्यापक परमात्मा ही सत्य संस्कृति का सच्चा रक्षक है। संस्कृति बिना उसके रक्षित नहीं हो सकती। लेकिन उसकी अनुकम्पा के साथ ही हम मानवों को अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए वे सभी उपाय करने चाहिए जो आवश्यक हों।

परमात्मा सत्य स्वरूप है। संस्कृति सत्य पर ही स्थिर व अमर बन सकती है। भाव यह है कि सत्य–स्वरूप परमात्मा से ही सत्य संस्कृति की रक्षा पूर्णतः हो सकती है। यह सभी प्रजा–जनों के लिए तो है ही समाज व राष्ट्र के लिए भी आवश्यक है कि हम अनवरत संस्कृति के अवलम्बन –सत्य को संस्कृति से अलग न होने दें। संस्कृति की स्थिरता, अमरता और प्रवाहमयता के लिए दूसरा जो बड़ा आधार है वह उसका आध्यात्मिक होना। आध्यात्मिकता वाली संस्कृति ही विश्व में तेजोमय होती हुई विजय प्राप्त करती है। कहने का भाव यह है कि संस्कृति के हृदय में परमात्मा का वास हो साथ में आध्यात्मिकता को धारण करें। इस लिए परमपिता परमेश्वर के प्रति श्रद्धा, भक्ति सदैव बनी रहे। अपने राष्ट्रभूमि के प्रति हमारा प्रेम सदैव बना रहे। साथ में यह भी आवश्यक है कि राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिक हो। परमात्मा की अनुकम्पा उसी संस्कृति पर बरसती है जिस राष्ट्र के निवासी

आध्यात्मिक होते हैं। हमें इस पर ध्यान देना चाहिए।

हे मातृभूमि! तुम्हारा हृदय, संस्कृति–हृदय और संस्कृति का पोषण राष्ट्र–जनों का सत्य से आच्छादित रहे। अनुप्राणित रहे। वह संस्कृति कभी मरणधर्मा नहीं हो सकती है। अमर और स्थिर संस्कृति वाली हे मातृभूमि, तुम्हारे अगणित गुणों के कारण तुम्हारे अनगिनत नाम हैं। इन्हीं में पृथ्वी भी एक नाम है। हम सभी पृथ्वीवासी आप के हृदय अर्थात् संस्कृति को सदैव उदात्त भावनाओं से युक्त होकर अपने कर्तव्यों का सदैव पालन करते रहें। हममें शूरवीरता, बल, विद्या, ज्ञान और तेज प्रदान करें। जिससे तुम्हारी हर विधि से रक्षा करते हुये हम प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ सकें।

मातृभूमि की वन्दना करते हुए भक्त वत्सल इस वेद मंत्र में आनुषंगिक रूप में मातृभूमि की भावना का दार्शनिक आधार का दिग्दर्शन कराया गया है। जिसमें कहा गया है कि कोई भी समाज और राष्ट्र अपनी संस्कृति के बिना जीवित नहीं रह सकता है। और इस संस्कृति को जीवन का आधार बनाकर ही प्रजा–जनों का कल्याण किया जा सकता है। राष्ट्र अपने धारावाही सांस्कृतिक जीवन में तभी अमर हो सकता है, जब वह सत्य, ईश्वर–विश्वास और उससे आने वाली गहरी आध्यात्मिकता से सराबोर हो। जिस समाज व राष्ट्र का अपना कोई वृहद् सांस्कृतिक जीवन नहीं होता वे एक आदर्श समाज और राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान नहीं बना सकते हैं। सांस्कृतिक रूप से सम्पन्न आदर्श समाज और राष्ट्र ही हर प्रकार की बुराइयों, दोषों और बिध्न–बाधाओं को दूर करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते जाते हैं। कहने का भाव यह है कि जिस 'आदर्श' को समाज और राष्ट्र को अपनाने पर जोर दिया जा रहा है सबसे पहले उसे जाने और फिर हम उसे आचरण में ढालें जिससे हम सभी आगे बढ़ते चले जाएँ।

9

जल की बहु–धाराओं वाली मातृभूमि

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।

शब्दार्थ– (यस्याम्) जिस प्रकार से (आपः) जल (परिचराः) चारों दिशाओं में बहने वाला जल (समानीः) समतुल्य (अहोरात्रे) दिन और रात (अप्रमादम्) प्रमाद से रहित (क्षरन्ति) झरते

रहते हैं (साभूरि धारा) अनेक धाराओं से युक्त (पयः) जल (अधो) अनेक प्रकार से (दुहाम्) दुहते हैं (सा नो भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (वर्चसा) तेज गति से (उक्षतु) आगे बढ़ा दें।

भावार्थ– मंत्र में जल की महत्ता को दर्शाया गया है। विविध प्रकार के नहरें, झरने, नदियाँ और वर्षा का जल विविध विधियों से अनेक कार्यों में प्रयोग तो होता ही है वहीं पर, 'जल ही जीवन है' का जो भाव हमारे अन्दर है वह सब के अंदर हो–ऐसी प्रार्थना की गई है। सभी प्रजाजन जल का विधिवत् उपयोग करें, कभी जल को व्यर्थ न जाने दें। जल को व्यर्थ करना जहाँ सामाजिक दंडनीय अपराध है वहीं पर यह ईश्वरीय–व्यवस्था के भी विरुद्ध है। हमारा कर्तव्य है कि जल का उपयोग (किसी भी प्रकार का जल हो) वैज्ञानिक विधि से करते हुए हम इसकी महत्ता और उपयोगिता को समझें। यह प्रकृति प्रदत्त बिना किसी लागत के प्राप्त है जैसे हवा और मिट्टी। कहने का भाव यह है कि जल का हम जितना ही सदुपयोग करेंगे उतना ही हम सुखी रहेंगे।

शब्दार्थ– हे मातृभूमि! तुम्हारी वात्सल्यमयी गोद में बहने वाला जल हमारे लिए बहुविधि उपयोगी है। इसकी उपयोगिता और महत्ता के कारण ही देश के अभियन्ताओं ने नदियों, झरनों और वर्षा के जलों को उपयोग में लाने के लिए बाँध बनाकर इसका उपयोग किया। इन बाँधों से कहीं बिजली बनाई जाती है तो कहीं नहरें निकाली जाती हैं। इन नहरों से जहाँ जन समुदाय अपनी प्यास बुझाता है वहीं पर कृषि के लिए कृषक इससे सिंचाई करते हैं। इस प्रकार अभियन्ताओं के द्वारा जल के विविध उपयोग की इस प्रकार व्यवस्था की जाती है जिससे जल सेवक के रूप में हमारे लिए प्रमाद रहित होकर रात–दिन हमारे लिए विविध धाराओं के रूप में प्रवाहित होता रहे। जब तक जल का वैज्ञानिक विधि से बाँधादि बनाकर उपयोग में नहीं लाया जाता था तब तक, इससे हमारा परिचय नहीं था। अर्थात् मातृभूमि के लिए उपयोगी नहीं हो पाया था। राष्ट्र व समाज इसका बहुविधि उपयोग नहीं ले पाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि परिचर के रूप में यह सभी स्थानों पर पहुँच नहीं पाता था। सभी धाराओं का जल यूँ ही व्यर्थ हो जाता था। जल की ये धारायें समान–रूप से उपयोगी नहीं बन पातीं थीं। विविध धाराओं में बहने वाला यह जल जब तक वैज्ञानिक विधि से बाँधादि के द्वारा नहरों आदि में वितरित नहीं किया गया था तब तक, कहीं पर बाढ़ तो कहीं पर सूखे की स्थिति आ जाती थी। इससे किसी को किसी प्रकार का लाभ नहीं पहुँच पाता था। लेकिन कुशल अभियन्ताओं ने अपनी बुद्धि और सूझबूझ से नहरें निकाल कर इसका बहुविधि उपयोग सुनिश्चित कर दिया। चारों ओर नहरों का जाल बिछा देने के बाद नहरों की अनगिन शाखा–प्रशाखाओं के द्वारा दूर–दूर तक जल पहुँचा दिया गया और अन्य जिन स्थानों पर नहीं

पहुँचा है वहाँ पहुँचाया जा रहा है। नहरों में बहने के कारण ही जल 'परिचर' कहा जाता है। अब मातृभूमि पर बसने वाले सभी नर–नारियों को नवजीवन मिलता है। नहरों के कारण ही हे मातृभूमि, तुम 'भूमिधरा' कहलाती हो। भूमिधरा का अर्थ ही होता है बहुधाराओं वाली। 'जल ही जीवन है' की उक्ति बहुधाराओं में बहने और इसे बहुविधि प्राणियों को लाभ अर्थात् जीवन प्राप्त होने के कारण सार्थक हो जाता है। हे मां, जल के बिना तो जीवन ही सम्भव नहीं दिखाई देता है।

भू–माता की गोद में खेलने वाले हर प्राणी में जल की तरह अहिर्निश पवित्रता का भाव बना रहे। हे माता! आप नहरों के रूप में चारों ओर बहती रहती हैं। हम इस जल को 'पय' मानते हैं और दूध के रूप में भी हमें पय से अभिसिंचित कर दे। जो जल आप ने मुझे प्रदान किया है उससे कृषि और बागवानी करके हम सब के लिए अन्न और फल प्रदान करते हैं जिससे हर व्यक्ति जीवन पाता है।

इसी भूमि पर अन्नत काल से ज्ञान–विज्ञान की अनन्त धाराएँ स्फुटित होती आई हैं। इससे भू माता की गोद में सदैव सुखद वातावरण बना रहा। ज्ञान–रूपी जल की धाराएँ पूरे भूपटल पर अनंत धाराओं में फैलती रही। इससे अज्ञानता का नाश होता रहा। जिस तरह से सृष्टिकाल से जल सबको अनंत धाराओं में प्रवाहित हो प्राणी–मात्र को जीवन, पोषण और शान्ति प्रदान करता आ रहा है उसी भांति धरती पर बसने वाले, भ्रमण करने वाले विद्वान विश्व–जनों को जीवन जीने की कला, उसका उद्देश्य, पोषण और शान्ति प्रदान करने के लिए सदैव चलते रहें। इससे ही विश्व समुदाय का भला हो सकता है। अज्ञानता का नाश करने का दायित्व विद्वान सूरवीरों का है। इस विचार से सभी एक दूसरे के लिए उपयोगी बनें।

हे मातृभूमि! हम सभी में ऐसा सद्गुण–युक्त स्वभाव और विवेक जागृत हो जो विश्व मानव समाज के लिए उपयोगी हो क्योंकि इस भूमि के हम सब समान–रूप से दोहक हैं। प्रकृति मतलब भू माता पर मानव उपयोगी जितने संसाधन हैं उसका उपयोग सभी उतना करें जितनी आवयश्कता हो। ऐसा संकल्प व विचार हममें परिपुष्ट हो जिससे विश्व का सर्वविधि से, सदैव कल्याण हो। इस प्रकार विविध धाराओं के द्वारा नहरों से परिविक्त हे मातृभूमि, तुम हमें जल के रूप में पय प्रदान करती हो वहीं पर दूध के रूप में भी पय प्रदान कर तृप्त करती हो।

हे मातृभूमि! नहरों के द्वारा दूर–दूर तक पहुँचाये गये जल से राष्ट्र और समाज के प्रत्येक व्यक्ति की प्यास ही नहीं बुझती है प्रत्युत अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। नहरों के द्वारा प्राप्त हुए जल सिंचित खेतों में लहराती फसलों और गोचारों को भी प्राप्त होती है।

गौचारे का ग्रहणकर ये गायें अधिक दूध देती हैं। जिससे सभी लोग दूध पी कर तृप्त होते हैं। हे माँ, जो शक्ति दुग्धपान से हमें प्राप्त होती है वह हमारी शक्ति, बल, बुद्धि और उत्तम स्वास्थ्य को बढ़ाने वाला हो। हमारे अन्दर गायों से प्राप्त पय अर्थात् दूध से तेज प्राप्त हो और हम तेजस्वी बनें।

वेद के इस मंत्र में उपदेश एवं प्रेरणादि दिये गये हैं कि प्राणी–मात्र के लाभ, संवर्धन और उपयोग के लिए जल की धाराओं को नहरों के द्वारा पहुँचाया जाना चाहिए। खेतों में गायों के लिए चारा तैयार कर गायों को खिलाकर अधिकाधिक दूध प्राप्त कर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए तत्पर रहना चाहिए। जल नहरों के द्वारा कितना अधिक उपयोगी हो सकता है इस पर अनुसंधान करते हुए इसके बहुबिधि उपयोग के लिए योजनाएँ बनाई जानी चाहिए।

इस प्रकार –– जल ही जीवन जल ही बल है
जल ही सब का अविचल कल है
आओ जल का संचय कर लें
हम प्यासों को पानी दे दें।

10

देवों की क्रीड़ा–स्थली

यामश्विनावामि मातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः।।

शब्दार्थ– (याम्) जिस भूमि पर (अश्विनौ) प्राण–शक्ति की ऊर्जा या प्राणिक ऊर्जा देने वाले (अभिमाताम्) अतुलित माप वाले दिव्यातर या निर्माण करते हैं (यस्याम् विष्णुः) प्रतिपालक विज्ञानी–गणों ने (विचक्रमे) अतुलित ऊर्जा और गति वाले (इन्द्रः) इन्द्रियों के स्वामी मन को (शची पतिः) वाणी के प्रस्तोता को (आत्मने) अपने लिए (अनमित्राम्) विरोधियों से रहित (सानः) वह मातृभूमि (माता भूमिः) जो माता के रुप में वंदनीय है (मां) सभी पुत्र (पुत्राय वयः) जो स्नेह देकर पोषण करती है (विसृजताम्) जीवनी शक्ति का सृजन करें।

भावार्थ– मानव सभ्यता, संस्कृति और कलाओं का विस्तार देने में यातायात के और संचार के माध्यमों का विशेष महत्व है। संचार माध्यमों से कठिन से कठिन कार्य सरल और सुगम हो जाते हैं। मातृभूमि, राष्ट्र और समाज के विकास में हम इनका जितना अधिक से अधिक सदुपयोग करें उतना ही विकास की गति आगे बढ़ेगी। राष्ट्र–प्रमुख को चाहिए कि इन माध्यमों के विकास के लिए सतत् प्रयास करते रहें जिससे प्रजाजन इनका सदुपयोग करते हुए प्रगति के क्षेत्र में आगे बढ़ते जाए। यह कार्य सब के सम्मिलित और मैत्री–पूर्ण प्रयासों से ही संभव हो पाता है।

विवृति– हे मातृभूमि! आप के संरक्षण में प्राणशक्ति एवं आत्मशक्ति से पूर्ण देवगण विचरण करते रहते हैं। वे दिव्यात्मा, अपनी गतिविधियों से विभिन्न दिशाओं तक–एक दिशा से दूसरी दिशा में और दूसरी दिशा से पहली दिशा में सतत् चलते रहते हैं। यही चलना ही भूमिमाता को नापना कहलाता है। आश्विनौ–जो किसी वस्तु में व्याप्त हो या रम रहा हो, इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से ऊर्जा, ताप या ईश्वर प्रत्येक वस्तु में व्याप्त होते हैं उसी प्रकार प्राणिक–ऊर्जा से युक्त देव धरती पर हर स्थान पर विस्तृत रहते हैं या व्याप्त रहते हैं।

वेद में अश्विनौ का अर्थ अन्य अनेक अर्थों में आते हैं। यहाँ पर यह ज्ञान दिया गया है कि यातायात के साधन के बिना विकास, व्यवहार और संचार की गति आगे नहीं बढ़ सकती है। इसी प्रकार संचार–व्यवस्था के बिना सूचना और मनोरंजन दोनों का संतुलित संचालन नहीं किया जा सकता है। लेकिन यहाँ इन दोनों के विशेष अर्थ हैं। इसमें प्रथम, संचार के केन्द्र में सारी प्राप्त सूचनायें हैं और द्वितीय सूचनाओं के केन्द्र में संचार अधिकारी और संचार विभाग हैं। दोनों की अपनी क्षमता के अनुसार गति होती रहती है। इन दो प्रकार की गतियों के कारण ही **अश्वीपद** का अश्विनौ द्विवचन में प्रयोग किया है। राष्ट्र के विकास और व्यवहार को जानने के लिए सबसे पहले इनके आधारों को जानना आवश्क है। सूचना का माध्यम समाचार पत्र (आज आधुनिक समय में अंतरजाल, (इंटरनेट) टीवी चैनल आदि) प्रमुख हैं। समाचार पत्रों को हर व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए यातायात के साधन होना आवश्यक है। इससे जहाँ सूचना सहजता से सबको प्राप्त हो जाती है वहीं पर अनेक प्रकार की जानकारियाँ भी हो जाया करती हैं। इसमें सूचना के केन्द्र से सूचनायें निःसृत होती हैं वहीं पर दूर की सूचनायें केन्द्र तक पहुँचती हैं। यातायात के साधनों से आने–जाने का जो व्यवहार अहर्निश चलता रहता है वही 'नापने' के अर्थ में समझना चाहिए। यह आलंकारिक प्रयोग है। मातृभूमि के रक्षक व पोषक इस कार्य को अपना कर्तव्य मानकर हमेशा करें ऐसी बुद्धि संचार व यातायात विभाग के अधिकारियों को देती रहे।

वेद में अश्वनौ का अर्थ नर–नारी भी होता है। इस लिए यह सन्दर्भ भी समझने की आवश्यकता है। मातृभूमि पर बसने वाले नर–नारी विविध कार्यों के सम्पादन में इधर–उधर चलते–फिरते रहते हैं। बिना चले–फिरे व्यक्ति, परिवार व समाज का कोई कार्य पूर्णतः को नहीं प्राप्त हो सकता है। इस लिए प्रथम कर्तव्य के रूप में अपने कार्यों को बहुत ही सच्चाई और ऊर्जा के साथ करते रहे। क्योंकि परिवार, समाज और राष्ट्र की उन्नति का आधार व्यवसाय–व्यापारों पर आधारित होते हैं।

मातृभूमि पर विचरण करने वाले प्राणिक, आत्मिक ओर मानसिक शक्ति से सम्पन्न शूरवीर, (योगी जन या साधक), अप्राणिक, अनात्मिक और विध्वंसक लोगों का विनाश करने वाले हैं। वे वन्दनीय और आदरणीय हैं। यह मातृभूमि ऐसे योद्धाओं से ही विभूषित होती है। भूमि पर विचरण करने वाले शक्ति सम्पन्न मही–सुत सदा परोपकार में लगे रहने वाले होते हैं। जो मातृभूमि के विनाशक हैं, उन्हें आत्मशक्ति और शरीर–शक्ति से सम्पन्न वीर अपने कौशल से परिवर्तित होने के लिए मजबूर कर देते हैं। यही भू–माता का सतत् सौभग्यवान होने का रहस्य है। वीर जन अपनी भुजाओं से विद्वानों ने अपनी विद्वता से और श्रमवीर अपनी तपस्या से मातृभूमि के पोषण, संरक्षण और वंदना का भाव भरते रहते हैं। हम सभी (श्रेष्ठजन) आओ इनकी वंदना करें। जिस तरह से माँ का स्वभाव, गुण सदा अपने आत्मीय के लिए सदैव सुखकारक होता है वैसी ही भू माता भी हम सभी (मही–सुतों के लिए) के लिए सुखकारक है। मातृभूमि अनादिकाल से सभी पदार्थो, वस्तुओं, संसाधनों और प्रयोगों के द्रव्यों का आधार रही है। मातृभूमि के विध्वंसक–चोर, लुटेरे, ठग, भ्रष्टाचारी, व्याभिचारी और दुर्गुणी लोग और मातृभूमि के रक्षक परोपकारी, सत्यवादी, सत्यजीवी, सुखकारी, मर्यादापालक और आचारवान जन क्रमशः अपने–अपने बुरे और सुमंगल कार्यो से जाने जाते रहें हैं। विद्वान और ज्ञानी जन मातृभूमि के संरक्षकों, पोषकों और सेवकों की सदा जय मनाते रहते हैं। इनकी जय और शक्ति से ही वसुमति माँ का कल्याण होता है। प्रगतिशील जन स्वभावतः और व्यवहार से विश्व जन के लिए हितकारी होते हैं। हम सभी– जो श्रेष्ठ नहीं है, श्रेष्ठ बनकर– विश्व मंगल के लिए संकल्पवद्ध हो जाएँ। श्रेष्ठ जनों का सद्‌संकल्प शत्रुओं के विध्वंसक कार्यों को तितर–बितर कर देता है। आओ भू माता के विकास और कल्याण के लिए सद् संकल्पशाली बनें।

माँ की ममता जिस तरह से सबको मोहक व स्नेह–सिक्त लगती है उसी तरह की ममता, प्रेम, स्नेह हम सबमें आपस में हो। हम सभी के मन विध्वंसकों की योजनाओं को विफल बनाने में एक हों, हृदय और चित्त भी एक हों।

हे मातृभूमि! हमें अहिर्निश ऐसी जीवनी–शक्ति प्रदान करने वाले पदार्थ दे जिससे हम सभी

हर तरह से शक्तिशाली बनकर विश्व के कल्याण के लिए कटिबद्ध हो जाएँ। विश्व का कल्याण करना ही मनुष्य जीवन का ध्येय होना चाहिए। क्योंकि मातृभूमि की वंदना व सार्थकता इसके सतत् विकास से ही हो सकती है। आओ भूमि–पुत्रो! माँ की वन्दना, सेवा और पोषण (संरक्षण कर) हम सभी आशीर्वाद प्राप्त करें। तभी हमारा काम सुफल हो सकता है।

हमारी मातृभूमि पर विष्णु निरन्तर विचरण करते रहते हैं। वेद में विष्णु के अनेक अर्थ हैं। सब के भिन्न–भिन्न अर्थ, सन्दर्भ एवं कार्य हैं। एक विशेष अर्थ में विष्णु शब्द प्रधानमन्त्री के अर्थ में होता है। जिस प्रकार से प्रधानमन्त्री सब को अनेकानेक कार्यों को देखने के लिए सतत् विचरण करता रहता है उसी प्रकार प्रजा–जनों को भी चाहिए कि सर्वत्र विचरण करते हुए मातृभूमि के विकास–कार्य को आगे बढ़ाते रहें। प्रधानमंत्री के कोई दो–चार कार्य तो होते नहीं है, प्रत्युत अनेक कार्य होते हैं, इसी को देखकर उनकी स्थिति के अनुसार उन्हें पूर्ण करने का निर्देश दें। क्योंकि प्रधानमंत्री का पहला कार्य होता है– राष्ट्रोन्नति के लिए सदैव उचित कदम उठाते रहे।

निरुक्त में विष्णु का एक अर्थ और भी बताया गया है। वह है, विविध प्रकार के कार्यों में व्याप्त रहने वाला। प्रजा–जनों का जितना हित होता है, राष्ट्र और समाज की उन्नति उतनी ही तेजी के साथ होती रहती है। लेकिन इसी के साथ एक बात और भी समझने की आवश्यकता है। वह है, राष्ट्रोन्नति के लिए समर्पित रहना। राष्ट्रोन्नति केवल प्रधानमन्त्री या उनके सहयोगी मंत्रियों के तत्पर रहने से कुछ भी होने वाली नहीं है। जब तक सारे नर–नारी, वृद्ध–बाल सभी अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार अपने कर्तव्यों का सम्यक् ढंग से पालन नहीं करेंगे।

वेद में अनेक मंत्रों में इन्द्र शब्द बहुत बार आया है। इन्द्र को शचीपति कहा गया है। यह इन्द्र ऐश्वर्यशाली है। विचार–शक्ति, वाणी–शक्ति और प्रज्ञा–शक्ति से भरपूर रहता है। भाव यह है राष्ट्र का प्रधानमंत्री या राष्ट्राध्यक्ष इन्द्र की तरह इन तीनों शक्तियों से भरपूर रहे। मातृभूमि का हर व्यक्ति इन्द्र जैसी त्रय शक्तियों से भरपूर रहे। इससे ही मातृभूमि की रक्षा शत्रुओं से हो सकती है। जैसे इन्द्र ने अपने पुरुषार्थ, शक्ति और विक्रम से धरती को शत्रु रहित कर दिया था वैसे ही राष्ट्र का हर नागरिक मातृभूमि की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहे।

वेद में इन्द्र को सम्राट भी कहा गया है। एक श्रेष्ठ राष्ट्र के लिए एक श्रेष्ठ सम्राट कैसा होना चाहिए इस पर विचार किया गया है। बिना श्रेष्ठ सम्राट के कभी श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता है। मातृभूमि की रक्षा श्रेष्ठ सम्राट के द्वारा ही हो सकती है। वेद में इन्द्र, विष्णु और अश्विनौ आदि पद ईश्वर के भी होते हैं। परमात्मा सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। हमारी

मातृभूमि एक पवित्र–भूमि कही जाती है। इसका कारण है। इसे वेद के माध्यम से भली प्रकार समझा जा सकता है। परमात्मा सकल ब्रह्माण्ड का कर्ता–धर्ता है।

जड़–चेतन उसी के आधीन हैं। प्रत्येक प्राणी के जीवन और पोषण का कारण वही है। आवश्यकता के अनुसार वही सबको उपयोगी पदार्थ पहुँचाता है। इस लिए वह जगत् का नियन्ता और निर्माण करने वाला है, इस लिए वह विष्णु कहा जाता है। वह जगत् में सबसे अधिक ऐश्वर्यशली है। इस लिए, वह इन्द्र है। इस मातृभूमि का निर्माण–कर्ता वही है। वही इन्द्र, विष्णु और अश्विनौ नाम से भी अभिहित किया जाता है। हमारी मातृभूमि इस लिए परम पावन है। वह परमात्मा मातृभमि पर बसने वाले सभी नर–नारियों के हृदय में बसता है। जो परमात्मा की शक्ति, पवित्रता और सर्वाधार–रूप का हृदय में अनुभव करता है वह भी शक्तिशाली, पवित्र और ऐवर्श्यवान बन जाता है। सुखी और आनन्दमय जीवन का रहस्य परमपिता परमात्मा का हृदयावास ही है। ऐसे परमेश्वर से रक्षित यह हमारी मातृभूमि हमारे लिए हमेशा कल्याणकारी बनी रहे। हे मातृभूमि! हमें तन, मन के उत्तम स्वास्थ्य के लिए हमें दूध, फल, मेवे व अन्नादि प्रदान करती रहें। जिससे हम कष्ट से बचते रहें। साथ ही शत्रुओं से रक्षा करने में सामर्थ्यवान बन सकें।

हे मातृभूमि! आप देवों से भूषित हैं। वेद में उपदेश दिया गया है कि मातृभूमि, की उत्तमता, शत्रु–रक्षा और विकास के लिए यातायात के समुचित साधनों के साथ संचार के भी समुचित साधन हों। खाने–पीने में दूध, फल व उत्तम अन्नादि सदा सुलभ होते रहें। राष्ट्र के सभी अधिकारी जन, कर्तव्यशील–परिश्रमी, विद्वान और सत्यमार्गी बने रहें। सबके हित–साधन में ही अपनाहित समझें। इससे ही मातृभूमि देवों की भूमि सदा बनी रह सकती है।

11

विविध रंगों वाली भूमि

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवा भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्।।

शब्दार्थ– (पृथिवी) मातृभूमि (गिरयः) पर्वत, दृढ़ता की ऊँचाई (हिमवन्तः) जो हमेशा बर्फ से अच्छादित रहते हैं (ते अरण्यं) वनांचल, वनभाग (पर्वताः) पत्थरों, शिखरों वाले (स्योनमस्तु)

हर्षित भाव से (बभ्रुम्) जो पोषित करती है, भूरे रंग की (कृष्णां) जो कृषि कार्य के काम आते हों (रोहिणीं) अतिशय सुषमा से युक्त, वृक्ष, फूल, फल से अच्छादित (विश्वरूपाम्) जिसके अन्नत रूप–रंग हैं (ध्रुवाम्) दृढ़ इच्छा शक्ति जिसमें हो (इन्द्र–गुप्ताम्) वीर सेनापतियों से युक्त (भूमिं) उस भू माता को (अजितः) अपराजेय (अहतः) जो कभी आहत न हुआ हो (अक्षतः) पूर्ण–रूप–से सुरक्षित (अहं अध्यष्ठाम्) अधिष्ठाता के पद पर आसीन रहूँ।

भावार्थ– मातृभूमि की विविधता सभी प्रजा–जनों के लिए सुखकारी और कल्याणकारी है। ऐसी विविधता ब्रह्माण्ड में और कहीं नहीं पाई जाती है। इस विविधता का लाभ हर किसी को उठाते हुए मातृभूमि–हित अपना अवदान देते रहना चाहिए। इन विविधताओं के कारण ही मातृभूमि को विविध नामों से पुकारा जाता है। विभिन्न रंगों की भूमियाँ इसका प्रमाण हैं। प्रजा–जनों को चाहिए कि मातृभूमि–हित में अपना सर्वस्व अर्पित करते हुए अपने जीवन को आगे बढ़ाएँ। हर ओर रक्षित हमारी मातृभूमि हम सभी के लिए सदैव कल्याणकारी है। ऐसी महिमामयी मातृभूमि की हम सभी वन्दना करें।

विवृति– हे मातृभूमि! तुम्हारी अनुपम सुषमा को पोषित करने वाले वन, पर्वत, बर्फ से ढकी पहाड़ियाँ, उन्नत शिखर और मैदान, जन जीवन के लिए अतिशय सुखकारी होते हैं। यह बहुरंगी और लालित्यपूर्ण शोभा युक्त दिखने वाली प्राकृतिक छटा का वर्णन शब्दों से परे है। कवि मनीषी विद्वान उस महाकवि (भूपति–परमात्मा) की रचना का वर्णन करते हुए निज को असहाय अनुभव करते हैं। भू माता पर शोभायमान परमात्मा की बनाई हर बड़ी–सी–बड़ी और छोटी–सी–छोटी वस्तु का अपना महत्त्व है। सबसे अद्भुत बात यह है कि मातृभूमि पर बसने वाली हर छोटी–बड़ी वस्तु का अपना महत्त्व है। धरती माँ का विकास और पोषण तथा संरक्षण तभी हो सकता है, जब हमारे मध्य मौजूद वन, पर्वत, बर्फ से ढकी चोटियाँ, जंगल और जीवन का पर्यावरण मर्यादित और जागृत बना रहे।

हे मातृभूमि! तुम्हारा विविध वर्ण भला किसे नहीं लुभाता। कहीं कृष्ण वर्ण हो तो कहीं भूरे रंग है तो कहीं काले रंग की तो कहीं रोहिणी रंग की और कहीं लाल रंग की। ये विभिन्न प्रकार के वर्णों में विभिन्न प्रकार के गुण समावेशित हैं। हे माँ, कृषक जन तुम्हारे इन विविधताओं का लाभ उत्तम कृषि करके प्राप्त करते रहते हैं। अनुकूल या उर्वर भूमि में कृषि अच्छी होती है।

हे माता! आप सब का भरण–पोषण करने वाली हो इस लिए आप **विभु** कहलाती हो। अनेक प्रकार के कृषि–कर्म के खेतिओं के कारण तुम **कृष्णा** कहलाती हो। उपजाऊ और उर्वरशील होने के कारण तुम **रोहिणशीला** के नाम से पुकारी जाती हो। कितने रूप–अनूप

आप के हैं। जो विश्व के सभी जनों को प्रिय और अच्छे लगते हैं। तुम्हारा हमारे प्रति वात्सल्यभाव हमेशा हमें सुखदायी बनाता है और हम सभी आप से भाँति–भाँति से लाभ अर्जित करते रहते हैं।

हे मातृभूमि! तुम सर्वथा सर्वदा स्थिर अर्थात् ध्रुवा के रूप में बनी रहती हो। तुम्हारी यह स्थिरता पर्वतों जैसी है। लेकिन यह स्थिरता तब और भी स्थिर हो जाती है जब राज्य–प्रबन्धक अपने बुद्धि–विवेक से राज्य को जब सुरक्षित रखने की व्यवस्था करते हैं तो तुम भी संरक्षित होती जाती हो। फिर तो कोई बाहरी शत्रु तुन्हें अस्थिर नहीं कर सकता है, अर्थात् शत्रु तुम पर अधिकार नहीं कर सकते हैं। हे मातृभूमि, सब का भार सहन करके भी सबको सुख देती हो।

सभी आप से आश्रय पाते हैं। वह चाहे प्राणी हों या अप्राणी हों। तुम्हें 'पृथ्वी' इसी लिए कहते हैं की तुम से ही सभी संरक्षण और पोषण प्राप्त करते हैं। हे माँ! तुम्हारा अपरिमित विस्तार सभी के लिए योगक्षेम देने वाला है। तुमको इन्द्रगुप्ता इस लिए कहा जाता है कि राष्ट्र का सम्राट तुम्हारी रक्षा करता है। वह इन्द्र अर्थात् परमात्मा के द्वारा भी तुम हमेशा रक्षित रहती हो।

भू–माता का रंग एक नहीं है। कहीं भूरी है तो कहीं काली। कहीं मटमैली है तो कहीं लोहित वर्ण की। उपजाऊ बंजर, रेह युक्त और विविध धर्मों को धारण करने वाली भू माता सभी भू–पुत्रों के लिए मामत्व से निरन्तर भरी रहती है। जो वृक्ष, लता, फूल और फल मातृभूमि की शोभा बढ़ाते हैं, वे धरती माँ के गहने (आभूषण) जैसे हैं। हम सभी इन वृक्षादि, फलादि और लतादि का विध्वंसकारी राक्षस जनों से रक्षित और संरक्षित करें, जिससे भूमिमाता का व्यक्तित्व स्थिर रहे, ऐसा हमें अनवरत् प्रयास करते रहना चाहिए। मातृभूमि पर जो गुणवान, ज्ञानवान, और मानवान विद्वतजन हैं वे अपने बुद्धि, विवेक और आत्मज्ञान से भू माता का अहिर्निश विस्तार करते रहते हैं। यह विस्तार **सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामया** के रूप में होता है। विश्वजन सबके लिए उपयोगी हों, मर्यादित और विधानयुक्त हों ऐसी कामना इन्द्र–शक्ति सम्पन्न देवजन करते रहें। इन्द्र अपने सर्वगुणों और साधनों से अनिष्टकारी लोगों को दूर हटा देतें हैं। धरती माँ को अनिष्ट किसी भी स्तर पर पसन्द नहीं है। इसलिए अनिष्टकारी जनों का विकास न हो! हे भू–माता! ऐसा आशीर्वाद दें। सभी तन, मन, हृदय, चित्त, चेतनाशक्ति और ब्रह्मशक्ति से ओत प्रोत रहें, ऐसी हम सभी सदैव कामना करते हैं। विश्व जन सुख का सृजन कर्ता बनें। भू–माता ऐसा आशीर्वचन करें। सबको रहने का आवास, तन ढकने का वस्त्र और भूख मिटाने के लिए भोजन मिलता रहे, हम सभी की यह कामना

भू–माता पूर्ण करें। हे मातृभूमि! तुम शत्रुओं से रहित होकर सदैव पोषित और संरक्षित बनी रहो। सभी श्रेष्ठ जन सदैव उन्नति, विकास और धर्म के धारणकर्ता बनें।

परमात्मा की भक्ति का भाव सभी लोगों में निरन्तर बढ़ता रहे। और सभी आस्तिक होकर भक्ति–भाव से परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना व उपासना करते हुए राष्ट्रोन्नति में सदा लगे रहें। ऐसी सुप्रवृति उनमें सदा बनी रहे। जो जन परमात्मा का चिन्तन करके श्रेष्ठ गुणों को धारण करते हैं, वे श्रेष्ठ बनकर अपनी मातृभूमि की उन्नति में अच्छी प्रकार से अपना योगदान देते हैं। जो लोग परमात्मा का चिंतन करके स्वयं को सर्वोत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न करते हैं उनके इस पुरुषार्थ में ईश्वर भी सहायता करता है। ऐसे ईश्वर–विश्वासी और पुरुषार्थी लोगों से ही मातृभूमि की स्थिरता बनी रह सकती है और राष्ट्र की सदा उन्नति होती चली जाती है।

हे मातृभूमि! मेरा जीवन सर्वदा सुरक्षित होता हुआ पूर्ण आयु को मैं प्राप्त करूँ। मैं सौ वर्षों क्या इससे भी अधिक वर्षों तक तुम्हारी वात्सल्यमयी गोद में पालित–पोषित होता हुआ दीर्धजीवी बन अपने जीवन को तो सफल करूं ही अन्य सभी जनों के लिए भी हित करने वाला बनूँ। हमें किसी से हिंसा या भय न प्राप्त हो। हमें घाव से कष्ट न प्राप्त हो। हममें किसी प्रकार की त्रुटि या हानि न हो। अर्थात् मेरा जीवन दीर्घायु वाला निष्कंटक हो। ऐसी कृपा करके हे माता, हमें संरक्षित करो।

वेद में उपदेश दिया गया है कि हे मातृभूमि, राज्य के प्रबन्धकों और आमजनों को ऐसी सुव्यवस्था करनी चाहिए कि वन, पर्वत, जंगल आदि स्थानों पर भी लोगों को भय न लगे। प्रबन्धकों को चाहिए कि वन, पर्वत व कृषिदि योग्य भूमि का समुचित उपयोग कर लोग लाभान्वित हों। इससे सुख, समृद्धि की वृद्धि होगी और लोगों का जीवन सुखमय बनेगा। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार की मिट्टी हो उसके गुण का पता लगाकर उससे समुचित तरीके से अच्छी फसल उगा सकें। कहने का तात्पर्य यह है कि मातृभूमि को हर प्रकार से रक्षित, सुखकारी, विजयी और शक्तिशालीनी बनाने का प्रयास सतत् करते रहना चाहिए। मातृभूमि पर निवास करने वाला कोई भी मनुष्य आश्रय विहीन न रहे। रोगरहित, दीर्घायु, और स्वस्थ जीवन के सभी स्वामी बनें। यह तभी सम्भव है तब राष्ट्र हर तरह से ऐश्वर्यशाली होगा और राज्य के प्रबन्धक और प्रजा–जनों में मैत्री भाव निरन्तर बना रहेगा।

12

भूमि मेरी माता और मैं उसका पुत्र

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संवभूबुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।।

शब्दार्थ– (पृथिवि) हे मातृभूमि! (यत ते मध्यं) जो केन्द्र में है (यत् च नभ्यम्) जो सब में प्राणवान है (ते याः ऊर्जः) जिससे निरन्तर ऊर्जा मिलती है (तन्वः) जिससे उत्पन्न हुआ (संबभूबुः) जिससे एकता स्थापित होती है (तासु) जिनसे जुड़ा हुआ है (नः) हम सबकी (अभिधेहि) निरन्तर देने वाली (पवस्व) सदा रक्षित जो करती है (भूमिः) धरती माँ (पर्जन्यः पिता) जल देकर पोषण–पालन करने वाला (माता) मातृशक्ति, जननी जन्म देने वाली (अहम्) हम उस (पृथिव्याः पुत्रः) हम पृथ्वी सुतों की (पिपर्तु) पालन करती रहे (स् उ नः) वह भी हमारी।

भावार्थ– मातृभूमि मानव मात्र की माँ के समान है। माँ के प्रति पुत्र का क्या कर्तव्य होता है यह सभी को समझना चाहिए। माँ का स्थान जगत् में सबसे ऊँचा है। उस उच्चता को पुत्र को हमेशा सम्मान देना चाहिए। मंत्र में तीन प्रकार के पिता पालक के रूप में बताए गये हैं। ये हैं– परमात्मा, मेघ और शासक (सम्राट)। ये तीनों प्रजा का पालन करते हैं। इन तीनों के प्रति प्रजा–जनों का क्या कर्तव्य होना चाहिए इसे समझना चाहिए। माता–पिता के प्रति पुत्र के कर्तव्य का मंत्र में वर्णन किया गया है।

विवृति– हे रत्न धारिणी भू–माता! आप ही सभी प्राणियों और तत्त्वों की अभिधारिणी हो। आप की गोद में और विशाल हृदय (पृथ्वी के अन्दर) में अनन्त (बहुमूल्य) पदार्थ विद्यमान हैं। रत्नगर्भा नाम आप का इस रूप में मननीय और माननीय है। जो विध्वंसकारी शत्रुगणों से आप की गोदी में खेलने वाले विद्वान, मनीषी और वीर योद्धा आप की रक्षा करते हैं वे भी वन्दनीय हैं। हे पवस्वनी माँ! मैं ऐसे वन्दनीय (ज्ञानी, विज्ञानी, बलवान एवं शत्रु विनाशक) मनुष्यों के मध्य बैठने की योग्यता प्राप्त करूँ। हमारी हर तरह से रक्षा करो। हमारा ध्येय सतत् उर्ध्वगामी होने का हो। हम कभी भी निज स्वार्थ में किसी प्रकार का अहित न कर बैठूँ ऐसा संकल्प हममें (हम सबमें) प्रबल करती रहें।

हे ममतामयी माँ! मनुष्य ही नहीं, प्राणी और अप्राणी सभी की आप निरन्तर पालन (धारण) करने वाली हो। हम आप से पोषण पाते रहें जिससे मेरा विकास निरन्तर होता रहे। क्योंकि

विकास करना आप का स्वभाव है। हम सब के विकास से ही उन आतताइयों का विनाश होगा जो आप की राह में निज स्वार्थ में बाधा खड़ा करते हैं। हममें ऐसा तपोबल, विद्याबल और सूरवीरता भर दीजिए जिससे हम सभी अतुलित शक्तिमयता से **जीवन–लक्ष्य** (यानी विकास) को गति प्रदान करने लायक बन सकूँ।

हे मातृभूमि! कौन सी माँ अपने प्राणदायी पुत्रों को निरन्तर आगे बढ़ते नहीं देखना चाहती, अर्थात् सभी चाहती हैं। हम सभी धरती पर निवास करने वाले लोग आप के पुत्र ही तो हैं। माँ, हम सभी को ऐसा आशीर्वाद दें जिससे विश्व में विद्यमान दुख, क्लेश और अज्ञानता को दूर करने में सक्षम हो सकें। हममें वह सत्साहस, सुचिता ओर उज्ज्वल चरित्र भर दीजिए जिससे हम सभी सदैव आप की रक्षा करने में सामर्थ्यवान बन सकें। हे मां, आप से बढ़कर सकल ब्रह्माण्ड में दूसरी ऐसी ममता, वात्सल्य और पोषण देने वाली शक्ति नहीं है, जो बिना किसी भेदभाव और स्वार्थ के सबको अपना आशीर्वाद प्रदान करती हो। इस वेद मंत्र में एक बहुत बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। वह है मूक प्राणियों का विकास के लिए भू–माता की प्रेरणा। क्योंकि बिना विकास के इस धरती का बने रहने का कोई अर्थ नहीं होता है।

प्राणी मात्र अन्न–अन्नादि पर निर्भर है। तात्पर्य यह है कि जो जिससे जीवन प्राप्त कर रहा है, वह उसके लिए अन्न यानी जीवन देने वाला है। अन्न पैदा होते हैं मेघों के अमृत वर्षण से। इसलिए मेघ हमारे लिए पोषण, दाता व जनक (पिता) के समान हैं। हे इन्द्र (मेघ)! आप का वर्षित जल फसलों के लिए ही नही, प्राणी मात्र के लिए अत्यन्त उपयोगी है। निरन्तर समयानुकूल आप बरसात करते रहें जिससे अन्न–अन्नादि का कभी अकाल न पड़े और हर प्राणी सुख से रह सके।

हे मातृभूमि! आप में छिपीं अतुलित सम्पदाएँ, रत्न, वनस्पतियाँ और विभिन्न प्रकार के पदार्थ हमें प्राप्त होते हैं। ये पदार्थ कहीं पर ऊपरी तल में हैं तो कहीं मध्य में और कहीं गहराई में। हर स्थान से उपयोगी और बहुमूल्य वस्तुयें मिलती हैं। वनस्पतियों से बहुमूल्य लकड़ियाँ प्राप्त होती हैं। फल, फूल, मेवे, अन्न और अन्य उपयोगी खाद्य भी प्राप्त होते हैं। व्यापारी जनों के लिए व्यापार की वस्तुयें भी आप के द्वारा ही प्राप्त होती हैं। शरीर की शक्ति के लिए हमें वह सब कुछ मिलता है जो आवश्यक है और विभिन्न प्रकार के रत्न, मणि–माणिक्य, पत्थर, लोहा, गन्धक, सोना, कोयला, ताँबा, हीरा और अन्य अत्यन्त कीमती वस्तुयें प्राप्त होती हैं। हे माँ, आप की गोद में पोषक दूध, अन्न, फल, मेवों का सेवन कर मैं पला–बढ़ा। यही पदार्थ 'ऊर्ज' (अन्न फलादि) कहे जाते हैं। ये पदार्थ, अपने शरीर में सदा धारण करते हुए–हमें प्रदान करती रहना ऐसी प्रार्थना है।

हे मातृभूमि! हमारी बुद्धि, विचार और मन सर्वदा पवित्र रहें–यह जीवन समुज्ज्वल बने रहने का आधार है। हम शुभ और सत्य के रास्ते से ही धन सम्पत्ति अर्जित करें। अर्थात् जीवन में पवित्रता का साथ कभी न छूटे। धर्म का रास्ता ही हमारे लिए श्रेयस्कर हो। शोषण करके, चोरी करके, दुख देकर, सताकर, प्रताड़ित करके और हिंसा के जरिए कोई पदार्थ (धन) हम प्राप्त न करें।

हे माँ! न्याय, दया, प्रेम, अहिंसा, उदारता, सहिष्णुता और सत्य जैसे मूल्यों को अपनाते हुए हम आप से सभी पदार्थ प्राप्त करें। यही मार्ग सबसे पवित्र है। इससे प्राप्त होने वाले पदार्थ तन, मन, बुद्धि, विवेक और अन्तःकरण को सदा पवित्र बनाए रखते हैं।

हे मातृभूमि! आप मेरी माता हैं और मैं आप का पुत्र हूँ। माँ अपनी वात्सल्यमयी गोद में हर प्रकार का सुख प्रदान करती हैं। आप अमृत का पान कराकर हर विधि से सुखी और सम्पन्न बनती हो। लेकिन, साथ में यह भी आदेश करती हैं कि पुत्र जो भी पदार्थ प्राप्त करे वह धर्म के रास्ते से ही हो अधर्म के रास्ते से नहीं। यह रास्ता सभी के लिए हितकारी होता है।

हे मातृभूमि! आप मेरी माँ हैं और मेघ पिता के सदृश्य हैं। जिस प्रकार से पिता का कर्तव्य सन्तान का पालन करने का होता है उसी प्रकार से पर्जन्य भी हमारा सर्वदा पालन करते रहें। यहाँ पर्जन्य मेघ को कहा गया है। मेघ के वर्षण से भी प्रजा सुखी होती है और कृषादि उत्तम तरीके से होती है। मेघ अर्थात् बादलों द्वारा की गई वर्षा से धरती माता को प्राण मिलता है। सभी प्राणियों में नई चेतना शक्ति का उद्दापन होता है। कृषि, बागवानी और अन्य सभी क्षेत्र वर्षा के कारण हरित हो जाते हैं। चहु ओर हरीतिमा का नूतन दृश्य उपस्थित हो जाता है। मनुष्य ही नहीं अन्य प्राणी भी बादलों के बरसने से प्रसन्न होते हैं। अर्थात् वर्षा जहाँ सुखकारी होती है वहीं पर उन्नति का कारण भी है। अन्न, फल, मेवे, दूध और अन्य खाद्य पदार्थों का अभाव वर्षा होते रहने से नहीं होता है।

परमपिता परमेश्वर भी पर्जन्य है। वह सुख, आनन्द, ऐश्वर्य और शान्ति प्रदान करके अपनी सन्तान को सुखी बनाता है। सृष्टिकर्ता और सृष्टि का पालन करता वही है। वही निर्माता है और वही विधाता है। सृष्टि में प्राणी और अप्राणी–रूप में जितनी भी वस्तुयें हैं उसी द्वारा द्वारा निर्मित हैं। राष्ट्र का स्वामी सम्राट को भी पर्जन्य कहा गया है। वह राष्ट्र में निवास करने वाले सभी लोगों को पुत्रवत् पालन करता है। वही सम्राट श्रेष्ठ होता है जो प्रजा के द्वारा चयन किया गया हो। ऐसा सम्राट राष्ट्रोन्नति के लिए धर्म के रास्ते पर चलते हुए निर्भीकता, सत्साहस और सत्य को अपनाते हुए सर्वहित में लगा रहता है। कहने का भाव यह

है पर्जन्य के रूप में सम्राट यदि निष्पक्ष योद्धा, न्यायकारी और साहसी होगा तो देश की उन्नति लगातार होती जाएगी।

इस प्रकार पर्जन्य के रूप में तीन हमारे पालक पिता हैं। इन तीनों की कृपा से धरती माता पर किसी प्रकार का अभाव, दुख, अन्याय, शोषण और अत्याचार, हिंसा और अशुभ नहीं रहने पाते हैं। सभी को आवश्यकता के अनुसार पदार्थ प्राप्त होते रहते हैं। देश की उन्नति होती रहती है। विद्या की वृद्धि होती रहती है। अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवस्थायें उत्तम बनी रहती हैं।

हे मातृभूमि। हमारे देश में किसी प्रकार का अभाव व दुख किसी को न व्यापे। कृषि और उद्योग–धन्धें खूब फूले–फलें। राज्य के राज्याधिकारी, प्रजा–जनों के निमित्त अपने कर्तव्यों का सम्यक–रूप से पालन करने वाले बने रहें। कभी अकाल और अतिवृष्टि न हो। कहने का भाव यह है कि तीनों पर्जन्य मातृभूमि के सभी जनों के लिए हमेशा कल्याण करते रहें ऐसी प्रार्थना हम करते हैं।

मातृभूमि की वन्दना करता हुआ भक्त कहता है, हे मातृभूमि! हमारा पालक पिता परमात्मा, मेघ और शासक सभी हमारे हितकारी बने रहें। धरती माता से प्राप्त होने वाले सभी पदार्थ राष्ट्र, समाज और देव संस्कृति को समृद्ध करने वाले बनें।

वेद का उपदेश है कि मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी जन परस्पर प्रेम व भाईचारे के साथ मिलकर रहें। एक दूसरे को सहायता देते रहें। जिस प्रकार से तीनों पर्जन्य प्रजा–जनों को सब विधि से सुखी व समृद्धशाली बनाते हैं उसी प्रकार मातृभूमि के सभी लोगों को पर्जन्य बनकर अपने कर्तव्यों का सम्यक् निर्वाह करना चाहिए। शुभ कर्मों से ही शुभता का उदय धरती पर होता है। समय से मेघ बरसते हैं, समय से फसलें होती हैं और समय से सारे कार्य सम्पन्न होते हैं। इस लिए शुभकर्म करना और प्रभु को स्मरण करना भी मातृभूमि की खुशहाली के लिए आवश्यक है।

13

विविध यज्ञों से सुसज्जित मातृभूमि

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्।
सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना।।

शब्दार्थ– (यस्यां भूम्यां) जिस मातृभूमि पर (यस्यां) जिस पर (विश्वकर्माणः) अनेक प्रकार के कर्म में निपुण लोग (वेदिं) कर्मभूमि–रूपी यज्ञ वेदि पर (यज्ञं) विश्व के विकास वाले कर्म (तन्वते) अनवरत विस्तार करते हैं (परिगृह्णन्ति) मर्यादायुक्त ग्रहण करते हैं (यस्यां पृथिव्याम्) इस मातृभूमि पर (ऊर्ध्वाः) सदा ऊँचा उठते जाते हैं (आहुत्याः पुरस्तात्) कर्मों को श्रद्धा पूर्वक अर्पण करना (शुक्राः) निर्माण जिनसे होता है, उज्ज्वल वर्ण का (स्वरवः) आदर्श रूप में (मीयन्ते) नव सृजन के साथ (सा नो भूमिः) उस धरणी माँ को (वर्धमाना) जो हर क्षण विस्तारित होती जाती है (वर्धयत्) उद्‌विकास पर आगे बढ़ती जाए।

भावार्थ– मंत्र में यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म को (परोपकार और कर्तव्य) जीवन की सफलता का आधार बताया गया है। हम यज्ञ–कर्ता बनकर अपना, समाज और मानवता के कल्याण के मार्ग के पथिक बनें। इस वसुधा में यज्ञ से बढ़कर कोई शुभ कर्म नहीं है। मातृभूमि का विकास, मानवता का कल्याण और समाज की प्रगति का सूत्र यज्ञ में ही निहित है। हम जीवन पथ पर चलते हुए अपने सभी कर्मों को मातृभूमि, राष्ट्र और संस्कृति की रक्षा हेतु समर्पित करते जाएँ। इसमें ही सब का कल्याण निहित है।

विवृति– इस पावन वसुन्धरा पर सनातन काल से विविध कार्य, उद्योग और यज्ञ–कर्म होते रहे हैं। इस पुनीत धरा पर अनवरत् नवनिर्माण के यज्ञन कार्य होते रहते हैं। हे मातृभूमि! यज्ञ कर्म को मेरे निरन्तर आशीर्वाद देती जाएँ जिससे प्रगति–चक्र विश्व कल्याण का अहिर्निश चलता रहे। यज्ञ ही जीवन है, यज्ञ ही विश्व विकास का प्राणात्मा है और यज्ञ ही से सत्य का विस्तार होता है। विश्व हित में यज्ञ कर्म करने वाले मातृभूमि के पुत्र वन्दनीय हैं। स्तुत्य योग्य हैं। ब्रह्माण्ड में धर्म कार्य (परोपकारादि) का जितना विस्तार होता है, उतना ही मातृभूमि पर बसने वाले लोगों में सद्‌भावना, समता और सुख का भी विस्तार होता है।

हे भू–माता! हमारे अभिमत, कार्य और स्वभाव निरन्तर मनस्वी बनते जाएँ। हे भू माता! आपकी वेदि पर श्रेष्ठजन पंच महायज्ञ (ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, अतिथि यज्ञ, भूत यज्ञ व पितृ यज्ञ)

करते रहते हैं। बलवान, सभ्य योद्धा, बलशाली, शूरवीर अपने बल द्वारा असहाय की सहायता करते रहते हैं। समता, एकता, क्षमता और सद्भावना की मानवीय–पथ पर सदैव नवनिर्माण हेतु अग्रसित होने वाले मनस्वी जन, विश्व कल्याण हेतु लगातार प्रयास करते रहते हैं।

मातृभूमि का विकास निरन्तर होता रहे इसके लिए आवश्यक है विश्व के हर मनुष्य का विकास उसके गुण, कर्म व स्वभावानुरूप होता रहे। सत्य ब्रह्माण्ड की हर वस्तु में स्पंदित होता रहे। जिस तरह से अग्नि में घी पड़ते ही अग्नि धधक कर ऊपर की तरफ अर्थात् अग्नि की लपटें उठने लगती हैं, उसी तरह से सत्य–रूपी घी पड़ते ही जीवन–अग्नि ऊर्ध्वगामी बन ऊपर की ओर बढ़ने लगती है। हे भू–माता! हम सभी में ऐसी प्रेरणा भर दीजिए जिससे कर्म–श्रद्धा की भावना से ओत प्रोत हो, हम कर्म करें। श्रद्धा के बिना कर्म का परिणाम उत्साहवर्धक नहीं होता है। उत्साह की कमी या समाप्ति का मतलब जीवन में निराशा का प्रवेश। और निराशा युक्त जीवन कोई जीवन नहीं होता है। हमारे सारे कर्म मर्यादित, श्रद्धायुक्त और परिश्रम के साथ होने चाहिए।

सृष्टि के हर वस्तु का अनादिकाल से हर पल विकास हो रहा है। धरती माँ का विस्तार व विकास आन्तरिक व पदार्थिक रूप से हर पल होता रहता है। मनुष्य का भी विकास सृष्टि काल से होता आ रहा है। लेकिन जब तक चेतना का विस्तार व विकास निरन्तर विस्तारित नहीं होगा, सृष्टि के रचयिता का उद्देश्य (परमानन्द की निरन्तरता बढ़ती जाए) भी पूरा नहीं होगा। मनुष्य परमचेतना का एक यंत्र मात्र है। जैसा वह (परमचेतन चिद्शक्ति) चाहता है वैसा हम करते जाएँ तो मातृभूमि का विकास तीव्र हो जाएगा। हम सभी, इस दिशा में आगे बढ़े ऐसी शक्ति व प्रेरणा हमें दीजिए माता।

हे मातृभूमि! आप विविध प्रकार के यज्ञों द्वारा सुसज्जित हैं। ये यज्ञ देवों के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। ये देव विश्वकर्मा हैं। विश्वकर्मा यज्ञ वेदियों के निर्माता हैं। यज्ञवेदी का आकार ऊँचा, चौड़ा और लम्बा होता है। ऐसी यज्ञवेदी में यज्ञों की स्थापना होती है। हे माँ! यज्ञ का बड़ा नाम है। जितने भी लोकहितकारी कर्म हैं, सभी यज्ञ कहे जाते हैं। यज्ञ शब्द का बहुत व्यापक और पुनीत अर्थ है। व्याकरण के अनुसार यह यज्ञ शब्द यज् धातु से सम्पन्न होता है। जिसका अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण और दान। देवपूजा का अर्थ देवतुल्य लोगों का यथायोग्य व्यवहार, संगतिकरण वह है जो संगति अर्थात् मैत्री भाव से किये जाते हैं। सब की भलाई जिसका लक्ष्य होता है। जरूरतमंद को दान देने का आदेश वेद में दिया गया है। यह दान यज्ञ ही है जिसे प्रत्येक सामर्थ्यवान व्यक्ति को करते रहना खहिए।

विद्यालय, विश्वविद्यालय, शोधकेन्द्र, उद्योग, कृषि, कुटीर उद्योग और अन्य हितकारी संस्थानों से किये जाने वाले विकास और शुभकार्य यज्ञ कहे जाते हैं। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि इनमें किसी स्तर पर असत्य, अन्याय और शोषण का प्रश्रय न किया गया हो। मातृभूमि पर बसने वाले सभी निर्माण कार्यों में लगे जन सद्भाव से मिलकर कार्य करते हैं तो वे यज्ञ बन जाते हैं। लोकोपकार में किये जाने वाले सभी कर्म यज्ञ हैं। हम यज्ञ करने में सामर्थ्यवान हों–ऐसी शक्ति हे माता हमें प्रदान करो।

सभी यज्ञों में राष्ट्र–यज्ञ या मातृयज्ञ सबसे उत्कृष्ट है। क्योंकि इससे सम्पूर्ण राष्ट्र और भूमिमाता का हित होता है। ऐसे यज्ञ के हम कर्ता बनें– ऐसी हमारी प्रवृति बनें। मातृभूमि के विकास, रक्षण, पोषण और अनुपम बनाने के लिए अनेक शिक्षालय, अनुसंधान–केन्द्र, शिल्पालय व उद्योगों की स्थापना की जाती है। ये सभी कृत्य भी यज्ञ हैं। वे सभी यज्ञ के मण्डप सदृश्य हैं। इनकी वेदियों (प्राचीरों) का निर्माण वे विश्वकर्माजन करते हैं। इससे एक भव्य यज्ञशाला का रू॰ आभाषित होता है। इन यज्ञशालाओं में किये जाने वाले यज्ञ विभिन्न प्रकार के हैं। यहाँ से जो स्वर शब्द से अभिहित किया गया है, वह रू–ब–रू शब्द चिन्ह का प्रतीक है। कहने का भाव यह है कि कौन सा कार्य किस स्थान पर हो रहा है उसे जिन चिन्हों के द्वारा प्रकट किया जाता है, वह 'स्वरू' है।

यज्ञ आहुति से ही सम्पन्न होता है। आहुति है शुभकर्म। जगत्हित किये जाने वाले कर्म ही यज्ञ की आहुति हैं। और इनके कार्यों में जो व्यय होता है, वह आहुति है। जिस यज्ञ को हम सम्पन्न करते हैं उसकी वेदी बनाई जाती है। मैत्री भावना ही वेदि है। लोकोपकार में किये जाने वाले यज्ञ अनवरत चल रहें इसके लिए, यह आवश्यक है कि यज्ञ में व्यय होने वाले धन की आवक अहिर्निश बनी रहे।

हे मातृभूमि! लोकोपकार के सभी यज्ञ जो विश्वकर्माओं के द्वारा निरन्तर किये जाते हैं वे सभी तुम्हारी वृद्धि करते हैं। इससे राष्ट्र की अग्नियाँ सदैव प्रदीप्त रहती हैं। हे माता, हम ऐसे लोकोपकारी यज्ञों के द्वारा तुम्हें समृद्ध बनाते रहे, ऐसी हमें प्रेरणा देती रहो।

मातृभूमि के स्तुतिगान के द्वारा इसमें यह उपदेश दिया गया है कि यज्ञ की विविध विधियों, विविध यज्ञों, वेदि–निर्माण में दी गईं आहुतियों का अत्यन्त योगदान है। मातृभूमि के कल्याण के लिए हम सभी प्रजाजन विश्वकर्माओं को मैत्रीभाव से यज्ञ के कर्ता बनें रहने की कामना करते हैं।

14

हम स्वतत्रंता के पोषक

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा ये वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्व कृत्वरि।।

शब्दार्थ– (पृथिवि) हे मातृभूमि! (यः नः) जो मुझसे (द्वेषत्) अलगाव रखता है (यः पृतन्यात्) जो मुझसे पृथक रह कर हमें परास्त करना चाहता है (यः) और जो (मनसा) मानसिक रूप से (वधेन) जबरन अधर्म पूर्वक (अभिदासात्) हमें दास बनाना चाहे (पूर्व कृत्वरि भूमे) पूर्वजों के किए गये पुण्य कर्म (नः तरन्ध्य) आतताइयों का नाश कर दें।

भावार्थ– मंत्र का भाव यह है कि स्वतंत्रता का महत्त्व व्यक्ति के लिए महत्त्व पूर्ण है, लेकिन मातृभूमि की स्वतंत्रता सर्वोपरि है। मातृभूमि की रक्षा जीवन रक्षा से भी महत्त्वपूर्ण है। किसी भी परतंत्र राष्ट्र का व्यक्ति स्व–स्वतंत्रता के लिए कल्पना भी नहीं कर सकता। इस लिए विध्वंशकारी आक्रमणकारियों के आक्रमण को विफल करना प्रत्येक राष्ट्र के नागरिक का प्रथम कर्तव्य है। राष्ट्र के सभी नीति निर्माताओं को अपने राष्ट्र की रक्षा करना प्रथम कर्तव्य व नीति होनी चाहिए।

विवृति– हे मातृभूमि! हम सतत् स्वाधीन रहकर जीवन व्यतीत करें। कोई भी व्यक्ति मुझसे न द्वेष और ईर्ष्या करे, और न ही हमें मानसिक या दूसरे प्रकार से पराधीन बनाने के लिए किसी तरह का प्रयत्न करे। अर्थात् हमारे हर क्षण स्वाधीन शुभ और अभय पूर्वक व्यतीत हों। चारों दिशाएँ शत्रु रहित हों। अधर्म और अनाचार से कभी हमारा वासता न पड़े। जिस तरह से (स्वाधीन) स्वछन्द पक्षी गगन में विचरण करते हैं उसी तरह जीवन हमारा हो। सुख और शान्ति हमारे जीवन का आधार बने रहें। हममें वह सर्जक शक्ति हो, जो सब के हित का भागी बने।

पराधीन मनुष्य को स्वप्न में भी सुख शान्ति नहीं मिलती है। हे भू माता! सबके हृदय में अभय और कल्याण भाव का आलोक आलोकित होता रहे। अनिष्ट की भावना का कभी विस्फोट किसी जन में न हो। अंतःकरण की पवित्रता खुद को पावन बनाती ही है, परिवार, समाज और विश्व चेतना के पल्लवन के लिए भी सुख, शुभ, शान्तिदायक होती है। इस लिए पवित्रता का जीवन शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक आयामों के लिए भी हितकारी होता है। भू–माता हर जन में पवित्रता का भाव अंकुरित हों ऐसी सद्प्रेरणा सबमें प्रवेशित करें।

विघ्न और विध्वंस करने वाली जितनी भी शक्तियाँ हैं वे मातृभूमि के उन्नयन और ऊर्ध्वाहन में रुकावट डालती हैं। हम सभी श्रेष्ठ–जनों में ऐसी शक्ति एंव सामर्थ्य आ जाए जो विध्वंसक शक्तियों को मिलकर मूल नाश कर दें, हम सभी सदा ऐश्वर्यवान् एवं बलवान होकर यशस्वी जीवन बिताएँ।

वाणी मनुष्य के अभिव्यक्ति का आधार है। इस लिए वाणी की शुद्धता और सहजता (माधुर्य) पर विशेष बल दिया जाता है। वेद में प्रिय और माधुर्य पूर्ण वाणी व्यवहार की प्रेरण दी गई है। वाणी से पवित्रता और प्रियता की भावना निरन्तर सरसती रहे ऐसी कामना सतत् करते रहना चाहिए। वाणी भ्रष्ट होने से मानसिक, शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक अभद्रता बढ़ जाती है। इसलिए वाणी के द्वारा किया गया उत्पात या हिंसा पाप की प्रवृत्तियों को बढ़ाने वाली मानी गई है। शब्द–माधुर्य जितना प्रखर होता है, व्यक्ति और समाज के सर्वोन्नति के मार्ग वैसे खुलते चले जाते हैं।

हे मातृभूमि! हम सभी जन किसी द्वेषी के पराधीनता के शिकार नहीं। शत्रुओं से हम कभी परास्त नहीं। जो हमारे साम्राज्य को विध्वष्क जीतना चाहते हैं, हमारा हर तरह से अनिष्ट चाहते हैं ऐसे विध्वंसकारी शत्रु जनों से हमारी हर तरह से रक्षा कीजिए। हममें जो मनुष्यत्व और निजत्व है, वह किसी शत्रु के द्वारा कभी नष्ट न होने पाए। सत्व सदैव शुभत्व का सद्गुणी बनें। विश्व समाज का हर कण अभय के रस से रसासिक्त बना रहे। कभी कोई किसी को पराधीन (गुलाम) बनाने के लिए उद्दत न हो। अंतःकरण में परमानंद की अलौकिक रश्मियाँ फागुनी फुहार की तरह निरन्तर झरती रहें। भू–माता आप का वात्सल्य रस अमृत बनकर हम सभी को अक्षय–शक्ति से भरता रहे ऐसी अभिज्ञा हम करते हैं।

हे मातृभूमि! हम सब का जीवन आपकी वात्सल्यमयी गोद में हर प्रकार से पवित्र रहे। हम सब के अन्दर द्वेषादि के कलुषित भावनायें कभी जन्म न लें। आप की गोद में पलने बढ़ने वाले सभी जन अपने सहोदर हैं। इस लिए हममें इनके प्रति कभी दुर्भावनायें उत्पन्न न हों। यदि कोई अन्य भू भाग का व्यक्ति हमसे द्वेष करता है या दुर्भावना रखता है तो आप उसे सहन मत करना। यदि किसी प्रकार की दुर्भावना या अन्य कारणों से कोई देश सेनाओं के द्वारा आक्रमण करता है और जीतना चाहता है तो हे मां, हम सब में इतना बल पराक्रम भर देना कि उन शत्रुओं को हम परास्त्र कर दें और अपनी स्वतंत्रता को आक्षुण्य बनाए रखें। किसी राष्ट्र को पराधीन करने के लिए उस पर आक्रमण किया जाता है। यह आक्रमण राष्ट्र के भू भाग, इसके निवासियों और धन–सम्पत्ति को अपने कब्जे में करने के लिए किया जाता है। इसमें जहां शस्त्र और अस्त्रों का प्रयोग किया जाता है वहीं पर नीति द्वारा शिथिल करके

पराधीन किया जाता है। हे माँ! इन आक्रमणों से धन, जन और अन्य वस्तुओं की अथाह हानि होती है। रक्त की नदियाँ बहती हैं, असंख्य लोगों का वध हो जाता है। यदि इसका प्रतिरोध ठीक ढंग से नहीं किया जाता तो राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के पराधीन हो जाता है। और यदि सामूहिक योद्धापन के साथ आक्रमण को विफल कर दिया जाता है, तो मातृभूमि की स्वाधीनता का अक्षुण्य बनाए रखने में सफल हो जाते हैं। मातृभूमि को स्वाधीन(अक्षुण्य) बनाए रखने में हमारी कटिबद्धता सदैव बनी रहे, ऐसी पवित्रता और संकल्पधर्मी भावना बनी रहे। कहा भी गया है, **पराधीन सपनेहु सुख नहीं**।

जो व्यक्ति मन से पराधीन हो गया या जिस राष्ट्र के निवासी किसी अन्य राष्ट्र की पराधीनता मन से स्वीकार कर लेते हैं वे कभी अपनी मातृभूमि को स्वाधीन नहीं रख सकते हैं। इस लिए, मन से कभी भी व्यक्तिगत रूप से और राष्ट्र के स्तर पर पराधीन नहीं बनना चाहिए। स्पष्ट है 'मन के हारे हार है मन के जीते जीत'। यदि राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र के द्वारा आक्रमण के कारण पराधीन हो गया लेकिन राष्ट्रजनों ने उस राष्ट्र की पराधीनता स्वीकार नहीं की तो राष्ट्र पराधीन हो कर भी मन से स्वतंत्र होता है।

इस लिए हे माँ! हममें ऐसा प्रबल स्वाधीनता का भाव भर दो कि आक्रमणकारियों के चंगुल में फँसने के बाद भी मेरा मन कभी उनकी पराधीनता को स्वीकार न करे, चाहे हमें कितनी प्रताड़ना मिले। जुल्म ढायें जाएँ, काल कोठरी मे डाल दिया जाएँ या धड़ भी सिर से क्यों न अलग कर दिया जाए– हममें से कोई भी पराधीन न हो। ऐसी स्वाधीनता की प्रबल अग्नि हम सभी में प्रज्वलित कर देना।

हे मातृभूमि! कोई राष्ट्र अपने छलबल से तुमको पराधीन करने का प्रयत्न करेगा और उसमें सफल भी हो जाता है, तब भी हम कभी हार मानने वाले नहीं हैं। उपयुक्त अवसर आते ही नीति द्वारा पराधीनता के बन्धन से मुक्त होने के लिए, वह सब कुछ करेंगे जिसकी आवश्यकता होगी। संसार में विजेता राष्ट्र पराधीन राष्ट्र के मन को तोड़ने में यदि सफल हो जाते हैं तो पराधीन राष्ट्र कभी स्वाधीन नहीं हो सकते हैं। इस लिए राष्ट्रवासियों को मन से विजयी होने का संकल्प हर परिस्थिति में जरूरी होता है।

पराधीन राष्ट्र की न तो भाषा अक्षुण्य रह पाती है और न तो संस्कृति ही। उसका कोई अपनी नीति व धर्म भी नहीं होता है। शिक्षा–दीक्षा, रोजगार, विकास, उन्नति समाप्त हो जाती है। और उसके स्थान पर विजेता राष्ट्र की नीति, भाषा, संस्कृति, धर्म आदि चलने लगते हैं। धीरे–धीरे पराधीन राष्ट्र की भाषा दर्शन, संस्कृति, शिक्षा, नीति, कला, साहित्य का विलोप हो जाता है। पराधीन राष्ट्र के निवासी विजेता राष्ट्र की सभी प्रकार की नीतियों को ही अपनाने

लगते हैं। विजेता राष्ट्र पराधीन राष्ट्र के निवासियों को ऐसी शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, कला और नीति पढ़ाने लगता है जिसमें पराधीन राष्ट्र की हर प्रकार से निंदा कमजोरी और क्षीणता दिखाई जाती है (जैसा की अंग्रेजी शासन के समय में भारत में भी अंग्रेजों ने किया था) धीरे–धीरे पराधीन राष्ट्र के निवासी विजेता राष्ट्र की संस्कृति, भाषा, दर्शन, कला, कौशल, शिक्षा, परम्परा, वेशभूषा और चिंतन नीति को ही सबसे श्रेष्ठ और अपनी पुरानी सभी प्रकार की चीजों से कट जाते हैं और एक समय ऐसा आता है कि हर व्यक्ति अपनी विरासत से घृणा करने लगता है। आगे समय व्यतीत होने के साथ विजेता राष्ट्र की संस्कृति, भाषा, नीति, कला, दर्शन व पम्पराओं का गुणगान करने लगते हैं। विजेता राष्ट्र के पराधीनता में ही अपना हित देखने लगते हैं। फिर स्वाधीन होने की भावना समाप्त हो जाती है। पराधीनता ही स्वाधीनता लगने लगती है। इस लिए मन से पराधीन होना ही सबसे बड़ी परतंत्रता है। इस लिए इस आत्मघात से हरहाल में बचना चाहिए।

हे मातृभूमि! कोई भी राष्ट्र पराधीन करने की नियत से या परेशान करने की नियत से तुम पर आक्रमण करे तो उसके इस इरादे पर पानी फेर देना। क्योंकि पराधीनता से बढ़कर दूसरा कोई दुख नहीं है। हे मां, हममें ऐसी प्रबल शक्ति, सत्साहस, निर्भीकता, निर्भय और योद्धापन का भाव भर दें कि ऐसे विध्वंसकारी राष्ट्र के गलत मनसूबे पर पानी फेर सकूँ। आक्रमणकारी भागता फिरे। जिस समय दूसरा राष्ट्र आक्रमण करे, उस समय हम मातृभूमि के रक्षकों का प्रतिरोध इतना प्रबल हो कि आक्रमणकारी के दाँत खट्टे हो जाएँ। उनके धुर्रे उड़ा दूँ। जिससे फिर वे भविष्य में तुमको पराधीन करने का साहस न कर सकें। हे मां, तुम्हारा शरीर वज्र जैसा है। तुम्हारे अणु–अणु में स्वाधीनता की धारा प्रवाहित हो रही है। ऐसी अभेद चट्टान, जैसी तुम्हारी शरीर को आक्रमणकारी कभी भेद न सकें। ऐसा रूप बनाना, फिर देखना आक्रमणकारी कैसे पीछे हटते हैं। उन्हें एहसास करा देना कि किसी वज्रसम शरीर वाली और स्वाधीनता की बुलंदियों से ओत प्रोत मातृभूमि के रक्षकों पर आक्रमण करने का परिणाम क्या होता है।

मातृभूमि की वन्दना करते हुए भक्त की प्रार्थना में वेद का यह उपदेश है कि वही राष्ट्र स्वाधीन बना रह सकता है जिसके निवासियों में स्वाधीनता की आग हमेशा प्रज्वलित रहती है। ऐसे राष्ट्र पर कोई दूसरा राष्ट्र आक्रमण करने का साहस नहीं करता है। यदि कोई राष्ट्र दुर्भावना से प्रेरित होकर आक्रमण कर ही दे तो हमें मिलकर सत्साहस से मुकाबला करना चाहिए और राष्ट्र की स्वाधीनता को बनाए रखना चाहिए।

15

पंचायतन वाली मातृभूमि

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येम्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरात नोति।।

शब्दार्थ– (पृथिवि) भू माता (मर्त्याः) मातृभूमि के लिए चिन्तन (त्वज्जाताः) तुझको अर्पण करूँ (त्वयि चरन्ति) तुम्हारी रक्षा हेतु चलते हैं (त्वं) हे मातृभूमि! (द्विपदः) दो पैर वाले प्राणी (चतुष्पदः) और चार पैर वाले प्राणी (त्वं विभर्षि) भरण–पोषण करती हो (येभ्यः मर्त्येभ्यः) जो मननशील मनुष्य (अमृतम्) अमृतमय जीवन के हेतु (ज्योतिः) तेज प्रकाश से युक्त (उद्यन् सूर्यः) अखण्ड आभा मण्डित युक्त प्रकाश (रश्मिभिः) जिनकी रश्मियों से (आतनोति) निरन्तर विस्तृत होता हुआ (इमे पञ्च मानवा) पाँच संस्कृतियों से सम्बन्धित जन (तव) जो तुम्हें बेहद प्यारे हैं।

भावार्थ– पाँच प्रकार के मानव का वर्णन इस मंत्र में किया गया है। ये पाँच प्रकार के मानव हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (श्रमिक)। ये चारों वर्ण वैदिक समाज के अनुसार समाज–हित में विभाजित किये गये हैं। लेकिन इन चारों वर्णों के अतिरिक्त पाँचवा वर्ण भी मातृभूमि पर निवास करता है जो वैदिक समाज व्यवस्था का पोषक नहीं है बल्कि वह अपनी स्वयं की नीति और नियम से जीवन बसर करता है। यह पाँचवा वर्ण भी धरती पर रहने, सम्मान पाने और अपना कार्य स्वतंत्रता पूर्वक करने का उतना ही अधिकारी है जितने अन्य चारों वर्ण। इस लिए मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी वर्ण आदर और सम्मान के पात्र हैं।

विवृति– हे भू–माता! आप से ही सारे चेतन, अचेतन, प्राणी, अप्राणी, एक कोशिकीय और बहुकोशकीय जीव अंकुरित हुए हैं। वृक्ष, लता, पेड़, पौधे, पशु, पक्षी और सबसे श्रेष्ठ प्राणी मनुष्य आप से पोषण पाता है। आप ही सब की माँ हो। जिस तरह से माँ अपने शिशु से वात्सल्य भाव से बर्तती है उसी तरह से हे भू माता आप भी प्राणी मात्र से वात्सल्य भाव रखते हुए बिना किसी स्वार्थ, भेद–भाव और दुराग्रह–आग्रह के सबको पोषण प्रदान कर सभी को विकास का अवसर देती रहती हो। स्वर्ग–अपवर्ग और धर्म–अधर्म सभी प्रकार के लोग आप ही पोषण पाते हैं। हे वसुमति! आप का अभयदान अनादि काल से सभी जड़–जंगम और चेतन–अचेतन पदार्थों का विकास का कारण हैं। शुभ–अशुभ, हित–अहित, परोपकार–अपकार और स्वार्थ–निःस्वार्थ की प्रवृत्तियाँ, आप पर ही स्वभावगत अनादिकाल से विचरण करतीं आ रही हैं। आप जैसी धैर्य धारणी, क्षमावारणी, धर्मचारणी और शुभ सुवाहनी दूसरी माँ कोई नहीं

है। इस लिए आप अद्वितीया, अनुपमा ओर अतुलनीया हो।

हे मातृभूमि! आप के इस विशाल वक्षस्थल पर पंच संस्कृतियों और धर्मों वाले मनुष्य सृष्टिकाल से विचरते आ रहे हैं। विविध संस्कृतियों और धर्मों वाले जनज्ञान, विज्ञान, साहित्य, कला एवं दर्शन के अनुसंधान द्वारा वैचारिक, मानसिक, आत्मिक और सामाजिक एकत्व के लिए निरन्तर प्रयासरत रहते हैं।

हे माँ! आप ने पोषण व संरक्षण देकर मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों को नए उद्दाम तक पहुँचने का जो सुअवसर अनादि काल से प्रदान किया हुआ है, वह आप के गुण व स्वभाव का ही प्रतिफलन है।

नित अंशुमाली अपनी अमृतमय रश्मियों के निर्झसा से सभी प्राणियों को नवजीवन प्रदान करता है। जो उपकार भगवान भास्कर करते हैं, उसका कोई वर्णन नहीं किया जा सकता है। सूर्य की ये रश्मि–वाहिनियाँ दिग्दिगन्त में जिस प्रकार से बिना किसी भेदभाव के सभी को जीवन देकर उपकृत करतीं हैं ऐसा ही आलोक–अशुं हमारे अंतःकरण–रूपी गगन में उदय होकर अंतः में छाए वात को समूल नष्ट कर दे। जैसा सुधासार भगवान भास्कर नित् हम सभी को प्रदान करते हैं। हे माँ! ऐसा ही सुधामय रस हमारे अंतःस्थल आकाश में भी निर्झरित हो। हम इससे शक्तिशाली होकर आप की रक्षा करने में सामर्थ्यवान हो सकेंगे।

आप की रक्षा का अर्थ पर्यावरण, मानवीय संस्कृति, धर्म, ज्ञान और विज्ञान की रक्षा करना। हम जैसे–जैसे सामर्थ्यवान होते जाएँगे, वैसे–वैसे हमारी चेतना–भूमि विस्तृत होती जाएगी।

विश्व समाज में ज्ञानी (विद्वान) ऐश्वर्यवान, शूरवीर, कलाकार और परोपकारी अपने कार्यों से समाज को सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के निर्माण के लिए अनवरत् उद्वेलित रहे। ऐसी प्रेरणा देकर विश्वजन को एकसूत्र में बाधने के लिए प्रेरित करें। हे मातृभूमि! हम आप के आशीर्वाद के लिए सदैव अनुग्राही रहेंगे।

हे मातृभूमि! आप की धारणा शक्ति और सहनशक्ति ही नहीं पालन और पोषण–शक्ति भी अद्भुत और अपार है। इसका प्रमाण यह है असंख्य दो पायों और चौपाये प्राणी दिन–रात विचरण करते रहते हैं। लेकिन आप सब को धारण और सहन करती हो। ये आप की गोद को गंदा भी करते हैं फिर भी एक माता की तरह सब कुछ सहन करती हो। प्राणी मात्र के प्रति हमारा यह स्वभाव कर्म सर्वदा मातृभूमि के लिए समर्पित रहते हैं। मातृभूमि पर बसने वाले मानव पाँच प्रकार के हैं। सभी के अलग–अलग गुण–कर्म–स्वभाव हैं। अपनी योग्यता, रुचि, गुण, स्वभाव के आधार पर, सभी ने अपने–अपने कार्य व वर्ण का चुनाव किया है। इस लिए

अपने वर्ण व कर्म के क्षमता के आधार पर पहचाने जाते हैं। इस चुनाव में जिन्होंने, शिक्षा, विद्या, यज्ञ, वेदधर्म, सत्य–प्रसार और मानवता की रक्षा का व्रत लिया है, वे ब्राह्मण वर्ण के हैं। जिन्होंने ऋषि–मुनियों और अन्य पूवर्जों के विज्ञान, शोध और ज्ञान का व्रत धारण किया है, जो न्याय की रक्षा का और परोपकार में लगे रहते है। जिन्होंने धर्म और सत्य का रास्ता चुना है और अहिंसा, सहिष्णुता और अपरिग्रह के व्रत के पालन का व्रत लिया है। त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करने और लोभ–लालच से दूर रहने का संकल्प लिया है और उत्तम समाज व महान् राष्ट्र के निर्माण में योगदान करने व्रत लिया ऐसे ज्ञान–प्रसारक व तपस्वीजन ही ब्राह्मण कहे जाते हैं।

मातृभूमि पर निवास करने वाले ऐसे ब्राह्मण वर्ण का चुनाव करने वाले कुछ लोग ही हैं। लेकिन ये ही समाज, राष्ट्र के नियम बनाने का कार्य करते हैं। ये शरीर में सिर के समान हैं। मातृभूमि पर ऐसे लोग जिन्होंने अपनी रुचि, योग्यता, गुण व स्वभाव के अनुसार क्षत्रिय वर्ण का जीवन व्यतीत करने का व्रत लिया है और समाज व राष्ट्र की रक्षा का संकल्प लिया ऐसे व्रतधारी क्षत्रिय मातृभूमि के लिए अत्यंत योगक्षेम को बढ़ाने वाले होते हैं।

धनुर्विद्या का अध्ययन करके शस्त्र–शास्त्र में पारंगत होकर राजकाज संभालेंगे और मातृभूमि पर होने वाले किसी भी आक्रमण का प्रतिकार करेंगे। ज्ञान अर्जित करते हुए भी शारीरिक रूप से स्वयं को उन्नत करेंगे। जिन्होंने व्रत लिया है समाज का निर्बल, असहाय और मजबूर व्यक्ति को हर प्रकार से शोषण से बचाएँगे। अन्याय, अनाचार और दुराचार का प्रतिकार करना जिन्होंने जीवन का ध्येय ही बना लिया है। राष्ट्र धर्म, समाज धर्म और मानवता के धर्म को निहारते हुए आवश्यकता पड़ने पर स्वयं का भी बलिदान करने का जीवन का उद्देश्य निश्चित किया है ऐसे क्षत्रिय वर्ण के लोग शरीर में भुजाओं के समान हैं। जिन्होंने खेती–बारी, पशुपालन, व्यापारादि करके समाज व राष्ट्र की सेवा करने का व्रत धारण किया है। जिन्होंने उद्योग–धन्धों, आयात–निर्यात के व्यापार व सिद्धान्त का अनुसरण करके समाज व राष्ट्र का आर्थिक–रूप में समुन्नत करने का संकल्प लिया है, ये सारे कार्य स्वार्थ विहीन, शोषण विहीन, हिंसा विहीन, संग्रह–विहीन और कुटिलता विहीन होकर करने का व्रत लिया है–ऐसे लोग समाज में वैश्य के समान हैं। ये शरीर में पेट के सदृश्य हैं।

मातृभूमि पर बसने वाले चौथे प्रकार के मानव वे हैं जिन्होंने अपने गुण, कर्म, स्वभाव व योग्यता के अनुसार सेवा करने का व्रत लिया है। सेवा का व्रत इस लिए लिया है कि शिक्षालयों में जाकर इन्होंने शिक्षा प्राप्त करनी चाही तो उसमें योग्यता न होने के कारण शिक्षा नहीं प्राप्त कर सके। क्षत्रिय वर्ण के चुनाव का अवसर देने पर ये स्वयं को क्षत्रिय बनाने में

अक्षम हुए और कृषि व व्यापारादि में अक्षम तथा इनकी रुचि नहीं रही। अब इनके सामने चौथा विकल्प ही शेष था–सेवा करने का। इस लिए सेवा कार्य का व्रत धारण किया। इनमें इनकी रुचि भी थी और योग्यता भी। कहने का तात्पर्य यह है कि समुचित अवसर, सहायता और प्रेरणा देने के बाद जो ज्ञान, रक्षा और कृषि–व्यापारादि कर्म न करके अर्थात् बुद्धि, विवेक वाले कार्यों के स्थान पर शारीरिक कार्यों को करने में स्वयं सक्षम पाकर सेवा कार्य को बिना ईर्ष्यादि या दुराग्रहवश अपनाया–ऐसे सेवाव्रती को शूद्र (श्रमिक) कहा जाता है। (ध्यान रहे जन्म से कोई भी व्यक्ति न तो ब्राह्मण होता है और न तो क्षत्रिय ही) गुण, कर्म व स्वभाव तथा योग्यता के आधार पर इनका निर्धारण किया जाना चाहिए। शूद्र वर्ण के ये लोग शरीर में पैरों के समान हैं।

मातृभूमि पर निवास करने वाले ये चारों वर्ण वाले लोगों के द्वारा चुने गए ज्ञान, रक्षा, व्यापारादि व सेवा कार्य से समाज व राष्ट्र की जितनी आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं उसे चारों वर्णों के लोग सत्य, न्याय, धर्म, अपरिग्रह और नीति के अनुसार अपने कर्तव्यों का सम्यक् रीति से पूरा करें। ब्राह्मण का धर्म, क्षत्रिय का धर्म, वैश्य का धर्म एवं शूद्र का धर्म सभी का निर्वाहन करने के लिए शारीरिक, आत्मिक और मानसिक शक्ति की आवश्यकता होती है। चारों वर्ण अपनी क्षमता, योग्यता और रुचि के अनुसार समाज व राष्ट्र को अपना अवदान देते हैं तो समाज व राष्ट्र द्रुत गति से खुशहाली, विकास और समृद्धि के पथ पर आगे बढ़ता जाता है। मातृभूमि को खुशहाल, सम्पन्न शत्रुओं से रहित और ऐश्वर्य सम्पन्न बनाने के लिए सभी वर्णों के लोगों के द्वारा दिया गया योगदान निश्चित ही स्तुत्य के योग्य है।

मातृभूमि में इन चारों प्रकार के मानवों के अतिरिक्त एक पाचवें प्रकार के भी मानव रहते हैं। ये वे लोग हैं जिनकी रुचि न तो ज्ञानार्जन व विद्या के प्रचार–प्रसार में है न ही देश व समाज की रक्षा में ही और ने तो कृषिादि व व्यापारादि कर्म में ही और न तो सेवा कार्य में ही है। ऐसे लोग वेद मार्ग या वैदिक समाज व्यवस्था के चतुर्वर्ण्य–सिद्धान्त के स्थान पर स्वयं के ही विकास के द्वारा निर्मित कार्य–सिद्धान्त को प्राथमिकता देते हैं। ऐसे लोग चतुर्वर्ण्य व्यवस्था को न मानते हुए भी समाज व राष्ट्र की उन्नति व विकास में अपना योगदान देते हैं। ये पाचवें प्रकार के लोग भी मातृभूमि को अपनी सेवायें देते हैं। ऐसे लोग भी आदर व सम्मान के पात्र होते हैं। ये भी स्वाधीन राष्ट्र में बसने के उतने ही अधिकारी होते हैं जितने अन्य लोग। ये भी समाज व राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। पाचवें प्रकार के ये लोग ईश्वर, वेद, शास्त्र, मानव सिद्धान्त और परम्परा को न मानते हुए भी मातृभूमि के लिए अपना योगदान देते हैं। इस लिए ये न तो उपेक्षा के पात्र हैं और न तो तिरस्कार के ही। क्योंकि मातृभूमि पर अधर्मी व पंचवृत्ति

के लोग भी निवास करते हैं –भले ही दण्ड के भागीदार हों। लेकिन समाज में सचरित्र श्रेष्ठ जन सब के वन्दनीय व पूज्य होते हैं।

हे मातृभूमि! ये सभी प्रकार के मानव समाज व राष्ट्र की समृद्धि व ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिए अपने गुण, कर्म, स्वभाव योग्यता व क्षमता के अनुसार अपना योगदान देकर खुशहाल बनाने का कार्य करते हैं। सभी जन सूर्य की रश्मियों की अमृतमय वर्षा से अपने प्राणों और शुभ संकल्पों को बढ़ाते हुए स्वास्थ्य लाभ करते हुए, जीवन बसर करते हैं। हे माँ! ये पाँचों प्रकार के लोग मैत्री के साथ अहिंसा, प्रेम, करुणा, दया, मुदिता और सत्य के पथ पर चलते हुए अपनी योग्यता व क्षमता का उपयोग करते हुए, सब के कल्याण के लिए तत्पर रहें–ऐसी प्रेरणा व ऊर्जा इन्हें प्रदान करती रहें।

मातृभूमि की वन्दना में वेद का उपदेश है कि मातृभूमि को हर विधि से समृद्धिशाली करने के लिए उस पर निवास करने वाले सभी प्रकार के लोगों को उनके गुण, कर्म व स्वभाव व क्षमता के अनुसार अपना वर्ण चुनने के लिए अवसर दिया जाए। जन्मगत जाति के आधार पर उनको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र (श्रमिक) न मान लिया जाय। अवसर देकर उन्हें मातृभूमि की सेवा के लिए उनकी योग्यता के आधार पर सेवा का भी अवसर दिया जाए। लेकिन इनमें से कुछ लोग ऐसे भी होंगे जो विचार–भिन्नता व अन्य कारणों से वैदिक चतुर्वर्ण्य को नहीं मानते हैं लेकिन वे गुण, कर्म व स्वभाव से अच्छे लोग हैं। उन्हें मातृभूमि पर निवास व सेवा करने का अवसर दिया जाना चाहिए। क्योंकि विचारों की स्वतंत्रता का सम्मान राष्ट्र व समाज हित में होता है।

16

मधुमय वाणी ही श्रेयस्कर

ता नः प्रजाः सं दुहन्तां समग्राः
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्।।

शब्दार्थ– (ताः) वे सभी प्राणी जन (नः) हमें बहु प्रकार से (समग्राः) सभी तरह से (प्रजाः) कृत करने वाले (वाचः) माधुर्य पूर्ण वाणी (मधुः) अमृतमय (संदुहतां) एकत्रित होकर दोहन करें (पृथिवि) हे भू माता! (मह्यम् धेहि) हमें माधुर्य रस से सिक्त कर दें।

भावार्थ– मंत्र में वाणी की महत्ता को बताया गया है। जिन पाँच प्रकार के वर्णों की चर्चा मंत्र में की गई है उनके लिए मुधर वाणी का आपसी व्यवहार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी प्रजाजन में एकता, सह्रदयता, मैत्री, सुचिता और सद्व्यवहार अनवरत बने रहने के लिए मधुर वाणी, मधुर व्यवहार और मधुमय स्वभाव का होना आवश्यक माना गया है। बिगड़े कार्य, बिगड़ी बात और बिगड़े बन्धु मधुर वाणी के प्रयोग से अच्छे बन जाते हैं। राष्ट्र, समाज और मानवता की उन्नति में मधुरता का होना आवश्यक बताया गया है।

विवृति– हे मातृभूमि! सभी जन ऐसी माधुर्ययुक्त वाणी बोलें जो सुख देने वाली और आनन्द को बढ़ाने वाली हो। आप सभी जन को ऐसी ऐश्वर्यपूर्ण शक्ति प्रदान करें, जो वाणी को ओजस्वी और मधुरता से पूर्ण बनाए। मनुष्य को मर्यादित जीवन जीने के लिए मर्यादित वाक् स्फुटन आवश्यक माना गया है। वाणी माधुर्य होने से जहाँ शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उद्वेगों एवं क्लेशों से बचा जा सकता है वहीं पर व्यवहार–प्रियता, सुचिता, पवित्रता और गम्भीरता एवं भावितव्यता बढ़ती हैं। परिवार और समाज में सौहार्द–पूर्ण वातावरण, समरता और सुधाचरण का भाव माधुर्यपूर्ण वाणी से सहज रूप से बन जाता है।

हे भू–माता! हममें ऐसी साधना (तप) और प्रार्थना की शक्ति प्रदान करें जो हमारी वाणी को यशस्वी और मनस्वी बनाए। वाणी का संयम, नियम और धारणा का धर्म मान्य बने। वाणी हमारी मर्यादित ऐसी हो जो एक मानक (आदर्श) लगे। हृदय, मन, चित्त और बुद्धि की मर्यादा वाणी से विभूषित हो। वाणी हमारे जीवन का भूषण बने। वाणी धर्म का पालन कर हम सभी श्रेष्ठत्व को प्राप्त करें। वाणी धर्म का पालन करके हम विश्व समाज की एक मर्यादा–युक्त, अहिंसक और सुशान्तिपूर्ण समाज बना सकते हैं। परिवार, समाज, उन अनेक बुराइयों दुर्गुणों और दुखों से बच सकता है जो वाणी के विध्वंसकारी प्रयोग के फलस्वरूप पैदा होता है। हे धरणि! हममें ऐसी अमृतमय शक्ति दें जिससे वाणी को प्रभावकारी बना सकूँ।

हे मातृभूमि! आप की वात्सल्यमयी गोद में बसने वाले चतुर्वर्ण्य अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और श्रमिक (शूद्र) और इतर जन यानी पाँच प्रकार के मानव बहुविधि से उन्नति, कल्याण और सहायता की भावना से बहुत ही मैत्री भावना से रहते हैं। उनकी यह मैत्री भावना समाज एवं राष्ट्र के लिए मंगलकारी है। राष्ट्रोन्नति के लिए यह परमावश्यक है। हे माता! समाज व राष्ट्र के लिए उन्नति, कल्याण व विकास तभी हो सकता है, जब पाँच प्रकार के इन मानवों में परस्पर मैत्री बनी रहे। एक दूसरे के प्रति सहयोग और मैत्री की सद्भावना हो। सभी एक दूसरे के सुख–दुख में काम में आते हों। दूसरे का दुख अपना दुख समझते हों। सभी के गुण–कर्म–स्वभाव में परस्पर निर्द्वंद्विता बनी रहती हो। प्रतिद्वंद्विता की भावना किसी में न हो।

यही कारण है सभी में, सभी के प्रति एक सहयोग की भावना बनी रहती है। मातृभूमि पर शान्ति, एकता, संगठन और पवित्रता की पुनीत धारा प्रवाहित होते रहने के लिए यह भावना आवश्यक है।

हे मातृभूमि! जिस प्रकार से वात्सल्यरस से पूर्ण आप की ममतामयी गोद मधु से परिपूर्ण है अर्थात् मिठास से भरी है, उसी प्रकार से पाँच तरह के मानवों की वाणी में मधु भरी हो। क्योंकि वाणी के मिठास से मैत्री की भावना ही नहीं बल्कि आपस में एक एकता, सहयोग, शान्ति और समृद्धि की धारा निरन्तर बहती है। वाणी में मधु होने से व्यवहार सदा उत्तम बना रहता है। व्यवहार उत्तम रहने से सारे कार्य सहजता से हो जाते हैं। वाणी में मधु हो तो सभी लोग एक दूसरे से बधे रहते हैं। वाणी की मिठास कार्यों की सिद्धि के लिए भी आवश्यक है। मधुर वाणी का प्रभाव इतना स्नेहपूर्ण और मैत्रीपूर्ण होता है कि सभी लोग दूसरे के प्रति खिंचे चले आते हैं। किसी कवि ने कहा है–मधुर वचन है औषधि/कटु वचन है तीर। अर्थात् जिस प्रकार से औषधि के प्रयोग से शरीर व मन स्वस्थ रहता है उसी प्रकार से वाणी–रूपी मधु (औषधि) से परिवार, समाज व राष्ट्र का तन, मन स्वस्थ रहता है। कहने का भाव यह है, वाणी हमेशा मधु बनी रहे।

हे मातृभूमि! सभी लोगों (पाँच प्रकार के मानवों) के कार्य, व्यवहार, व वाणी में मधु (मिठास) सदैव बनी रहे और परस्पर सभी कार्य सिद्धि में मधु का प्रयोग करते रहें। हे माँ! ऐसी प्रेरणा अपने पुत्रों को देती रहना। आप की कृपा के साथ आप की प्रेरणा–प्रबन्ध–व्यवस्था के रूप में भी हो कि सभी लोगों में मधुरता का भाव हर विधि से बना रहे। तभी मैत्री की धारा अंतःकरण में प्रवाहित होगी।

मातृभूमि के गान में वेद में उपदेश दिया गया है कि पाँचों प्रकार के मानवों का आपसी व्यवहार इस प्रकार का होना चाहिए कि सभी कार्य बिना विघ्न के होते जाएँ। सभी एक दूसरे के प्रतियोगी नहीं सहयोगी बनें। समाज व राष्ट्र के हित में अपना हित देखें व समझें। यह तभी संभव है, जब कार्य, व्यवहार व वाणी में मधु की धारा बहती रहे। यह परस्पर एक दूसरे से बन्धन के लिए भी आवश्यक है।

17

धर्मशासित मातृभूमि

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा।।

शब्दार्थ–(विश्वस्वम्) सब को जन्म देने वाली (मातृभूमि) (ओषधीनाम् मातरं) जीवन रक्षक माँ (ध्रुवां भूमिं) सदा धैर्य धारण करने वाली मातृभूमि (धर्मणा) अनेक मानवीय धर्मों से ओत प्रोत, नियम से व्यवस्थित (शिवाम्) सबका कल्याण चाहने वाली (स्योनां) सुख सदा देने वाली (पृथिवीं) मातृभूमि (विश्वहा) निरन्तर (अनुचरेम) हम सभी सेवा व रक्षा में सदैव तत्पर रहें।

भावार्थ– मातृभूमि की विशेषता बताने वाले इस मंत्र में मातृभूमि के विविध–रूपों का वर्णन किया गया है। सब का आश्रय–स्थल, सब का मंगल करने वाली, सब को जीवन देने वाली, हर प्रकार से क्षमाशीला, धैर्यवती, अखंड सहनशीला, प्राणी व अप्राणी जगत् की आधार और विद्वानों, ऋषि–मुनियों की तपस्थली तथा विकास की धारा की संवाहिका जैसे अनगिनत गुणों को धारण करने वाली मातृभूमि को सब के लिए, परम वन्दनीया कहा गया है।

विवृति– यह वसुन्धरा वनस्पतियों और औषधियों को जन्म देने वाली है। इस लिए यह औषधि जन्मदात्री कहलाती है। औषधियाँ प्राणी मात्र की रक्षक और पोषक होती हैं। हे मातृभूमि! आप के दिव्य धाम पर अनंत क्लेशनाशक जो औषधियाँ पैदा होती हैं ये सभी आप के कल्याणी या कल्याणदायिनी रूप की प्रतीक हैं। धर्म का महत्वपूर्ण अंग धैर्य और क्षमा की आप साक्षात् रूप हैं। तपस्विनियों के ध्रुव–धर्म की जो बात कही जाती है हे मां, आप के धर्म का ही भाग है। हे भू माता! आप के द्वारा पोषित, संरक्षित और सुव्यवहारित धर्म के कारण ही जगत् का विकास हो रहा है। हम सभी ध्रुव–धर्म के पालक, संरक्षक और व्यवहारक बनें, ऐसी भावना सतत् हम सभी में भरती रहें। जिससे धर्म पालन की शक्ति और आस्था प्रबल हो सके।

हे मातृभूमि! आप जिन धर्मों को अखण्ड रूप में धारण करतीं हैं, वे सर्व–मंगल और अमृतधारा को विश्वकल्याण के निमित्त ही हैं। विश्वजनों का कल्याण निरन्तर आप के द्वारा ही होता है। आप ही से जगत् यानी सृष्टि की निरन्तरता संभव है। जिन अखण्ड कल्याणों की बात ऋषि–मुनि करते हैं वे आप के अस्तित्व के बिना सम्भव ही नहीं हैं, इस लिए आप के द्वारा पोषित, संरक्षित और निर्मित सूरवीर, विद्वान, सत्यधर्मी और अन्नकर्मियों का परम कर्तव्य है, वे निरन्तर आप की अनुशंसा, संरक्षण व पोषण–धर्म को निभाते रहें।

हमारी भू–माता हर क्षण ध्रुव–धर्म का अखण्ड पालन करते हुए सभी प्राणियों के जीवन का हेतु है जिससे शक्ति अर्जित करके सभी जन कर्म–व्यवहार को करते रहते हैं। ऐसी मातृभूमि भला किसके लिए वंदनीय नहीं होगी।

सर्व सुख और परमानन्द की प्राप्ति के लिए योगीजन जिन साधना विभूतियों का प्रयोग करते हैं वे सभी भू माता की अनुकम्पा का प्रसाद ही तो है। धरती माँ अपने पुत्रों–पुत्रियों से अपेक्षा करती हैं कि सभी निज कर्मों में स्वतंत्रता पूर्वक विचार करते हुए विश्वकल्याण की भावना का स्फुटन करें। जिस तरह से भू माता बिना किसी अपेक्षा व भेदभाव के सबको विकास, वीरता, विद्वान, योद्धा और ऋषि बनने का अवसर प्रदान करतीं हैं, उसी तरह हम सभी श्रेष्ठ–जनों का कर्तव्य है विश्व कल्याण को ध्यान में रखते हुए, निज उन्नति करके जीवन को सार्थक बनाएँ। मनुष्य जीवन की सार्थकता तभी है जब भू माता के पोषण, संरक्षण और विकास हमारा लक्ष्य हो। मातृभूमि का जितना विकास होगा उतना ही धरती पर सुख का विस्तार होगा। सब सुखी हों, सब निरोग हों, ज्ञानी हों और सभी सद्कर्म करने वाले हों – ऐसा प्रयास हम सभी को करते रहना चाहिए। केवल कुछ लोग या कुछ लाख व्यक्तियों के सुखी हो जाने से भू माता को संतुष्टि कदापि नहीं हो सकती है। इस लिए हम सभी को आपसी द्वेष, ईर्ष्या, दुराग्रह, स्वार्थ, वाद–विवाद से ऊपर उठकर भू के सभी जनों के सुखी जीवन के लिए प्रयास करना चाहिए।

हम सभी जनों को भू माता ऐसी शक्ति दें जिससे हम सभी जन परोपकार, सेवा और सद्कर्म की तरफ प्रेरित होकर आगे बढ़ते जाएँ। अपना हित भू माता का हित समझें।

हे मातृभूमि! आप 'विश्वसू' कहलाती हैं। क्योंकि आप से ही पोषण व संरक्षण पाकर वनस्पतियाँ, औषधियाँ, फल, अन्न व रत्न पैदा होते हैं। आप कभी अपने इस स्वभाव से अडिग नहीं होतीं, इस लिए ध्रुवा कही जाती हो। माँ, आप में इतनी शक्ति, धैर्य और प्रबलता है कि कोई भी शत्रु आक्रमण करके जीत नहीं सकता है। जो भी आक्रमण करता है उसे मुँह की खानी पड़ती है। हे माँ, आप सब का आश्रय–स्थल हैं। जाना–पहचाना या अनजाना हर कोई आप से आश्रय प्राप्त करता है। आप धर्म से पूर्णतः शासित हैं। आप पर निवास करने वाले सभी जन– धर्म से शासित रहें। इससे सभी कार्य धर्मानुसार सम्पन्न होते हैं। धर्म को मानने वाले लोग अहिंसा, सत्य, प्रेम, दया, करुणा, न्याय, संयम और पवित्रता से परिपूर्ण होते हैं। मातृभूमि पर बसने वाले सभी लोग ऐसे ही धर्म के स्वीकार–कर्ता हैं। मातृभूमि पर व्यवस्था अर्थात् प्रबन्ध करने वाले राज–प्रबन्धक भी धर्मशसित हैं। राज्याधिकारी सारी व्यवस्थायें व कार्य, धर्म के शासन में रहकर ही शासन करते हैं। वे धर्म के शासन व प्रबन्ध को जानने वाले

हैं। उनसे शासित सारी प्रजा सुखी व समृद्धशाली जीवन व्यतीत करती है। मातृभूमि पर शासन करने वाले शासक स्वार्थ, भेदभाव और अन्य संकीर्णताओं से दूर हैं। वे प्रजा का पालन वैसे करते हैं, जैसे माता–पिता अपने सन्तान का करते हैं।

हे माँ! धर्म से शासित शासन, प्रशासन और प्रजा आप की कृपा प्राप्त करके सर्वदा सुखी और समृद्धशाली बने रहे। आप सब का कल्याण करने वाली हैं। इस लिए आप 'श्योना' हैं। आप धर्म से रक्षित व शासित हैं। इस लिए 'शिवा' हैं। सब का कल्याण, उन्नति और विकास ही आप का स्वभाव है। आप सब को सुख देने वाली हैं। आप पर विचरने वाले लोग आप की रक्षा करने के लिए तत्पर रहते हैं। वे इसके लिए कष्ट भी सहते हैं लेकिन इस कष्ट को कभी ध्यान में नहीं लाते हैं।

हे मातृभूमि! हम सभी जन आप की रक्षा धर्म के शासन से अनुशासित हों– सदैव करते रहें। ऐसी प्रेरणा हम सभी को दीजिए। जिससे सुख व आनन्द का साम्राज्य स्थापित हो।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद में मानव को प्रेरणा दी गई है कि हमारी मातृभूमि पर अनेक प्रकार की उपयोगी औषधियाँ, वनस्पतियाँ, अन्न, फल व अन्य अनेक प्रकार की वस्तुयें उत्पन्न होती हैं। भूमिमाता सभी प्रकार की वस्तुओं व मनुष्य की विभिन्न क्रियाओं को बहुत धैर्य से सहन करती हैं।

18

मातृभूमि के ऐश्वर्यशाली जन

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्य प्रमादम्।
सा नो भूमे प्ररोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन।।

शब्दार्थ– (महत ्सधस्थं) एकत्व भाव से मिलकर रहें (महतीबभूविथ) निरन्तर विस्तार लेती रही हो (ते) आपका (एजथुः) स्पन्दन के द्वारा (वेपथुः) निरन्तर कम्पायमान (महान् वेगः) तीव्र गति से (इन्द्रः) जो स्वामी है (अप्रमादम्) बिना रुके हुए निरन्तर (त्वाम्) तुमको (भूमे) हे भू माता! (सा) वह (हिरण्यस्य इव) प्रकाशमान चमचमाता हुआ (संदृशि) देखकर (प्ररोचय)

आभामण्डल से युक्त (कश्चन) हम सभी में से (मा द्विक्षत) किसी तरह से अलग न हों– द्वेष भाव से रहित हों।

भावार्थ– मातृभूमि की महानता और सत्यता बताने वाले इस मंत्र में मातृभूमि की श्रेष्ठता और तेजस्विता को बताते हुए प्रजा–जनों को मातृभूमि की हर प्रकार से रक्षा, पोषण और संरक्षण करते हुए प्रत्येक मातृभूमिवासी को प्रगतिगामी और विकासोन्मुख होने की प्रेरणा दी गई है। धरती पर निवास करने वाले प्रजा–जनों का जिस प्रकार के कार्य, चरित्र और जीवन दर्शन होता है मातृभूमि भी उसी प्रकार की बनती जाती है। इस लिए श्रेष्ठत्व को अपनाने और निम्नत्व को त्यागने के लिए सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

विवृति– हे मातृभूमि! आप हम मनुष्यों को एकत्व के लिए स्थान प्रदान करती हो। हमारी एकता और संगठन–शक्ति सतत् और भी मजबूत होती जाए जिससे हम सभी आपस में यथायोग्य संवाद और व्यवहार कर सकें। आप की महानता का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता है। आप की गति, कम्पन एंव स्पन्दन इस तरह से निरन्तर चलता रहता है जो प्राणी मात्र के लिए सुखद और आह्लादकारी होता है। हे भू–माता! आप का प्रखण्ड वेग शत्रुओं के लिए विनाशकारी (जो पृथ्वी के पर्यावरण को नुकसान पहुँचाते हैं) हो। आप हम सभी को आपस में एकत्व के लिए प्रेरित करती रहें जिससे हम सभी निरन्तर आप की रक्षा एंव संरक्षण करने में सामर्थ्यवान बन सकें।

यह एकल ब्रह्माण्ड परमात्म महाशक्ति इन्द्र से प्रकम्पित और स्पन्दनशील है। इन्द्रदेव हम सभी को अतुलित शक्ति प्रदान करें। इस महाशक्ति से ओत प्रोत होकर हम सभी श्रेष्ठजन (श्रेष्ठ पुरुष–विकास प्रिय लोग) आप की हर तरह से रक्षा कर सकें। मातृभूमि पर चारों तरफ स्वर्ग का वातावरण बनें, इसके लिए आवश्यक है, हम सभी भू–माता की रक्षा, सेवा और पोषण के लिए हर पल तैयार रहें। वैदिक चिन्तन में पूरी वसुधा पर निवास करने वालों को एक कुटुम्ब का सदस्य माना गया है। परिवार में हर सदस्य जिस तरह से एक दूसरे के प्रति मैत्री भाव से युक्त, कर्तव्यनिष्ठ और संवेदनशील होता है वही भाव वसुधैव कुटुम्बकम् के सदस्यों में भी आना चाहिए।

सत्यनिष्ठ, प्रेमी, विनम्र, करुणाशील अहिंसक और चिन्तनशील जन धरती माता की सच्ची सेवा और सुरक्षा कर सकते हैं। धरती से अन्यायियों, हिंसकों, शोषकों और दुर्गुणियों को परास्त करने के लिए श्रेष्ठ–जनों का जीवन प्रेरक और विद्यावान होना चाहिए। हम सभी की कोशिश ऐसी होनी चाहिए कि जीवन को उत्तरोत्तर विकास के मार्ग पर बढ़ाने के लिए सुविज्ञवान बनें।

हे मातृभूमि! आप का तेज प्रकाश सभी जनों के लिए अत्यन्त सुखदायी है। जिस तरह से आपका तेज असंख्य जीवों को जीवन दे रहा है उसी तरह से हममें भी तेजस निरन्तर बढ़ता रहे। हममें ऐसा तेज भर दो कि अन्तस में छाए तिमिर (वासनाओं और बुराइयों) को नष्ट कर दें। हममें अतीव शक्ति भर दें माँ।

हे मातृभूमि! आप हर प्रकार से महान् व ऐश्वर्यशालीनी हैं। आप की महानता के कारण धरती पर बसने (बिचरने) वाले सभी मानव क्रियाशील हैं। आप सभी मानवों को ऐश्वर्यशाली होने के लिए प्रेरणा देती हैं। सभी पवित्र, सद्‌गुणी, स्वास्थ्य–युक्त, ज्ञानयुक्त, धन–वैभव से युक्त और ज्ञान–विज्ञान को धारण करने वाले हैं। हे माँ! एक महान् माँ जैसी हैं आप। उसी प्रकार के आप के पुत्र–पुत्रियाँ भी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जब मातृभूमि के निवासी महान् होते हैं तब मातृभूमि भी महान् कहाती है।

हे मातृभूमि! आप सभी प्राणियों की सर्वश्रेष्ठ आधार हैं। हम मानवों के निमित्त आप ही हम सब के लिए उपयोगी वस्तुयें हैं। हे माँ! हम सभी, आप की वात्सल्यमयी भू–भाग में रहते हुए परस्पर मैत्री की भावना से रहते हैं। मानव समाज की उन्नति, कल्याण व विकास तभी होता है, जब सभी नर–नारियों में आपसी–प्रेम के साथ एकत्व की भावना हो। आपस में सद्भावना जितनी ही पवित्र व संकल्पयुक्त होती है उतना ही मानव समाज उत्तम बनता है। और जहाँ के निवासी पुरुषार्थी और संकल्पवान होते हैं वहाँ वह भू–भाग भी महान् हो जाता है। इस कारण हे माता, आप महान् हैं।

हे माता! आप का वेग अर्थात् चलना भी सभी प्राणियों के लिए अच्छा है। आप की गति से ही दिन–रात का चक्र चलता रहता है। इस प्रकार आप 'सधस्थ' हैं। मानवों के द्वारा श्रेष्ठ गति–विधियों के कारण आप भी श्रेष्ठ बन गई हो। ऐसी कौन–सी क्रिया है जो प्रगतिशील न हो। कहने का तात्पर्य यह है, मातृभूमि के वासियों के कर्म जितने उत्तम कोटि के होंगे मातृभूमि भी उसी कोटि की होगी। मानव (समाज) जितना उदार, गुणवान, आदर्शवान, मर्यादावान, नीतिवान, ज्ञानवान् और निरामय होगा मातृभूमि भी वैसी ही होगी। हे माँ! सभी भूमि–पुत्र–पुत्रियाँ शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान, विद्यावान और धनवान हैं। सभी शत्रुओं को परास्त करने में सक्षम हैं। इस लिए कोई भी शत्रु आप पर कुदृष्टि डालने के लिए हिम्मत नहीं जुटा पाता है।

हे माँ! राष्ट्र का शासक इन्द्रादि आप की रक्षा करने वाले हैं। मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी भद्रजन आप के रक्षक हैं। तुम्हारी रक्षा करना शासक, प्रशासक का ही नहीं बल्कि हम प्रजा–जनों का प्रथम कर्तव्य है। इस लिए इसमें किसी प्रकार का प्रमाद नहीं आने देते हैं।

जागरूक और सतर्क रहकर ही तुम्हारी रक्षा करते हैं। इन्द्र उसके राज्याधिकारी और प्रजाजन सभी द्वारा रक्षित हे माँ, तुम्हारी उन्नति अर्थात् ऊँचे उठने की गति इससे तीव्र हो जाती है। तुम महानता की ओर अग्रसित होने लगती हो। इससे तुम्हारी हर क्रियायें संतुलित और श्रेष्ठ बन जाती हैं। आप के इस प्रमाण का कोई विरोधी शक्ति रोकने का साहस नहीं कर पाई है।

हे भूमिमाता! शासक, प्रशासक (राज्याधिकारी) और प्रजा–जन से सर्वदा रक्षित आप की रक्षा इस ब्रह्माण्ड का शासक इन्द्र आप की रक्षा करके आप को निर्भय बना देता है। हम सभी लोग, उस सर्वेश (इन्द्र) की सदैव स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करने वाले हैं। हम उसके अन्नत गुणों को धारण करने वाले हैं। इसका ध्यान व चिन्तन हम लोगों को नित्य–क्रिया में सम्मिलित है। हे माँ! व्यक्ति जिस वस्तु या विषय का ध्यान व चिन्तन करता है उसके गुण उसमें उसी रूप में प्रवेश करने लगते हैं। इस प्रकार हम सभी में भी इन्द्रत्व या देवत्व के गुण आने लगते हैं। अब हम सब देवत्व के गुणों से परिपूर्ण होकर तुम्हारी सर्वदा रक्षा करने वाले बन गए हैं। इससे आप और भी महिमावती बन गई हैं। मातृभूमि की महानता, उस पर बसने वाले लोगों के कार्यों, चरित्र ओौर गुणों पर आधारित होती है। इस लिए हे माँ! हम लोगों के साथ आप भी प्रगतिगामी बन गई हैं।

हे भू–माता! आप अपनी तेजस्विता से हम सभी को भी तेजस्वी बना दे। जिस प्रकार से सुवर्ण (स्वर्ण) आदि रत्न अपने चमक से सबके आकर्षण का कारण बन जाता है उसी प्रकार हे माँ, हमें स्वर्ण जैसा कान्तिमय व हिरण्यमय बना दीजिए। जिस प्रकार से स्वर्ण अग्नि में तपकर कुन्दन बन जाता है उसी प्रकार से हम सभी भी श्रम की भट्ठी में तपकर कुन्दन बन जाएँ। स्वर्ण जैसा कान्तिमय व तेजस्वी हो जाने पर कोई भी हम सभी से द्वेष करके पराधीन नहीं कर सकेगा। कान्तिमय बनने पर हम भी किसी से द्वेष नहीं करेंगे। हे माता, ऐसे सद्‌गुणों से हम सभी को परिपूर्ण बना दें कि जैसे मधु मिठास से परिपूर्ण होती है। हम शत्रु रहित बने रहें। हमारे कार्य, व्यवहार व स्वभाव में कभी भी दुर्भाग्य न आये और दूसरों के कार्यों, स्वभाव व व्यवहार में भी दुर्भावना न आये। हमारे अन्दर हर प्रकार का ऐश्वर्य इतना भर दें कि कोई भी शत्रु हमारी तरफ आँख उठाकर न देख सके।

भूमिमाता के वेदमय स्तुतिगान में यह उपदेश दिया गया है कि मातृभूमि की महानता को बढ़ाने के लिए मातृभूमि के निवासियों को सद्‌गुणों से परिपूर्ण होकर श्रेष्ठ बनना चाहिए। ऐसे राजा का ही चयन करना चाहिए जो दिव्यगुणों से परिपूर्ण हो। जो परमात्मा का उपासक हो। जो मातृभूमि की रक्षा करना अपना प्रथम कर्तव्य मानता हो। जो प्रजा–जनों को हर प्रकार से सुखी देखना चाहता हो। जिसमें तेजस्विता ऐसी हो कि शत्रु आक्रमण करने का साहस भी न कर सके।

19

मातृभूमि के तेजस्वी प्रजाजन

अग्निर्भूम्यामोष धीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः।।

शब्दार्थ– (अग्निः भूम्याम्) अग्नि जैसे तेजोमय धरणि (ओषधीषु) जो औषधियों में है (अग्निः) वही अग्नि (आपो विभ्रन्ति) जल में विचरण करती है, वही विद्युत रूप में परिवर्तित हो जाती है (अश्मसु) पत्थरों में चिनगारी रूप में वही निकलती है (पुरुषेषु) मननशील जन (अंतः अग्निः) जो अन्ततर में व्याप्त है, जठराग्नि–जिससे भूख निखरती है (गोषु) चौपाएँ पशुओं में (अश्वेषु) शक्तिशाली पशुओं में (अपि) और भी (अग्नियः) दूसरी अनेक प्रकार की अग्नियाँ हैं।

भावार्थ– अग्नि मानव सभ्यता का आधार है। ज्ञान–विज्ञान, दर्शन, साहित्य और धार्मिक ग्रंथों में अग्नि के विविध–रूपों का वर्णन मिलता है। मंत्र में अग्नि की विशेषता, इसकी व्यापकता और कार्य का रहस्यमय वर्णन किया गया है। शक्ति, ज्ञान और विज्ञान के सभी रूपों में अग्नि की व्यापकता है। इस लिए सृष्टि को अग्नि में ही छिपा माना जाता है। मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष बिना अग्नि के अधूरा है। मंत्र में प्रार्थना की गई है कि सभी मातृभूमि वासी अग्नि से दीप्तवान बनकर मातृभूमि के विकास में अपना अवदान समर्पित करते रहें।

विवृति– भू–माता अग्नि के समान हैं। वह अग्नि औषधियों और जल में भी दीप्तमान है, उस अग्नि से विद्युत का स्फुरण होता है। वहीं अग्नि पर्वत, पत्थर और कण–कण में व्याप्त हैं। धरती का कण–कण उस अग्नि से तेजोमय है जो अग्नि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संचालन करती है उस अग्नि के हम भक्त बनें। मनुष्य धरती के जितने भी पदार्थों का उपभोग करता है सब में–अग्नि का स्पन्दन सृष्टिकाल से अहिर्निश होता आ रहा है।

हे मातृभूमि! आप का तेजोमय–रूप सभी प्राणियों, अप्राणियों, जल, जंगम, चार पैर वाले गौ वंशादि पशुओं, शक्ति के प्रतीक अश्वों और दूसरे सभी जीवों में समान रूप से व्याप्त है। अग्नि से यह सकल विश्व चलायमान है। भू माता का तेजोमय–रूप की हम सभी वन्दना करें और यह संकल्प करें कि जिस तरह से धरती माँ हमारी हर तरह से पोषण व संरक्षण करतीं है उसी के अनुरूप हम सभी तेज धारण कर भू–माता के संरक्षण, सुरक्षा और विकास के लिए कार्य करें। हम ऐसे वीर्यवान एवं अग्नि–रूप का संवर्द्धन करें जो सकल विश्व समाज के लिए मंगलकारी हो।

हे भूमिमाता! अग्नि को धारण करके हम राष्ट्रवासी अग्निमय बनें। हम ही क्यों पशु, पक्षी और कण–कण में वही अग्नि ही व्याप्त है। उस अग्नि के कारण हममें अतुलित शक्ति भरी हुई है। अग्नि के कारण हम वीर्यवान और तेजोमय हुए हैं। इससे कोई विरोधी–शक्ति, कोई शत्रु आप पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं कर सकता है। आप का पराभव या अपमान भी कोई नहीं कर सकता है। यदि कोई इस प्रकार की कुदृष्टि करे जिससे आप का अपमान होता हो, आप उसको अपनी अग्नि से जला देना।

हे माता! अग्नि के दीप्त होने से हम कई प्रकार की शक्तियों से भर गए हैं। हमारे अन्दर अग्नि का तेज व ऊर्जा भर चुकी है। क्योंकि विरोधी–शक्ति, अब हमें जीत नहीं सकती है। हे माँ! आप की हर प्रकार से रक्षा करने में हम सभी सक्षम हैं। अग्नि के कारण ही हम सभी प्रगति, विकास व कल्याण के पथ पर अग्रसित हो रहे हैं। हम सभी में एक अन्य अग्नि भी है। वह है–सर्वक्षेत्र में अहिर्निश आगे बढ़ने की उत्कट भावना। इस अग्नि के कारण हम शरीर से ही नहीं बल्कि मन, आत्मा और बुद्धि से भी प्रबल बन चुके हैं। हे माँ! आप की ऐसी कृपा बनी रहे कि जिससे यह अग्नि हमारे अन्दर सतत् बनी रहे।

वैदिक एवं आधुनिक अन्वेषण से यह ज्ञात होता है हर पदार्थ, वस्तु और जीवन में एक गति है। इलेक्ट्रान, प्रोट्रान और न्युट्रान कण की नाभि (केन्द्र) के चारों ओर एक समान कक्षा में समान रूप से गति करते रहते है। इन कणों (परमाणुओं – इलेक्ट्रान, प्रोट्रान और न्युट्रान) एवं नाभि में जो व्यवस्था व गति है, वह सब अग्नि (ऊर्जा) के कारण होती है। सृष्टि का विकास, परिवर्धन और पोषण का करण भी अग्नि (ऊर्जा) ही है। जितने भी रूप में पदार्थों एवं वस्तुओं का विकास और पतन होता है उसका कारण भी अग्नि ही है। औषधि, वनस्पति, जल, बादल, पत्थर, मनुष्य, गाय, घोड़े से लेकर जितने भी जीव–जन्तु (जड़–जंगम) हैं, सब में अग्नि का समावेश है। मनुष्य वीर्य–रूपी अग्नि की रक्षाकर शरीर को पुष्ट करने वाले बनें। जिससे धरती पर व्याप्त मनुष्येतर बुराइयों, दोष और दुर्व्यवहार मिट जाए। हमारा संकल्प प्रबल हो। हम निरर्थक सृष्टि के व्यवहारक किसी पशु, पक्षी, कीट–पतंगे की हत्या न करें। क्योंकि यह अग्नि विनाश का जघन्य पाप एवं अपराध है। हम अपराधी नहीं बल्कि जीवन नियामक बनें। अग्नि विनाशक नहीं, अग्नि संरक्षक बनें। जिस अग्नि से मानव सभ्यता का विकास हुआ, उस अग्नि के रूप को हम वन्दना करने वाले हों। सद्‌विचार यह कहता है हमारे कर्म, विचार, जीवन, व्यवहार और विधि में अग्नि के कई रूप दिखाई पड़े। तात्पर्य यह है, जैसे अग्नि का तेजोमय रूप सभी को आकर्षित करता है उसी तरह हमारे कर्म, गुण, स्वभाव, विचार, जीवन और व्यवहार भी समाज को आकर्षित करने वाले बनें। जिससे विश्व का कल्याण हो सके।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद का यह उपदेश वरणीय और चिन्तनीय है। इसमें कहा गया है कि स्वाधीन बनकर सम्मानपूर्वक और प्रगति के पथ पर चलते हुए जीवन व्यतीत करने का संकल्प तभी दृढ़ रहेगा, जब हम शुभदायिनी, शुभकारणी और पवित्रकारणी बलदायिनी अग्नि को हम धारण करेंगे। लेकिन, यह तभी संभव होगा, जब राष्ट्र भी स्वाधीन रहेगा और राष्ट्र की सभी व्यवस्थाएँ राष्ट्रवासियों के लिए अनुकूल होंगी। हममें ऐसा शुभसंकल्प हो, जो मातृभूमि की रक्षा, विकास के साथ स्वयं के लिए कल्याणकारी हो।

20

भूमि व आकाश अग्नि से आच्छादित

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम्।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्।।

शब्दार्थ– (अग्निः) सृष्टि का कारण रूप (दिवः) द्युलोक में, मातृभूमि पर (आतपति) जो निरन्तर अनादि काल से प्रचण्ड अग्नि प्रदान कर रहा है (देवस्य) उस प्रकाशवान देव को (अग्नेः) जो दीप्तमान है (उरु) विशालता को समाहित किए हुए (अन्तरिक्षम्) अग्निलोक का वह स्वरूप जो स्वतः प्रकाशित है (हव्यवाहम्) हवि को निरन्तर विस्तार देने वाली (घृतप्रियम्) घृत जिनको प्रिय है (अग्निः) अग्नि को (मर्तासः) मनन पूर्वक विचरण करने वाले (इन्धते) दीप्तमान करते रहें।

भावार्थ– अग्नि के दिव्य स्रोत सूर्य से सारा जगत् प्राण–शक्ति प्राप्त करता है। जिसकी प्राण–शक्ति जितनी प्रबल होगी वह उतना ही क्रियाशील और प्रगतिगामी होता है। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति का कारण भी संकल्प–रूपी अग्नि ही है। मंत्र में अग्नि के रहस्य को जानकर प्रजा–जनों को मातृभूमि के लिए विविध प्रकार की अग्नियों का प्रयोग करने की प्रेरणा दी गई है। हम सभी अग्नि के सतत् वाहक बनें और जीवनी–शक्ति को निरन्तर बढ़ाते हुए उत्कृष्ट कार्यों को मातृभूमि हेतु करने के लिए संकल्पबद्ध हो जाएँ।

विवृति– भू–माता के सबसे उर्ध्वभाग में जो प्रचण्ड अग्नि जाज्वल्यमान् है, वह ब्रह्माण्ड के जीवन और विकास का कारण है। उस अग्नि को प्रचण्ड तेज कहा जाता है। सांसारिक भाषा में वह भगवान भास्कर या सूर्यदेव का संबोधन दिया जाता है। उसी को अंशुमान, अंशुमाली,

देवाग्नि, देवेश और दिनकर कह कर भी पुकारा जाता है। उसके ही परम आलोक (अग्नि) से चन्द्रलोक, ग्रह,, नक्षत्र और धरती माँ को प्रकाश और प्राण–शक्ति (अग्नि) मिलती है। अगति होते हुए भी उस दिव्य अग्नि सूर्य देव से धरती, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्रों, प्राणियों, जल, समुद्र, और दूसरे पदार्थों में गति पैदा होती है। जिस गति से मनुष्य की गति निरन्तर आगे बढ़ती जा रही है उस गति से हम सभी सुख अर्जित करें।

मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी नर–नारियों में एक अग्नि जो सबसे प्रबल रूप में दीप्त है, ,वह 'हव्यवाह' है। जो इस अग्नि का सेवन करता है, वह हर तरह से पुष्ट होता रहता है। जो इस अग्नि से भरा हुआ है उसकी जठराग्नि हमेशा प्रदीप्त रहती है और उसके खाये हुए सभी पौष्टिक भोज्य पदार्थ– उसको पुष्ट करते हैं। यह अग्नि घी आदि पदार्थों को भी प्रिय है। इस लिए पंच गव्य को वह बहुत पसन्द करता है। हम मातृभूमि के रक्षा करने वाले लोग उस अग्नि को कभी बुझने नहीं देते हैं। उस अग्नि के कारण भी खाए हुए सभी भोज्य पदार्थ अच्छी प्रकार से पच जाते हैं। इससे हम सब को प्रबल शक्ति प्राप्त होती है। हममें एक उत्साह, कांति और नई स्फूर्ति पैदा होती है। इस लिए धरती पर बसने वाले सभी लोगों को घृतादि पदार्थों का समुचित रूप में सेवन करके शक्ति, उत्साह, कांति और दृढ़ता बढ़ानी चाहिए।

हे मातृभूमि! आप और आप की वात्सल्यमयी गोद में पलने वाले सभी लोगों में अग्नि–ही–अग्नि व्याप्त हो रही है। इस अग्नि के कारण हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे और आप की रक्षा भी करते रहेंगे।

सविता देव की प्रचण्ड अग्नि से ही सृष्टि में द्रव्य का सृजन हुआ। इस लिए हर कण में अग्नि का समावेश है। हर कण जिस अग्नि के कारण गतिमान है उस अग्नि की हम श्रद्धाग्नि से हवि समर्पण करते हैं। सकल ब्रह्माण्ड के प्रकाश का स्वामी दिवाकर देव ही हैं। मृत्युलोक की सभी गतिविधियों को चलायमान करने की शक्ति तिमिरारि में ही है। इसलिए वह हम सभी के लिए परम वन्दनीय और प्रेरणीय है। हम सभी अन्तरतर के गहन अंधकार का समन करने के लिए अंतःकरण में अनन्त अग्नि का दीपन करें। इससे ही विश्वसमाज में निरन्तर सुख, सद्गुण और ऐश्वर्य का आलोक स्थिर रह सकेगा। सूर्यदेव हमें हर क्षण प्रेरित करते हुए निरन्तर शक्तिमान होने के लिए अंतःप्रज्ञा प्रदान कर रहें हैं।

मातृभूमि पर विचरने वाले जितने भी प्राणी–समूह हैं सभी अन्तरिक्ष–अग्नि से निरन्तर प्राण–शक्ति अर्जित करते हैं। इस अतुलित शक्ति से निज का ही नहीं समाज का भी बहुत

हित कर सकते हैं। हमारा हित इसी में है कि हम भानुदेव की अग्नि का अधिक से अधिक उपयोग करके सुखी हों और विश्वसमाज को सुखी करें। जिस तरह से देवेश देव अपनी प्रचण्ड दीपन से विश्व का रात–दिन कल्याण करते रहते हैं उनका यह हवन अर्थात परोपकार विश्वहित में सतत् विभूषित होता रहता है, उसी तरह हम सभी अंतःकरण में परमात्म–अग्नि का दीपन करके परोपकार अर्थात हवन करने में जुट जाएँ। इस याग से अंतःकरण का पर्यावरण भी निरन्तर विशुद्ध होता जाता है और दुर्गुणों का सद्गुणों में परिवर्तन हो जाता है। हम निरन्तर ऐसे कर्म करें जो सत्य–रूपी धृत से लगातार प्रज्वलित होता रहे। उस महाग्नि को धृत अर्थात आत्मा से अतिशय प्रेम है। आत्मा अर्थात प्राणी का निजपन। यह निजपन का अस्तित्व बिना प्रकाश के सम्भव ही नहीं है। आत्मा परमात्माग्नि का रूप है। आइए, हम सभी मातृभूमि की रक्षा, पोषण एंव संरक्षण के लिए अंतःकरण में परमात्मग्नि का दीपन करें।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद का उपदेश अत्यन्त चिन्तनीय एवं संग्रहणीय है। मातृभूमि की स्वाधीनता, सम्मान और आदर को बनाए रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्दर अग्नि को प्रदीप्त किये रहना चाहिए। इससे ही तेजस्विता प्राप्त होती है। प्रत्येक नर–नारी को पौष्टिक दुग्धादि पदार्थों का प्रचुर मात्रा में सेवन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उत्तम स्वास्थ्य को दृष्टगत रखते हुए खुले आकाश के नीचे भ्रमण करना चाहिए और आसानादि को भी करते रहना चाहिए। उत्तम स्वास्थ्य के लिए लाभकारी पुष्टवर्धक भोज्य पदार्थों के साथ–साथ सूर्य का प्रकाश भी बहुत आवश्यक है। इस प्रकार से शरीर, बुद्धि व मन को बलवती व संकल्पशाली बनाकर, हम सभी अपनी मातृभूमि की रक्षा करने में सामर्थ्यवान् व संकल्पवान् हों।

21

अग्नि–रूपी वस्त्र धारण करने वाली मातृभूमि

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु।

शब्दार्थ– (अग्निवासाः) अग्नि से संतृत्त (असितज्ञूः) अंधकार को जो समूल नष्ट करने में सामर्थ्य रखती है या अंधकार से छुटकारा दिलाने वाली (पृथिवी असि) मातृभूमि (मा) मुझ सबको (संशितम्) तेजधार वाली (त्विषीमन्तं) अहिर्निश दीप्तमान होने वाली (कृणोतु) आगे बढ़ती जाए।

भावार्थ– सूक्त के इस मंत्र में मातृभूमि के विविध नाम–रूपों, व्यवहारों और स्वभाव का वर्णन किया गया है। प्रत्येक मातृभूमि को स्वतंत्र, समृद्धि और सुखकारी चाहने वाले राष्ट्रवासी प्रजा–जनों को अपने अतःकरण में ऐसी अग्नि का उद्दीपन अनवरत करते रहना चाहिए, जो सच्चे अर्थों में मातृभूमि और राष्ट्र से प्रेम करते हैं और मातृभूमि और राष्ट्ररक्षा हेतु सदैव तैयार रहते हैं। जिस अग्नि के सम्बन्ध में मंत्र में बताया गया है वह अग्नि जीवनशक्ति की है। यह जीवनी–शक्ति परमात्मा की कृपा से योगसाधना द्वारा निरन्तर बढ़ती रहती है। इस लिए प्रत्येक प्रजाजन को इस ओर सचेत रहने की प्रेरणा दी गई है कि कहीं जीवनी–शक्ति कम न हो जाए या बुझ न जाए और जीवन के शुभ संकल्प मातृभूमि और राष्ट्र सेवा का व्रत अधूरा रह जाए।

विवृति– मातृभूमि के अखण्ड विस्तार के चारों ओर अग्नि व्याप्त है। जो अग्नि भू माता को प्रिय है वही अग्नि उसके चारों ओर व्याप्त हो दीपन की ओर अधिक स्फुरित करती रहती है। अर्थात् पृथ्वी ही नहीं ब्रह्माण्ड में एक तिल की भी ऐसी स्थिति (स्थान) नहीं है जहाँ अग्नि व्याप्त न हो। (इस लिए अग्नि सनातन काल से पूज्या रही है) परमात्मा को वेदों में परम–अग्नि कहा गया है। वह कण–कण में व्याप्त है। हमारा जीवन भी अग्नि स्वरूप बने इस लिए परमात्मग्नि को अंतःकरण में जलाना आवश्यक है।

हे मातृभूमि! आप अग्नि–स्वरूपा हैं। इस लिए **अग्निवासा** हैं। अग्नि के वस्त्रों से भूषित होने के कारण आप प्रतापी हो गई हैं। तुम्हारी इस दिव्यता और महानता के क्या कहने। आप अग्नि से ऐसी व्याप्त हो गई हैं कि तेजोमय–रूप में द्रष्टव्य होती हैं। अग्नि–व्याप्त तेजस्विता के कारण हे माँ! आप 'असिवज्ञ' बन गई हैं। इससे आप की वात्सल्यमयी गोद में बसने वाले सभी प्रजाजन बन्धन रहित स्वयं को अनुभव करते हैं। बन्धन से युक्त होकर कोई भी समाज और राष्ट्र स्वाधीनता का सुख नहीं ले सकता है। आप के बंधनरहित होने के कारण कोई हम सब को अब बंधन में भला कैसे डाल सकता है। भूमिमाता के तेजस्वी होने के कारण हम पूर्णतः स्वतंत्र हैं। हमारा चिन्तन और कार्य भी इसी स्वतंत्रता के भाव से पूरित हैं। हम पूर्णतः अभय होकर जीवन व्यतीत करते हैं। स्वतंत्रता का यह भाव भूमिमाता के तेजस्वी होने के कारण– हम सभी तेज को धारण करते हैं।

हे भू माता ! आप का अत्यन्त तेजोमय रूप अत्यधिक गहरा होने के कारण काला दिखता है। हमारा बल, पराक्रम, ज्ञान और विज्ञान आप के इस गहरे स्वरूप से निरन्तर समृद्ध होता रहे ऐसी कामना हम सबकी है।

मातृभूमि में तेज ही सर्वत्र नहीं व्याप्त है बल्कि चेतना से भी गर्वित है। यह चेतना जितनी आदर्श रूप में सब में व्याप्त होती जायेगी धरती पर स्वर्गिक वातावरण उसी स्तर पर बनता जाएगा। मनुष्य में चेतना का विकास जैसे–जैसे होता जाएगा, दुर्वृत्तियाँ, ऐषणाएँ और वासनाएँ विगलित न होकर सुमंगलित होती जाएँगी। इस लिए हम सभी निरन्तर मातृभूमि से जुड़ते जाएँ। इसी में सभी का कल्याण है।

मातृभूमि में जो सामर्थ्य, सद्गुण, धर्म और दीप्ति है, वह हम सभी श्रेष्ठ–जनों को सर्वकल्याण निमित्त सतत् प्रेरित करती रहे। जैसी दीप्ति (धारदार) भू माता में परिव्याप्त है वैसी किसी भी प्राणी या अप्राणी वस्तु में नहीं है। इसलिए, हम सभी अभिज्ञा करें कि भू माता हमारे रोम–रोम में विश्व कल्याण की भावना समग्रता के साथ भर दें। हमारे रोम–रोम में मातृवन्दना का उद्वेग स्फुरित होता जाए। प्रत्येक मनुष्य मातृभूमि को ही सर्वस्व न्यौछावर करने की भावना से ओत प्रोत हो जाए। जिससे मातृभूमि के महान् यज्ञ में सभी जनों की बराबर की और सामर्थ्य के अनुसार भागीदारी हो। जिस तरह से यज्ञ अग्निहोत्र करने से पर्यावरण, जीवन और धर्म की वृद्धि होती है उसी तरह से मातृभूमि के निमित्त कर्म करने से सर्व कल्याण की भावना का विस्तार होता है। सुख, शान्ति, सुचिता और सुउन्नति (ऐश्वर्य) का विस्तार हो– ऐसी कृपा भू–माता हम सभी पर करें।

अयज्ञिय की भावना से अपना अहित हर तरह से होता ही है, समाज और विचार शक्ति भी दूषित होते हैं। इस लिए हम सभी को चाहिए कि भू–माता, हमारे कर्मों, यज्ञों, विचारों और व्यवहारों में संचेतना, चिन्तन और प्रज्ञा का समावेश कराए। आइए, हम सभी मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सबके दुखों और सुखों में– शान्ति और साधना में सम्मिलित हो जाएँ।

त्विषीमान् मातृभूमि! हम सभी में तेजस्विता सतत् बढ़ाती रहना। हममें संसित भाव अर्थात् पैनापन बनाती रहना। क्योंकि इससे हम शत्रुओं को परास्त कर सकेंगे। हे माँ! बिना तीक्ष्णता और पैनेपन के शत्रुओं को भला कैसे परास्त कर पाएँगे। तीक्ष्णता और तेजस्विता का भय खाकर शत्रु हमेशा दूर ही रहेंगे। हम सभी राष्ट्रवासी कभी पराधीन नहीं होंगे। हे माता! स्वाधीनता हमारी संस्कृति की धारा है। इस धारा को अक्षुण्य बनाए रखने के लिए आप का पुनीत आशीर्वाद चाहिए।

मातृभूमि के इस स्वतंत्रता के गान में वेद का उपदेश है कि जिन्हें स्वतंत्रता प्रिय है उन्हें बंधनमुक्त होकर तेजस्विता और उत्कृष्टता धारण करना चाहिए। उनका राज्य–प्रबन्धन भी ऐसा होना चाहिए कि सभी प्रजा–जनों में तेजस्विता और उत्कृष्टता अनवरत् बढ़ती जाए। उन्हें

किसी भी प्रकार का भय नहीं है। कहने का आशय यह है कि किसी भी समाज व राष्ट्र के लिए अग्नि तत्त्व व तेजस्विता परमावश्यक है। इस लिए इन्हें धारण करने के लिए सतत् प्रयास करना चाहिए।

22

देवों को हव्य समर्पित करते रहें

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरं कृतम्।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वध्यान्नेन मर्त्याः।
स नो भूमिः प्राणप्रायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु।

शब्दार्थ– (भूम्याम्) जिस मातृभूमि पर, राष्ट्र के प्रजा–जन (देवेभ्यः) देवगणों को (यज्ञं) मानवीय कर्म (अरंकृतं हव्यं) विशेष तरह की द्रवियाँ (ददति) सदा देने वाली (स्वधया अन्नेन) जिससे प्राण मर्यादित रहता है या जल से (मर्त्याः मनुष्याः) मरणधर्मा मनुष्य (जीवन्ति) जो सतत् जीने की इच्छा रखते हैं (सा भूमिः) उस मातृभूमि पर (नः) उस पर या हमारे लिए (प्राणं) जिससे जीवन सम्भव होता है (आयुः दधातु) लम्बी आयु देने वाली (मा) मुझको (पृथिवी) उस मातृभूमि पर (जरदिष्टं कुणोतु) वृद्धावस्था को प्राप्त करने वाला दीर्धजीवी बनाएँ।

भावार्थ– मंत्र में देवों को समर्पित करने वाले हव्यों का वर्णन किया गया है। देवजन वे हैं जो प्रत्येक क्षण जगत् के कल्याण में रत रहते हैं। यज्ञ का मर्म समझाते हुए कहा गया है कि मातृभूमि, पर्यावरण, वर्षा, उत्तम–कृषि, श्रेष्ठ–व्यापार एवं उद्योग–धंधें– जिससे समाज और राष्ट्र का सर्वहित होता हो– करने की प्रेरणा दी गई है। मातृभूमि पर निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का पावन कर्तव्य है कि वह जीवन–यज्ञ सम्पन्न करते हुए समाज, मातृभूमि और राष्ट्र के लिए भी अपने भाग का हव्य श्रद्धापूर्वक समर्पित करता रहे।

विवृति– मातृभूमि पर बसने वाले सभी लोगों में यज्ञ की भावना बनी रहे। यज्ञों से ही देवों को हव्य प्राप्त होता है। यह हव्य सुगन्धित पदार्थों से तैयार किये जाते हैं। यह मातृभूमि और राष्ट्र दोनों के लिए लाभकारी है। यज्ञ का अर्थ–सभी शुभ कर्म–यज्ञ कहे जाते हैं। इसमें कृषि, उद्योग–धंधें, राजकार्य, प्रशासन के कार्य और संगठन के कार्य सहित सभी श्रेष्ठ कार्य

सम्मिलित हैं। इन यज्ञों से जो पदार्थ तैयार किये जाते हैं वे हव्य कहे जाते हैं। यह देवों की भूमि है। देवजन यज्ञकर्ता होते हैं। देवजन वे हैं जो विद्वान हैं– जो प्रजा के कल्याण के लिए विविध क्रियाएँ करते हैं। देवजन एवं प्रजाजन जो यज्ञ करते हैं, वे विविध प्रकार के हैं। कुछ लोग, किसी प्रकार का यज्ञ करते हैं तो कोई किसी प्रकार का। यज्ञ के संचालन करने वाले सभी स्वयं के कल्याण के यज्ञ करते हैं तो अन्य लोग अन्यों के कल्याण के लिए। इस प्रकार एक दूसरे के सहयोग से किये जाने वाले यज्ञ सर्वकल्याणकारी बन जाते हैं। देव–जनों को समर्पित हव्य जहाँ सुगन्धित पदार्थ होते हैं वहीं भोज्य–पदार्थ भी होते हैं।

हे मातृभूमि! आप की वात्सल्यमयी गोद में विभिन्न प्रकार के यज्ञकर्ता विचरण करते हैं। ये देवपुरुष, सभी यज्ञ–कर्ता, जहाँ विद्वान प्रजा–जन हैं वहीं पर राज्याधिकारी भी हैं। हे भू माता! यह कितनी सुन्दर व्यवस्था है कि प्रजाजन राज्याधिकारियों को विभिन्न प्रकार के हव्य पहुँचाते रहते हैं और राज्याधिकारी उस राजकाज का प्रबन्ध निष्ठा पूर्वक करते हैं।

इसी प्रकार सूर्य, जल, वायु आदि दिव्य गुण सम्पन्न पदार्थों को भी यज्ञ कहते हैं। हमारे पंच महायज्ञों में अग्निहोत्र भी एक महत्त्वपूर्ण दैनिक यज्ञ है। अग्निहोत्र यज्ञ की श्रेणी में इस लिए आता है क्योंकि इससे प्राणी और अप्राणी दोनों जगत् का कल्याण होता है। अग्निहोत्र में जो पदार्थ डाले जाते हैं वे औषधियाँ, सुगन्धित द्रव्य, घृत और अन्न होते हैं। इससे वायुमण्डल शुद्ध होता है। पर्यावरण स्वच्छ होता है। प्राणी मात्र को निरोगता प्राप्त होती है और संगठन में शक्ति आती है। अग्निहोत्र अकेले नहीं किया जाता है। इसे सामूहिक सम्पन्न करने का विधान है। वह चाहे परिवार में हो, समाज में या राष्ट्र–यज्ञ के रूप में हो। यज्ञ से वर्षा होने और कृषि की फसल अच्छी होने का भी सम्बन्ध है। ये सब मातृभूमि की खुशहाली, प्रसन्नता और दिव्यता के लिए आवश्यक है। इस प्रकार यज्ञों के द्वारा तीन प्रकार के यज्ञ प्रजाजन देवों द्वारा सम्पन्न होता है। इसमें सर्वकल्याण की भावना निहित है।

ऐसे हव्यों युक्त यज्ञों से सुभूषित हे मातृभूमि! आप की कृपा हर प्रकार से हम पर बनी रहे। हम निरोग रहें। दीघायु होयें और जरा या मृत्यु के भय से अभिशिप्त न हों। हम कभी इन तापों से ग्रसित न हों– जिससे देवजनों और राज्याधिकारियों को कार्य करने में बाधा पहुँचती है।

मातृभूमि का भूषण तभी है, जब सभी देव प्रजाजन आम यज्ञों का नित्य आयोजन करते रहेंगे और जगत् के कल्याण में अपना योगदान देते रहेंगे। मातृभूमि पर देवगण, मनुष्य और श्रेष्ठ–जन तरह–तरह के यज्ञों के द्वारा इसे विभूषित करते रहे हैं। संस्कृति, धर्म, दर्शन, विज्ञान और व्यापार को समृद्ध करने के लिए अपने सद्कर्मों की सतत् अहुतियाँ देते रहे हैं।

इसी परम्परा में यज्ञों के द्वारा मानवता का सतत् विकास हुआ। मर्यादाएँ– जो सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक थी– उनकी मर्यादा स्थापित हुई।

जिन यज्ञ कर्मों से योग, भोग, और संयोग स्थापित हुए, उन्हें हम अपनाकर अपना और समाज का कल्याण करें। कृषक–जन अतीव परिश्रम (श्रम–यज्ञ) करके अन्न पैदा करते हैं। अन्न प्राण–दाता है। इस लिए कृषि–यज्ञ करने वाले कृषक–जन हम सभी के वन्दनीय हैं। अग्निहोत्री जन अग्निहोत्र करके जलवायु को शुद्ध करते हैं। सभी जन प्रसन्नता पूर्वक एक दूसरे के सहयोग से मातृभूमि का सवर्द्धन करें।

भू–माता की ममत्व की अमृत वर्षा हम सभी पर निरन्तर होती रहे। हमारा जीवन मातृभूमि पर निवास करने वाले हर प्राणी के पोषण, संरक्षण एवं सुरक्षा में रत रहे ऐसी अभीप्सा दृढ़ हो। धरती का वायुमण्डल एवं पर्यावरण स्वस्थ, आनन्द और सतत् विकास के अनुकूल हो। हम सभी जन शुद्ध पर्यावरण, अच्छे स्वास्थ्य और मानवीय विकास के लिए ऐसे कार्य करे, एक दूसरे से ऐसा व्यवहार करें और सबका विचार एक दूसरे के पूरक हों– इस दिशा में अग्रगामी बनें। सृष्टि एक रहस्यमय प्रक्रिया है। हम सभी इसके सबसे श्रेष्ठ भोक्ता हैं। लेकिन हम उतना ही इसका दोहन करें, जितने से हमारा पोषण, संरक्षण और सुरक्षा हो सके। पर्यावरण, जलवायु, और विकासानुकूल हम ऐसे विचार, मंथन, चिंतन और सदकर्म करें, जो मातृभूमि को स्वर्गिक बनाने में निरन्तर सहयोगी हों। हमारा स्वास्थ्य उत्तम, दीर्घायु और सुखकारी हो। यह तभी सम्भव है, जब हमारा हर कदम सुखकारी एंव शुभकारी होगा, हममें जर्जरावस्था का विचार न आने पाए। मृत्यु से ऐसे छूट जाएँ जैसे सर्प से केचुल छूट जाता है। हमारा जीवन उद्‌देश्य परक होगा तो हमारे विचार और चिंतन में मौलिकता आधुनिकता और सर्वहितता का भाव भी भरा रहेगा।

जिस तरह से रात–दिन भू–माता पर्वत, सागर, बादल, वन, जंगल, बाग, वनस्पतियों, औषधियों, रत्नों, पदार्थो, जीव–जन्तुओं और मनुष्य के हित के लिए अखण्ड धारा में रत रहती हैं उसी तरह का भाव दर्शन और जीवन हमारा भी हो। हम सभी मातृभूमि के मनस्वी और यशस्वी योद्धा बनें, ऐसी प्रेरणा–शक्ति ओर पोषण भू माता हम सभी को प्रदान करती रहे।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद में दिया गया यज्ञपरक उपदेश देव प्रजा–जनों को प्रेरित करने वाला है कि वे द्रव्य–हव्यों द्वारा यज्ञ सम्पन्न करते हुए समाज व राष्ट्र कल्याण के लिए प्रतिपल समर्पित रहें। ऐसे यज्ञों को नित्य सम्पन्न करें जो रोगमुक्त, दीघायु और शुभकर्मों की अविरल धारा को बढ़ाने वाले हों।

23

दिव्यगंध युक्त मातृभूमि

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु।
मा नो द्विक्षत कश्चन।।

शब्दार्थ– (पृथिवी) भू माता (यस्ते गन्धः) जिस गन्ध से (संबभूव) सतत् उत्पन्न हुआ (यं) जिस (गन्ध) के द्वारा (ओषधयः) आरोग्यवर्द्धक बूटियाँ (विभ्रति) सतत् धारण करती हैं (आपः) प्राण रक्षक (गन्धर्वा) प्रचण्ड तेज धारण करने वाली या सुन्दर लोग (अप्सरसः) रश्मियों को भी या सुन्दर युवतियें (यं गन्धम्) जिस सुगन्धि से (भेजिरे) ओत प्रोत या प्राप्त कर रही है (तेन) उस (गन्ध) गंध से (मा) हम सब को (सुरभिम्) सुगन्धित करे (कृणु) निरन्तर (नः) हम सभी को (कश्चन) कोई भी मनुष्य (मा द्विक्षत) द्वेष से रहित हो मैत्री भाव में बँधे रहें।

भावार्थ– मातृभूमि जिस दिव्य गन्ध से ओत प्रोत है उस गन्ध की विशेषताओं और उसके गुण–धर्म की विशेषण परक चर्चा इस मंत्र में की गई है। मातृभूमि का गन्ध सबको आकर्षित करने वाला होता है। यह प्रकृति के हर जड़–चेतन और प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है जिससे प्रकृति के कण–कण में आकर्षण होता है। इस गन्ध से राष्ट्र और समाज का प्रत्येक व्यक्ति ओत प्रोत हो जाए इसकी कामना भी साथ में की गई है। जिससे प्रत्येक व्यक्ति में एक आकर्षण और मधुरता का समावेश हो जाए। जिससे प्रत्येक प्रजाजन में एक दूसरे के प्रति एक दिव्य प्रेम का भाव हमेशा उमड़ता रहे, और जीवन–निर्माण और नव सृजन में सतत् रत रहने की प्रवृति भी बनी रहे।

विवृति– हे माता! हममें से कोई कर्महीन और अभागा नहीं। हम सतत् जीवन–निर्माण करने वाले बनें। गन्ध और सुगन्ध से हममें निरन्तर शक्ति अर्जित होती रहे। हमारी शक्ति से समाज का नव निर्माण हो सके। हे मातृभूमि! समाज के नव निर्माण निमित्त आप अपनी गन्ध एवं सुगन्धि की शक्ति से ओत प्रोत कर दीजिए जिससे हम सभी मिलकर विकास, विज्ञान और धर्म के मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ते जाएँ। हमारा किया हुआ हर कार्य समाज के लिए खुशहाली का कारण बने, ऐसी अभिज्ञा हम सभी में हो।

हे सब का पालनकर्तृ मातृभूमि! आप की महिमा के क्या कहने! आप का तेजस्वी रक्षणी और भौतिक शरीर सत्यम्, शिवम, सुन्दरम् का मूर्त–रूप है। आप की ओर सारे प्राणी–गणों का

बरबस आकर्षित होने के कारण– आप में समाहित दिव्य गन्ध है। यह प्राणी मात्र ही नहीं अन्य पदार्थों को भी मनोहर लगता है। हम सभी प्रजा–जन के मन भी आप के इस गुण (दिव्य गन्ध) के कारण बरबस आकर्षित होने के कारण स्वयं को रोक नहीं पाते हैं।

माँ! आप के प्रति हृदयाकाश में उमड़ा प्रेम उस दिव्य गन्ध के कारण ही है। हे भू–माता, आप का वह दिव्यगन्ध कितना मर्मस्पर्शी है, कितना सर्वकल्याणी है। हाँ, आप का स्वभाव भी तो वात्सल्य रस और परोकार से युक्त है। आप में समाहित वह दिव्य गन्ध आप अपने तक ही सीमित नहीं रखतीं बल्कि वनस्पतियों, औषधियों, पदार्थों और प्राणियों को भी खुले करों से बिखेर रही हैं। यह भी आप का स्वभाव ही है। सुगन्ध और गन्ध–युक्त वनस्पतियों में, उतंग पर्वतों की श्रृखलाओं में, वन और बगीचों के फूलों व अन्य वनस्पतियों में जो गन्ध समाहित है, वह भी तो आप की ही देन है। फूलों को देखो, कैसी मर्मांतक गन्ध उनमें है। कैसा मनोहारी–रूप आप पर उगने वाली वनस्पतियों का है। इतना ही क्यों, आप पर उगने वाले हर जड़–चेतन में एक गन्ध व्याप्त है, वह भी आप की शरीर से ही इन्हें प्राप्त हुई है। उन सभी में व्याप्त गन्ध के प्रति जो एक आकर्षण है, वह भी गन्ध ही है। इस गन्ध के कारण उनके प्रति पैदा होने वाला प्रेम– आप का ही दिया हुआ है।

हे माता! कहाँ नहीं है आप की गन्ध। आप के ऊपर बहती हुई पयस्विनियों में, झरते हुए झरनों में , बादल की मोहक फुहार में, मोती जैसे चमकती पत्तियों पर ओस की बूदों में, वन की सुकोमल कलियों में, हिमाच्छादित पर्वतों की चोटियों के प्रति जो गन्ध है और उस गन्ध का जो आकर्षण है, वह भी आप के द्वारा ही उन्हें प्राप्त है।

तरुण युवा और युवतियों में जो मनोहरता है, जो मादकता है, वह भी तो आप से इन्हें सहज प्राप्त है। तन व मन से सुन्दर ऊर्जा से भरी हुई यह युवा शक्ति में रूप–लावण्य के क्या कहने। आपस में इनमें जो प्रेम है, वह भी आप के देह–गन्ध के कारण है। ऐसा कौन सा गुण है माँ, जो आप ने इन्हें न दिया हो। इनके प्रति आकर्षण का कारण इनमें भरी गंध ही तो है।

हे भू माता! आप ने सृष्टि के कण–कण को अपने दिव्य गन्ध से युक्त कर दिया है तो हमें भी दे दीजिए। हम भी गंध वाले बन जाएँ अर्थात् प्रेम की वह अतुल धारा हममें प्रवाहित कर दीजिए कि हमारा तन, मन दोनों प्रेम गन्ध से पूरित हो जाएँ। जैसे इनमें एक अजस्र आकर्षण दीप्तमान हो रहा है वैसा आकर्षण मुझमें भी भर दीजिए।

जैसे लोग आप से प्रेम करने के लिए आतुर रहते हैं वैसे मुझसे भी लोग प्रेम करने के लिए विवश हो जाएँ। मैं सब का प्यारा बन जाऊँ। सब के लिए प्रिय बन जाऊँ। मेरे अन्दर

ऐसी मधुरता, गन्धता, सहजता भर दें जिससे सभी मुझसे प्रेम करने के लिए विवश हो जाएँ। मैं किसी से न द्वेष करूँ और न ही मुझसे कोई द्वेष करे। आप की अनुकम्पा ऐसी बरसे कि सारा समाज व राष्ट्र प्रेम के अखण्ड गंध से भर कर आपस में जुड़ जाएँ। क्योंकि प्रेम ही सब को आपस में जोड़ सकता है। हम सभी का व्यवहार सब के प्रति मैत्री–पूर्ण हो। हम सब के हितैषी बनकर सब का प्यारा बन जाऊँ।

मातृभूमि के वात्सल्य रस से परिपूर्ण इस वेदगान में उपदेश दिया गया है कि जिस प्रकार से वनस्पतियों, औषधियों जल, वायु सूर्य, पर्वत, झरने और नदियों के जल में अतुलित प्रेम भरा हुआ है वैसा प्रेम ही मानव समाज के हर व्यक्ति में हो। वह प्रेम ही गन्ध है। इस गंध को प्राणी और अप्राणी सभी धारण करके सब को अपने प्रति आकर्षित करते हैं, वैसे ही हम सभी में भी हो। यहाँ प्रेमोत्पादक गुणों को **गंध** शब्द से अभिहित किया गया है। 'रुचि' और 'वर्च': शब्दों का प्रयोग भी इसी भाव को व्यक्त कर रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी प्रजा–जनों के अपने अन्दर गुणों का ऐसा आकर्षण पैदा करना चाहिए जो सबके लिए आकर्षित करने वाला हो। सभी एक दूसरे से ऐसा व्यवहार करें जो सब को अच्छा लगे। जिससे सभी एक प्रेम की माला में गुथ जाएँ।

24

मातृभूमि, हमें भी दिव्य गन्ध से भर दें

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सूरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।।

शब्दार्थ– (ते) हे पृथ्वी माँ! (यः गन्धः) जो यह तुम्हारा गन्ध है (पुष्करम्) नीलवर्ण कमल सदृश्य (आविवेश) निरन्तर आगे बढ़ता रहा (अग्रे) आगे–आगे (यं गन्धः) इस (रहस्यवादी) गन्ध से (पृथिवि) हे भू माता! (अमर्त्याः) जो अमरता की निरन्तर इच्छा रखते हैं (सूर्याया) प्रचण्ड तेजोमय प्रकाश का स्रोत (संजभ्रुः) साथ–साथ अनुसंधान करने वाले या साथ–साथ लाती हैं (तेन) उस मातृभूमि से (मा) निरन्तर हे धरणि माँ (सुरभिकृणु) आनन्द वाहक सुगन्धि (विवाहे) वाहन, बहना, वहन करना (कश्चन) हममें से कोई भी नहीं (मा द्विक्षत) हे मातृभूमि, हममें कभी भी (एक क्षण के लिए) एक दूसरे के प्रति द्वेष भावना न आए।

भावार्थ– दिव्य गन्ध की महत्ता मानव के लिए कितनी है और दिव्य गन्ध से मानव को ओत प्रोत होना क्यों आवश्यक है इस मंत्र में बताया गया है। सूर्य की किरणें और चन्द्रमा का प्रकाश, सरोवर का स्वच्छ जल और औषधियों की रोग निरोधक क्षमता कहाँ से आई। इसका भी समाधान करते हुए दिव्य गन्ध की विशेषताओं की चर्चा की गई है। प्रत्येक प्रजा–जन में मैत्री निरन्तर बनी रहे और सभी अपने स्वधर्म का पालन करते हुए मातृभूमि, राष्ट्र और समाज की उन्नति में समर्पित करते रहें–दिव्य गन्ध की दिव्यता को आत्मसात करते हुए। जिससे प्रेममय वातावरण समाज में निर्मित हो सके और मातृभूमि पर कोई हिंसक या द्वेषी व्यक्ति का निवास न हो सके।

विवृति– हे मातृभूमि! आप की वात्सल्यमयी गोद में लहराते हुए सरोवर हैं। उन सरावरों में अनेक सुगन्धयुक्त पुष बिहँस रहे हैं। उप पुष्पों में हृदय को प्रिय लगने वाली जो सुगन्धि है वह मेरे लिए शुभकारी हो, ऐसी कृपा सदा करती रहना। जिस प्रकार से सूर्य की पुत्री अर्थात् सूर्य की रश्मियाँ जाकर चन्द्रमा को प्रकाशित करती हैं वैसे ही मेरे अन्दर प्रेम का प्रकाश प्रकाशित हो। यहाँ सूर्य यानी सूर्य की पुत्री (किरणों) ओम, सोम अर्थात चन्द्रमा के विवाह का आलंकारिक वर्णन किया गया है। इसका कोई पौराणिक या ऐतिहासिक सम्बन्ध नहीं है। जो गन्ध कमलों और सूर्य की किरणों अर्थात् सूर्य की किरणों से– जैसे कमल दल खिल उठते हैं– वैसे ही कमल की गन्ध अर्थात् प्रिय लगने या आकर्षित करने का गुण मुझमें भी हो जाए जिससे मैं भी सब का प्रिय लगने लगूँ। मेरे अन्दर वैसे ही सुरभि परिपोषित हो जो आकर्षण का कारण है– ऐसी गन्ध मुझे प्राप्त हो। इस (सुरभि) सुगन्ध से परिपूर्ण हो जाऊँ– मुझसे कोई द्वेषभाव न रखे। हे माँ! जिस गन्ध से परिपूर्ण हों कमल दल अपनी ओर सब को आकर्षित करते हैं। जो गन्ध कमल पुष्पों में सूर्य किरणों से प्राप्त होती हैं वह सबके आकर्षण का कारण हो जाती हैं, तो ऐसी गन्ध मुझमें भर दीजिए।

हे भू माता! हमें दिव्य गन्ध से युक्त कर दें। यह दिव्य गन्ध हमें अमरत्व की ओर बढ़ाती रहे। समाज व राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति में वह गन्ध परिपुष्ट हो जिससे उनमें आपस में मैत्री बढ़े। कोई अकाल मृत्यु से ग्रसित न हो।

हे भू–माता! आप से पोषण, संरक्षण और गति प्राप्त करने वाले सौन्दर्य के अनुपम प्रतीक कमल की सुगन्धि हम सभी के लिए जीवनदायक है। सृष्टि में जो सौन्दर्य एवं सुगन्धि है, वह मातृभूमि से सिक्त है। असंख्य प्राणियों में जो गन्ध और सुषमा की विभिन्नता है, वह भी एक रहस्य है। ज्योतिर्मय प्रखर तेज से धरणि का पोषण होता है, यह ही सृष्टि विज्ञान के उद्भव का कारण है।

हे भू–माता! हमारे अन्दर सुगन्ध पुष्ट होकर हम सभी को अमृत–पथ का पथगामी बनाए। हम अमृत–पुत्र सतत् परोपकारादि कार्यों में ही लगे रहें जिससे विश्व का कल्याण हो। गन्ध ही जीवन है, अमृत है और अमरता का संवाहक है। हे मातृभूमि! जो अमरता की सद्इच्छा रखते हैं, वे ज्योतिर्मय तेज को ध्यान करने वाले बनें। जो प्रचण्ड तेज कण–कण की गति में गतिमान हैं, हम सभी उसके विराट रूप के ग्रहण करने वाले बनें। हमारा ध्यान तेजोमय प्रकाश–रूप की ओर ही निरन्तर हो। सुगन्धि से जिस आनन्द की उत्पत्ति होती हैं, वह सुगन्धि निरन्तर हममें विचरण करती रहे। सुख, शुभ और शान्ति हम सभी के जीवन का अंग बने ऐसी कृपा हे माँ, हम सभी पर निरन्तर बनाये रहें।

मातृभूमि से स्रावित गन्ध हमें दिव्यता के रास्ते पर निरन्तर आगे बढ़ाए। जिस दिव्यता से ओत प्रोत भू–माता अनवरत् महिमा मण्डित रहती हैं और जिससे मनुष्य को शक्ति, शौर्य, चेतनता और चिन्तन की प्रवृति जाग्रत होती है उस दिव्यता की हम सभी प्रशंसा करते हैं। इससे हम सभी में चेतना, बुद्धि एवं चिन्तन का विस्तार हो ऐसी अभीत्सा अग्रसित हो। इससे जीवन के आयाम विस्तृत होते हैं। द्वेष, ईर्ष्या और क्रोध की आग का शमन भी इससे ही होता है।

हे मातृभूमि। आप की दी हुई गन्ध उस अभाव एवं दोष को दूर करती है जो मृत्यु के विचार को आगे बढ़ाती है। मृत्यु का विचार गन्ध एवं सुगन्धि से कमजोर या खत्म हो सकता है। मृत्यु का विचार समाप्त होते ही, मृत्यु का चिन्तन, सोच व चर्चा भी खत्म हो सकती है। हे भू–माता! हम सभी जन द्वेषभाव न कर प्रेम व एकता सूत्र में बंधें रहें–ऐसी प्रेरणा व शक्ति हममें दीजिए।

मातृभूमि के इस स्तुतिगान में प्रार्थना द्वारा वेद का यह उपदेश अत्यन्त प्रेरक है। इसमें कहा गया है, मातृभूमि पर बसने वाले प्रत्येक व्यक्ति को समाज व राष्ट्र के लिए गन्ध अर्थात् प्रेम भाव से युक्त होकर व्यवहार करना चाहिए। कोई किसी से कभी द्वेषादि न करे। कोई ऐसा अमैत्री पूर्ण व्यवहार न करे जिससे आपस में टकराव पैदा हो और मैत्री भाव का हनन हो। कहने का तात्पर्य यह है बिना गन्ध अर्थात् प्रेम के आकर्षण से मैत्री भावना की धारा नहीं बहती है। इस लिए हम सभी गन्ध (प्रेम) से परिपूर्ण रहें।

25

दिव्य गन्धों की दिव्यता

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु कन्यायां वर्चो।
यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज। मा नो द्विक्षत कश्चन।।

शब्दार्थ– (यः) जो (गन्ध) (ते) तुम्हारे (गन्धः) गन्ध है (पुरुषेषु) विद्वान पुरुषों में (स्त्रीषु) स्त्रियों में (पुंसु) रक्षक जनों में (यः) जिससे (वीरेषु) वीर योद्धाओं में (अश्वेषु) शक्तिशाली चौपायों में (मृगेषु) जंगली धावक पशुओं में (उत) और भी (हस्तिषु) हाथियों में (यत् वर्चः) उन तेजस्वी (कन्यायाम्) अक्षतयोनी सुन्दरियों में (भूमे) हे भू माता (अस्मान्) हम लोग (कश्चन) कोई भी मुझसे (मा द्विक्षत) द्वेष भाव से दूर रहें।

भावार्थ– सृष्टि का प्रत्येक कण, प्रत्येक वस्तु अपने गुण–कर्म–स्वभाव के अनुसार व्यवस्थित हैं और कर्म में लगे हुए हैं। मानव पृथ्वी पर सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है। यह श्रेष्ठता इसे बुद्धि और विवेक के कारण प्राप्त हुई है। मानव को चाहिए कि वह प्रकृति से जो दोहन करता है उसके प्रतिफल वह अपना अवदान प्रकृति में किसी न किसी रूप में निरन्तर देता रहे। पृथ्वी की जो दिव्य गन्ध है– उस गन्ध के रहस्य को समझकर– उसे जीवन–विकास, परहित और मातृभूमि–हित में निरन्तर लगाता रहे। प्रस्तुत मंत्र में इन्हीं प्रेरणाओं की चर्चा की गई है।

विवृति– हे भू–माता! आप की वात्सल्यमयी गोद में विचरण करने वाले प्राणियों में व्याप्त गन्ध की दिव्यता (आकर्षण) के क्या कहने। पुरुष और स्त्रियों में जो गन्ध है, वह अत्यन्त प्रभावशाली है। पुरुषों में छः प्रकार के भग (ऐश्वर्य, धर्म, यश, ज्ञान, शोभा व वैराग्य) हैं और उनमें जो सुन्दरता व कान्ति है, वह और किसी में नहीं है। विचरण करने वाले घोड़े और अश्वारोहियों में हिरण और हाथियों में, कुँवारी यौवना में जो गन्ध व्याप्त है जो आकर्षण व कान्ति है, वह भी आकर्षण का कारण है।

हे माँ! ये गन्ध मन, हृदय और अन्तर–प्रज्ञा को सुशोभित करने वाले बनें। मैं भी वैसे गन्ध से युक्त हो जाऊँ जो आकर्षण का कारण है। जिनसे प्रेम, स्नेह सहज प्राप्त होता है। गन्ध का आकर्षण सभी को अपनी ओर खींचता है। गन्ध युक्त होने पर भी सभी मैत्रीपूर्ण व्यवहार करने लगते हैं। इस लिए मुझमें ऐसा मादक गन्ध भर दीजिए। फिर तो कोई भी द्वेष–भाव का

व्यवहार मुझसे नहीं करेगा। हे माता! आप सभी प्रकार के गन्धों को सहज–रूप में प्रसाद के रूप में बाँटती हैं इस लिए हमें प्रसाद– रूप में गन्ध चाहिए। हमें ही क्यों! समाज व राष्ट्र के सभी लोग, सभी कान्तियुक्त गन्धों से युक्त हों ऐसी कृपा सब पर बनाए रखना।

हे मातृभूमि ! आप का गन्ध (धरती के) हर प्राणी और अप्राणी में व्याप्त है। आप के गन्ध से मनुष्य (नर) तृप्त होकर सुख, शान्ति और तेज का अनुभव करता है। ब्रह्मचर्य का पालन करके गन्ध से पुष्ट हो किशोर वय तेज को धारण करते हैं। यह तेज स्मरणशक्ति, बुद्धि, ज्ञान, विवेक और चेतनाशक्ति को बढ़ाता है। गन्ध नर का मादा में और मादा का नर में आकर्षण पैदा करता है। गन्ध जीवन के अनगिनत–रूपों को पोषित और पल्वित करता है। हे भू–माता! जिस मादक गन्ध से पर्वत, पत्थर (शिला) वन, जीव–जन्तुओं, चौपायों, शक्तिशाली पशुओं, अक्षतयोनी सुन्दर बालाओं और वृक्ष–लताओं में सुन्दरता, सुगन्धि, तेज, हरितमा और आकर्षण पैदा होता है उससे हम सभी अनंत काल तक जीवनी–शक्ति प्राप्त करते रहें।

सौरभ, सुषमा और सुधारस से पूर्ण भू माता की गन्ध जीवन को मृत्यु से हटाकर अमृत की ओर ले जाती है। जिस तरह से मातृभूमि हर पल प्राणवान, शक्तिशाली और प्रज्ञावान बनी रहती है, उसी तरह हम मनुष्यगण मृत्यु से छूटकर अमृतपथ के अनुगामी बनें।

भू–माता से सृष्टिकाल से जो गन्ध दिव्यता के साथ स्फुटित हो रही है वह धर्म कार्यों (सृष्टि के नियामक तत्त्वों में) में निरन्तर लगता रहे। हम सभी पवित्र मन, बुद्धि और चेतना से गन्ध को अहिर्निश ग्रहण करते जाएँ। जिस तरह माता का अतीव प्रेम पुत्र से होता है, वैसे ही हम सभी मातृभूमि के पुत्रों का भू माता से हो। ऐसा प्रेम जो दो और चौपायों प्राणियों में आपस में हो, वह हम सभी के लिए सर्व सुखदायक हो। धरती माता का विकास प्राणी–मात्र ही नहीं, धरती के हर तृण–तृण व कण–कण से इस प्रकार से हो जिससे कुछ अनात्मीय न लगे। धरती का हर कण भू माता के गन्ध से जागृत है। अतीव प्रेम से कण–कण का तेज व गति हममें भी उद्भाषित होने लगती है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी घटित होता है या होगा उसका कारण भू माता की नियमबद्ध एवं मर्यादित गति व गन्ध ही होंगे। हम सभी का अंतःकरण, भू–माता एवं अन्तरिक्ष–लोक के रहस्यमय गति एवं तेज से निरन्तर जाज्वल्यमान् होता रहे।

मनुष्य धरती का परमात्म–सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट कृति है। यह उत्कृष्टता हमारे कर्मों, अनुसन्धानों, व्यवहारों एवं विकास में भी दिखाई पड़े, ऐसा प्रयास हम सभी का अनवरत होना चाहिए। हे पृथ्वी माता! हम सभी को अपनी उत्कृष्ट अमर–गन्ध से सतत् वासित करती रहें। हम सभी में ऐसी दिव्यतम् और अमृतमय शक्ति का संचार हो जिससे धरती का हर प्राणी का यथायोग्य संरक्षण एवं पोषण हो सकें।

सृष्टि का हर कण गतिमान है। सूर्य रात–दिन (रजनी–वासर) बिना एक पल विश्राम किए अपने प्रचण्ड तेज से पूरे ब्रह्माण्ड को प्राणमय करता रहता है। रचनीचर शीतल प्रकाश से कण–कण को शीतलता बाँट रहा है। तारें चौबिसों घंटे टिमटिमाते व झिलमिलाते रहते हैं। वायु पल–पल सबको जीवन प्रदान कर रही है। जल प्राणी व अप्राणी को संतृत्व कर रहा है। इसी तरह अग्नि विश्व को आलोकित एवं पोषित कर रही है अर्थात् सृष्टि की हर वस्तु अपने गुण, कर्म व स्वाभावनुरूप कर्म में लगी हुई हैं।

हे धर्म वाहिनी भू–माता! सारी सृष्टि मनुष्य के भोग के लिए है। लेकिन भोग पदार्थों का सेवन योग के साथ करना ही धर्म–संगत है। आप धर्मों को वहन करने वालीं हैं, इस लिए हममें ऐसा संकल्प भर दीजिए जिससे हम सभी कभी धर्मच्युत न हों। धर्म विहीन मनुष्य पशु के सदृश्य होता है। हम सभी मनुष्यता के उत्कृष्ट मार्ग के पथिक बनें रहें, ऐसी शक्तिवर्धक गंध हममें (सबमें) भर दीजिए। हमारा चलना, बैठना पढ़ना, सोचना, लिखना और संवाद करना सबके लिए मंगलकारी हो। ईर्ष्या, द्वेष व क्रोध से ग्रसित न हों और हमारा कोई मित्रादि अर्थात् सभी के अन्दर सबके प्रति प्रेम, एकता, सद्भावना और अन्य सद्गुणों का भण्डार बढ़े, हम सभी का शुभ संकल्प पूर्ण हो, ऐसी अनुकम्पा हम सभी पर बनी रहे।

धरती माता के इस स्तुतिगान में वेद का उपदेश वरणीय और चिन्तीय है। उपदेश दिया गया है कि मातृभूमि पर बसने वाले सभी स्त्री–पुरुषों में मैत्री पूर्ण गन्ध हो। सभी में आपस में मधुरता व मैत्री हो। सब की उन्नति के लिए मैत्री (गन्ध) का होना बहुत आवश्यक है। समाज व राष्ट्र की समृद्धि भी इसी से जुड़ी हुई है। सब का कल्याण व विकास मैत्री में ही निहित है। संगठन की शक्ति व एकता का सूत्र भी इसी से जुड़ा हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है, सभी में आपस में सद्भावना व प्रेम की उत्कट भावना बनी रहनी चाहिए।

26

वन्दनीया मातृभूमि

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।।

शब्दार्थ– (शिला) आरोग्य नाशक पस्तर (भूमिः) धरती माँ (अश्मा) पर्वतादि (संधृता) रक्षित धरणि (धृता) दृढ़ता पूर्वक या धारण किए जाने पर (तस्यै) उससे जो (हिरण्य वक्ष से)

स्वर्णयुक्त भण्डार धारण करने वाली (पृथिव्यै) भू माता के लिए (नमः) नम्रता पूर्वक या नस्कार (अकरम्) मैं करता (नमन्) नमस्कार।

भावार्थ– मंत्र में मातृभूमि के सम्बन्ध में अनेक प्रकार से समझाया गया है। मातृभूमि हमारे लिए तब वन्दनीय होती है जब हमारा और इसका सम्बन्ध माता और पुत्र का बन जाता है। माँ कैसी भी रूप, रंग और भाव वाली हो, वह माता तो है ही। उसी प्रकार से यह धरती कैसी भी हो, हमें प्रयत्न पूर्वक इसे संवारकर हर प्रकार से आकर्षक और उर्वराशक्ति से भरपूर बनाना चाहिए। मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी लोग तब सहोदर बन जाते हैं जब सभी लोग इसे अपनी मातृभूमि मानकर इसके प्रति अपना कर्तव्य सुनिश्चित करते हैं। वसुधैव कुटुबकम् की जो महान् परम्परा हमारी है, वह वसुधा को एक परिवार के रूप में स्थापित करती है। हमें दिव्यगुणों का धारण करते हुए माँ का और राष्ट्रहित जिसमें निहित हो– उस कार्य को ही करने की आदत डालनी चाहिए। इसमें मातृभूमि, राष्ट्र और मानव का हित निहित है।

विवृति– हे मातृभूमि! यह ऊँची–नीची पत्थर की शिला, धूल–मिट्टी सी दिखनी वाली भूमि क्या है? क्या यही मातृभूमि है? इसमें तो वन्दनीया मातृभूमि जैसा कुछ भी द्रष्टव्य नहीं होता है? फिर यह वन्दनीया कैसे हो गई? लेकिन जब ऊँची–नीची पत्थर की शिलाएँ एक विशेष व्यवस्था में हमारे लिए वन्दनीय हो जाती हैं तब हमें वह वन्दनीया मातृभूमि के रूप में स्वीकार हो जाती हैं। इस पर निवास करने वाले सभी जन इसे सम्यक्–रूप से संवारते और उपयोगी बनाकर एक विशेष–रूप प्रदान करते हैं। तब, उस भू भाग और यहाँ निवास करने वाले मनुष्यों का सम्बन्ध माँ और पुत्र का बन जाता है। आपस में सभी जन मातृ–सम्बन्ध से एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। सभी के दुख–सुख, मान–अपमान अवनति–उन्नति और हानि–लाभ को अपना समझ लिया जाता है। यह सहोदर जैसा सम्बन्ध आपस की समझदारी से निरन्तर बढ़ता ही जाता है। ऐसी भावना और पूरकता बन जाती है, जैसे एक ही माँ के उदर से पैदा होने वाले सहोदरों में होता है। हे मातृभूमि! आप पर आश्रय पाने वाला हर मानव ऐसे सम्बन्धों से जुड़ते ही, आप को अपनी माँ (पालन व पोषण देने वाली) और स्वयं को आप का पुत्र मानने लग जाता है। ऐसी स्थिति में हे माँ! भला क्यों, वन्दनीय नहीं होगी। आप को हमारा बारम्बार नमन्।

हम सभी मातृभूमि पर आश्रय पाने वाले जन, आप को सतत् संधृत अर्थात् संवारते रहें। कभी अपने पुत्र वाले कर्तव्यों से च्युत न हों। अब आप हमारे लिए ऊँची–नीची, ऊबड़–खाबड़ पत्थर की शिलाओं वाली और धूप–मिट्टी की ठेर नहीं बल्कि हमारे लिए मातृभूमि के रूप में

अभिनन्दनीय बन गई हैं। आप पर बसने वाले सभी जनों का सम्बन्ध मातृत्व से जुड़ गया। आप को बहुत आदर के साथ नमन् करते हैं।

हे भू–माता! आप अपनी कोख में ऐसे चमकने वाले बहुमूल्य रत्नों को धारण करनी वाली हो जो हमारे लिए कल्याणकारी हैं। ऐसे बहुमूल्य पदार्थ आप धारण करती हैं जो हमारे लिए बेहद उपयोगी हैं। बहुमूल्य स्वर्ण–युक्त और पदार्थों को धारण करने वाली हे माँ! किस प्रकार आप की वन्दना करूँ, क्योंकि आप ने बिना किसी स्वार्थ के हमें जो सभी वस्तुयें उपलब्ध कराई हैं, वे तो अमूल्य हैं।

भू–माता के ऊपर पर्वत, पत्थर, शिला और धूल है। गर्भ में तेजोमय रत्नादि के भण्डार हैं। ऐसे ही न जाने कितनी अमूल्य वस्तुएँ एवं पदार्थ मातृभूमि के ऊपर और भीतर भरे हुए हैं। ऐसी भू–माता, जिसके आवरण और अंतःकरण में असंख्य रत्न धातुएँ हैं, वह हम सभी के लिए वन्दनीय एंव प्रेरणीय है, हम सभी मातृभूमि को शत्–शत् बार नमन् करते हैं।

हम सभी श्रेष्ठजन दिव्यगुणों से अनवरत् अभिसिक्त होते रहें। शक्ति एंव सुचिता हमारे रोम–रोम को आप्लावित करती रहें। जिससे हमारे सद्‌गुणों एवं चरित्र का निरन्तर विकास हो सके। पृथ्वी माता की सुरक्षा, संरक्षण एंव पोषण के लिए हम सभी में शक्ति एंव चारित्रिक सौन्दर्य निरन्तर बढ़ता रहेगा।

जिस तरह से अनन्त काल से वसुधा माँ दृढ़ता पूर्वक सभी धर्मों को धारण करती आ रहीं हैं, उसी तरह से हम मनुष्यों में विश्व समाज के कल्याण के लिए संकल्प दृढ़ हो। धरती माता का हित जिसमें हो, हम सभी को अनवरत ऐसे ही सुकर्म करने चाहिए। सुकर्म से माता की रक्षा ही नहीं होती बल्कि अंतःचेतना का विकास एवं विस्तार भी होता है। हम सभी की चेतना दिव्यतर होती जाए, इसके लिए आवश्यक है भूमिमाता के प्रति हममें कृतज्ञता का भाव भी दिव्य हो। हर नर को भूमिमाता का कृतज्ञ अवश्य होना चाहिए। क्योंकि इससे ही सभी को अन्न, जल, वायु और रत्नादि की प्राप्ति होती है। हमारा शरीर जिन तत्त्वों से बना है वे सभी भू–माता के ही अवयव हैं। वैदिक ऋषि–महर्षि वेदों में बड़े उत्साह से मातृभूमि की वन्दना करते हैं। उनकी वन्दना जितनी गम्भीर एंव रहस्यमय है, उतनी ही प्रेमभाव एवं ज्ञान भाव से उत्प्रेरित भी। हम सभी भी, अपने पूर्वज ऋषियों के भाव एवं ज्ञान को अपना कर, अपने परिवार विश्वसमाज, संस्कृति और धर्म का कल्याण करना चाहिए। जितनी शक्ति मातृभूमि में है, उतनी शक्ति (गंध) सृष्टि के किसी और वस्तु एवं पदार्थ में नहीं है। मनुष्य व दूसरे प्राणी (अप्राणी) में भी नहीं। मातृभूमि द्वारा प्रदत्त इस दिव्यतर गन्ध का जितना उपयोग (अनुसन्धान पूर्वक) करेंगे, हमारी आध्यात्मिक, सामाजिक, वैश्विक एवं वैज्ञानिक उन्नति भी उसी स्तर पर होती जाएगी।

इसलिए हम प्रजा–जनों को चाहिए कि नियमों, मर्यादाओं और सुगन्ध को धारण कर मातृभूमि की हर विधि से रक्षा करें। समग्र एंव सर्वदा विकास का यह निर्विकल्प मार्ग है।

हे माँ! आप से हमें ऐसी कौन सी वस्तु नहीं प्राप्त होती जिससे हमारा, मानव समाज व राष्ट्र की समृद्धि न जुड़ी हो। कहने का तात्पर्य यह है कि मातृभूमि से हमें समाज व राष्ट्र को सब कुछ प्राप्त होता है। इस लिए हमें इसकी रक्षा का दायित्व हमेशा कर्तव्य निष्ठा एवं सच्चाई से निभाते रहना चाहिए।

मातृभूमि के प्रति हमारा जो भाव होना चाहिए उसे गहराई से समझे बिना समझा नहीं जा सकता है। जब हम किसी भू–भाग में मातृत्व का आरोप करते हैं तो वह भू–भाग हमारे लिए अभिनन्दनीय मातृभूमि बन जाता है। फिर वहाँ रहने वाले लोगों के साथ एक सहोदर का सम्बन्ध बन जाता है। ऐसे में जात–पाँत, भेदभाव, अस्पृश्यता और अन्य बुराइयों का कोई स्थान नहीं रह जाता है। तब मातृभूमि को जिस गहराई से अपना मानसिक व आत्मिक सम्बन्ध जोड़ेंगे उस रूप में ये भू–माता हमारे लिए वन्दनीया बन जाती है। यदि हम चाहते हैं कि भू–माता पर बसने वाले सभी जनों में आपस में उत्कट–प्रेम हो, एकता हो, तो हमें हमें आपस में सभी प्रकार के विभेदों से ऊपर उठकर आपस में व्यवहार करना चाहिए। वेद मे तो सारी वसुधा को ही मातृभूमि बताया गया है।

कहने का आशय यह है कि जिसे हम मातृभूमि मानते हैं उसके प्रति उस पर बसने वाले सभी जनों के प्रति प्रेम और सदभावना के भाव को बनाए रखना चाहिए। सभी के सुख–दुख को हानि–लाभ को उन्नति–अवनति को अपना समझकर सब के साथ यथायोग्य व्यवहार करें। जो भी वस्तुयें एवं पदार्थ भूमिमाता से प्राप्त करें, उसे केवल अपना अधिकार न समझें बल्कि बांटकर उपयोग करें। जिससे धरती पर सुमंगल की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहे।

मातृभूमि के इस स्तुतिगान प्रार्थना में वेद का दिया हुआ उपदेश हम सभी को मातृभूमि के प्रति कर्तव्य का ही बोध नहीं कराता बल्कि यह भी समझाता है कि मिट्टी पत्थर व धूल–सी दिखाई पड़ने वाली ये भूमि मिट्टी का ठेर नहीं बल्कि इसका प्रत्येक मानव से जीवन्त सम्बन्ध है।

27

वृक्ष और वनस्पतियों से विभूषित मातृभूमि

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि।।

शब्दार्थ– (यस्याम्) जिस भू–माता पर (वानस्पत्याः) छोटी–बड़ी वनस्पतियों से संजित (वृक्षाः) सुन्दर वृक्षों से (विश्वहा) निरन्तर चलायमान (ध्रुवाः) धैर्य पूर्वक (तिष्ठन्ति) निवास करते हैं या खड़े हैं (विश्वधायसं) सदैव सबको धारण करती है (धृताम्) संरक्षित की गई या धारण की हुई (पृथिवी) भू माता के प्रति (अच्छ वदामसि) प्रशंसनीय भाव से अभिवादन करते हैं।

भावार्थ– धरती पर विविध प्रकार की वनस्पतियाँ, औषधियाँ और अन्य प्रकार के उपयोगी वृक्ष एवं लताएँ हैं। इनका उपयोग हम करते हुए सदा मातृभूमि के प्रति नतमस्तक बनें रहें, क्योंकि ये सभी वस्तुएँ हमें मातृभूमि से ही प्राप्त होती हैं। हम सदा ऐसे ही कर्म करें जिससे धरती पर सुमंगल, स्वस्थ विकास और खुशहाली की धारा बहती रहे। मंत्र में इन्हीं भावों की चर्चा की गई है। वनस्पतियों, औषधियों और वृक्षों से कटाव तो रुकता ही है, वर्षा भी इन्हीं के कारण होती है और पर्यावरण की रक्षा भी। इन वनस्पतियों और वृक्षों के संरक्षण की बात पर मंत्र में अधिक जोर दिया गया है। हमें मंत्र से प्रेरणा ग्रहण कर एक श्रेष्ठ समाज, प्रगतिशील राष्ट्र और उन्नत संस्कृति के लिए स्वयं को समर्पित करते रहना चाहिए, क्योंकि यही सर्वकल्याण का मार्ग है।

विवृति– भू–माता अनन्तकाल से सुन्दर वनस्पतियों, वृक्षों और लताओं से अच्छादित रही हैं। धरती पर स्वर्ग की जो उक्ति कही जाती है, वह अतीव सुषमायुक्त वनस्पतियों एवं लताओं के लालित्य के कारण है। वनस्पतियाँ एवं वृक्षादि इस धरा के आभूषण कहे जाते हैं। धरती माँ, इनसे अतीव भूषित हो, हर क्षण शोभायमान लगती हैं। मातृभूमि की जो सबसे अद्‌भुत एवं अनुपम छटा वेद–शास्त्रों में वर्णित हैं, हम प्रजाजन इनका गुणगान करते रहते हैं। पृथ्वी माता की आभा शोभायमान एवं संरक्षित रहे, हम सब को दृढ़ता पूर्वक इस पर ध्यान देना चाहिए।

मातृभूमि सबका आधार है। इसलिए सभी मनुष्यों के लिए यह अतीव वन्दनीय है। धरती माँ, हम आर्यजनों के सुकृत्यों से सदा सुवासित रहे, चारों ओर सुमंगल गान होता रहे, मलयज पवन की तरह हमारे कर्म सबको पोषित एवं आनन्दित करते रहें, ऐसी सद्–इच्छा हम सभी में सदैव फूलती–फलती रहे। निशदिन जिस प्रकार से धरती माँ तरोताजी एवं प्रफुल्लित रहती हैं

उसी तरह का भाव हम सभी में हो।

मातृभूमि की सेवा करके हम सच्चे अर्थों में 'सेवक' एवं 'सुपुत्र' या 'भूमिपुत्र' कहलाएँ। भू–माता का अर्थ स्वयं से उद्भाषित। भू–माता जिन धर्मों के धारण करने से अनगिनत नामों से अविभूषित होती हैं, वे धर्म हर मनुष्य के लिए धारणीय एवं वरणीय हैं। पृथ्वी माँ के धर्म हममें आत्लावित होते रहे– ऐसी साधना एवं संकल्प सदैव हमारे अन्तःकरण में दृढ़ होते रहें।

मातृभूमि अपने द्वारा अनन्तकाल से शासित रही है। जैसी दृढ़ता, शक्ति, धैर्य और क्षमा भू माता में है और किसी पदार्थ, प्राणी या जन्तु में नहीं गोचर होती। धरती माता ने जितना उपकार अनन्तकाल से धरती पर निवास करने वाले प्राणियों का किया है, वह अवर्णनीय और परम वन्दनीय है। हम नर–श्रेष्ठ माँ की कृतज्ञता को अनवरत् गुणगान करते रहें। मनुजता का जो धर्म है, वह परोपकार के बदले कृतज्ञता ज्ञापन करने का बताया जाता है। हम सभी मानव धर्म (श्रेष्ठ धर्म) का सदैव पालन करते रहें। निज स्वार्थ पक्षपात, अंहकार, आग्रह या दुराग्रह वश माँ की स्तुति में कंजूसी न करें।

मातृभूमि की सेवा, संरक्षण एवं पोषण में ही हमारा ध्यान रहे। इन कार्यों में यदि किसी तरह का कोई विघ्न आता हो, तो उसे निर्भयता पूर्वक समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हो जाएँ। आइए, मिलकर हम विश्व–जन मातृभूमि की सुमंगलमय वन्दना एवं स्तुति करें।

मातृभूमि की छटा अत्यन्त अनुपम और अद्भुत है। वनस्पतियाँ, वृक्ष और तृणादि से आच्छादित भू–माता की मनोहरता भला किसे आकर्षित नहीं करती है। आकाश से बातें करते वृक्ष और उनकी शाखाएँ चारों तरफ व्याप्त हैं। ये ऐसे हैं जैसे दिन के समय भी अधियारा वहाँ दिखाई पड़ता है, दूर–दूर तक फैले जंगलों में उगे वृक्षों को देखकर एक अलग ही दृश्य उपस्थित होता है। वनों के इन वृक्षों के अतिरिक्त ऐसी भी असंख्य औषधियाँ और अन्य प्रकार की वनस्पतियाँ हैं जो सभी लोगों के लिए उपयोगी हैं। ये वनस्पतियाँ, औषधियाँ व वृक्षादि हमेशा वहाँ बने रहते हैं। इनकी स्थिरता व दृढ़ता को बनाए रखने के लिए उनकी रक्षा करने के लिए मातृभूमि के रक्षक प्रजा–जन हमेशा कार्यरत रहते हैं। हे माँ, वनस्पतियों व औषधियों की रक्षा में सभी प्रजा–जन लगे रहें ऐसा आशीर्वाद आप देती रहना।

जो वृक्ष, वनस्पतियाँ व औषधियाँ भू–माता की छाती पर उगती हैं उससे माँ की अतीव शोभा बढ़ती है। इतना ही नहीं, इन वनस्पतियों से प्रजा–जनों को अन्य अनेक लाभ भी होते हैं। इन वृक्षों व वनस्पतियों के कारण ही वर्षभर ऋतुचक्र संतुलित होकर चलता रहता है। खेती के लिए वर्षा इसी के कारण ही अनवरत होती रहती है। जो जल वर्षा के रूप में बरसता

है वह कृषि के कार्य में आता है, और नदी, नालों व झरनों में बहते हुए धरती पर हमेशा हरियाली बनाए रखने का कार्य करता है। वृक्षों व वनस्पतियों का एक बड़ा लाभ यह भी है कि अकाल जैसी स्थिति नहीं पैदा होती है। घने वृक्षों व वनस्पतियों के कारण भूमि का कटाव भी रुकता है। मरुस्थल नहीं बनते। वृक्षों की छाया के कारण गरमी के ऋतु में उतना कष्ट नहीं होता और शीतल छाया पाकर हम सुखी रहते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न उपयोग की लकड़ियाँ भी सतत् मिलती रहती हैं। पशुओं के लिए चारागाह की विधिवत् व्यवस्था भी हो जाती है। इन लाभों के कारण ही इतने अधिक वृक्ष व वनस्पतियाँ धरती पर होती हैं उतनी ही अधिक हर प्रकार की खुशहाली होती है। पर्यावरण की रक्षा वर्षा से कटाव का बचाव, जल का संग्रहण, जैसे अनेक लाभकारी बातें होती हैं। इस लिए, हम सभी को चाहिए कि इन उपयोगी वृक्षों व वनस्पतियों की रक्षा करें। इस रक्षा के कार्य से कभी विमुख न हों। जितने यत्न से इसकी रक्षा होती रहेगी विकास व खुशहाली उतने ही बढ़ते जाएँगे। मातृभूमि, (वृक्ष–छाया) के रूप में इस लिए प्रतिष्ठित हैं, क्योंकि यह वृक्षों, वनस्पतियों व औषधियों को धारण करने वाली हैं। सब का पालन व रक्षा हमारी मातृभूमि सदैव करती हैं।

हे माता! आप द्वारा प्रजा–जनों के लाभ के लिए वृक्ष, वनस्पतियों व औषधियों का सतत धारण करती हैं– यह आप की महानता है। आप ही तो हैं कि सारे प्रजाजन पशु–पक्षी व अन्य प्राणियों का पालन–पोषण करती रहती हैं। आप के इन महान् गुणों को हम सादर नमन् करते हैं। आप के इन महान् गुणों की कितनी प्रंशसा करूँ। हमारे पास न वैसी वाणी है और न शब्द ही।

मातृभूमि के स्तुति गान के इस प्रेरक वेद के उपदेश में यह कहा गया है कि मातृभूमि इसके प्रजाजन और अन्य प्राणियों की खुशहाली के लिए वनस्पतियों, वृक्षों व औषधियों की सतत् रक्षा करते रहें। जंगल मातृभूमि के अनमोल सम्पत्ति हैं। इन जंगलों को धारण करने के कारण ही मातृभूमि को (विश्वछायाः) कहा जाता है। हम सभी ऐसी महान् भू–माता का सादर अभिवादन–वन्दन करते हैं। उन सारे गुणों का भी अभिवादन करते हैं जो मातृभूमि सतत धारण करती हैं।

28

मातृभूमि में सब कल्याणकारी हों

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम्।।

शब्दार्थ– (उदीराणाः) चहल कदमी करते हुए या उठते हुए (उत आसीनाः) और बैठ हुए (तिष्ठन्तः) जब खड़े हों (प्रक्रामन्तः) आगे बढ़ते हुए (दक्षिणासव्याभ्याम्) दोनों पैरों से (भूम्याम्) धरती को (मा व्यथिष्महि) किसी को कष्ट न दें, व्यथा को प्राप्त होना।

भावार्थ– भू–माता प्रजा–जनों को ही नहीं सकल पृथ्वी लोक के प्राणियों और अप्राणियों की हर प्रकार से आधार हैं। सब का कल्याण चाहने वाली हमारी मातृभूमि सबका पालन और पोषण भी करती हैं। मंत्र का भाव यह है कि हम प्रजा–जनों का चाहिए कि मातृभूमि को किसी प्रकार का कष्ट, क्षति या दुख कभी नहीं पहुँचाएँ। प्रार्थना की गई है कि मातृभूमि सभी मानवों में ऐश्वर्य–रूपी सद्गुण भर दें। कभी कोई अपने कर्तव्य से च्युत न हो अपितु मातृभूमि और समाज के कल्याण के लिए ऐसे रत रहे, जैसे सूर्य, चन्द्रमा और अन्य ग्रह–नक्षत्र अपने कार्यों में रत रहते हैं। जो भी हम कर्म करें– उसे कर्तव्य की भावना से सावधानी और विचार पूर्वक ही करें। अपने निहित स्वार्थ में दूसरों के स्वार्थ की क्षति न पहुँचाएँ जिससे धरती पर शुभत्व और विकास का मार्ग सतत् प्रशस्त होता रहे।

विवृति– हमारी मातृभूमि सबका सब विधि से व्यवस्था देने वाली हैं। इनकी व्यवस्था व गुणों का वर्णन अवर्णनीय है। महिमा और गुणों की तो सागर ही हैं। भू–माता की व्यवस्था, इतनी अनुपम और अदभुत है कि कोई किसी प्रकार से दुख या व्यथित नहीं होता है। सब की माँ होने के कारण मातृभूमि सब के लिए प्रिय हैं। हम सभी को उठते, बैठते और चलते तथा खड़े हुए किसी भी दशा में अपनी भू–माता से कोई व्यथा व कष्ट नहीं मिलता है। हम प्रत्येक दशा में सुख पूर्वक रहते हैं। पुत्र को माँ से हर प्रकार से सुख ही प्राप्त होता है। क्योंकि माँ का स्वभाव ही पुत्र को हर तरह से सुख देने वाला होता है। ऐसी महिमावती माँ भला हमारे लिए क्यों नहीं वन्दनीय होगी! हे मातृभूमि! आप सब की आधार हैं। सब का पालन व पोषण आप ही करती हैं।

भू–माता वनस्पतियों प्राणियों और मनुष्यों के लिए जीवनाधार ही नहीं हैं, बल्कि सृष्टि का आधार और रात–दिवस का चक्र भी इन्हीं के कारण है। इस दिव्यतम् आधार वाली पृथ्वी माँ

के प्रति उठते, बैठते, चलते, फिरते, सोते, जागते अर्थात हर क्षण कृतज्ञता के भाव से ओत प्रोत रहें। हमारे हाथ एवं पैरों से उठते, बैठते, चलते–फिरते कोई ऐसा कार्य न हो जाए जिससे धरती माता को किसी प्रकार का कोई कष्ट, क्षति या व्यथा पहुँचे। हमारे जीवन का हर क्षण विनम्रता–रूपी सद्‌गुण से आप्लावित रहे। निज स्वार्थ, आग्रह, दुराग्रह, अंहकार या आत्ममहत्व के कारण कई बार हम अपराध, पाप या अनर्थ कर बैठते हैं लेकिन यदि ज्ञानपूर्वक, ध्यानपूर्वक कर्म करते जाएँगे तो अपराध पाप या अनर्थ से हम लगातार बचते रहेंगे। अपना सुख, दूसरे का सुख एवं अपना दुख दूसरे का दुख समझने लग जाएँगे, तो अपना अंतःकरण प्रकाशित होगा ही समाज का भी बहुत भला होगा। धरती माँ की भलाई करेंगे। इससे निश्चित तौर पर अपना भी भला होगा। किसी कवि ने कहा भी है–**दुख देने दुख मिलत हैं, सुख देने सुख होय।**

मंत्र के ऋषि का भाव यह है मातृभूमि को निर्जीव मानकर इसके प्रति मनमाना व्यवहार न करें, बल्कि परमपूज्या, वन्दनीया और परम शक्तिवाहिनी मानकर इसके प्रति हम सभी सद्भावना एवं विनम्रता का भाव बनाए रहें। भू–माता के प्रति हम जितना सहिष्णु रहेंगे हम सब के अन्दर उतना ही प्राणी एवं अप्राणियों के प्रति कृतज्ञता का भाव बढ़ता जाएगा। कृतज्ञता से हमारी चेतना, बुद्धि, एवं आत्मशक्ति में पवित्रता का विस्तार होता है। हम जितना अन्दर से पवित्र और चेतस–शक्ति से पूर्ण बनते जाएँगे, हमारा जीवन–धर्म का प्रसार का दायरा भी बढ़ता जाएगा।

जीवन के लिए ऐसी कोई भी दुखदाई व्यवस्था हे माँ हमें नहीं प्राप्त है। हम सभी हर प्रकार से सुखी हैं। अर्थात् सभी प्रकार की व्यवस्थाएँ व सुख देने वाली हैं आप। हम भू–माता की गोद में सुखी होकर हर पल प्रमुदित रहें– ऐसी कामना है। हे माँ, आप जिससे दुखरहित हर दशा में व्यवस्था करके हमें सुखी बनाती हो ऐसी ही सुख से पूर्ण जीवनयापन की व्यवस्था करती रहना। आप से ऐसी हमारी विनती है।

हे मातृभूमि ! हम सभी में मानवीय परिपूर्णता बढ़ती जाए। क्योंकि परमात्मा की सृष्टि का यही लक्ष्य है। जिस मार्ग पर ऋषि, महर्षि, देव व किन्नर चलते आए हैं, वह मार्ग हम सबके लिए परम शुभकारी हो। हे भू माता, जितना हममें शुभता का भाव बढ़ेगा, उतना अशुभता का प्रतीक दुख खत्म होता जाएगा। इस लिए, हम सभी में देवत्व का भाग निरन्तर बढ़े और अनर्थकारी प्रवृत्तियाँ कम होती जाएँ।

हे मातृभूमि ! जिस तरह से हम मनुष्यों को आप हर तरह की शक्ति, सहयोग, अन्न,

जीवन और सुख प्रदान करतीं हैं, वैसे ही भाव हम सभी में बढ़ते जाएँ। यह शुभ–इच्छा हम सभी की पूर्ण करें जिससे हम सभी आप की रक्षा व पोषण कर सकें।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद का यह उपदेश अत्यन्त प्रेरक और संग्रहणीय है। मातृभूमि पर निवास करने वाले प्राणियों के लिए उस पर व्यवस्थित शासन की व्यवस्था इतनी उत्तम कोटि की होनी चाहिए कि सभी लोगों को चलते–फिरते व अपने कार्यों को सम्पन्न करने में कभी भी किसी प्रकार की समस्या न आए। कोई दुख या कष्ट का अनुभव न करे। अर्थात् शासन और प्रजा–जनों का सम्बन्ध पूरकता का होना चाहिए। प्रतिकूलता का नहीं। ऐसी व्यवस्था से ही मातृभूमि के निवासी आगे बढ़ते हुए अपने कार्यों को पूरा करने में सफल होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जब शासन की व्यवस्था हर प्रकार से चाक–चौबन्द रहती है तब सब कुछ व्यवस्थित रहता है।

29

शुद्ध, पवित्र और क्षमाशील मातृभूमि

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि निषीदेम भूमे।।

शब्दार्थ– (विमृग्वरीम्) सतत् अन्वेषण के योग्य या शुद्ध करने वाली (पृथिवीं) अत्यधिक विस्तारवाली (क्षमाम्) अतीव क्षमा करने वाली (ब्रह्मणा) वेद–ज्ञान से युक्त और परमात्मा द्वारा (वावृधानाम्) निरन्तर अग्रसित होती हुई (ऊर्जम्) शक्ति सम्पन्न (पुष्टम्) पोषण से युक्त (अन्न भागम्) जिससे जीवन चलता है (घृतम्) तेज युक्त या घृत को (भूमिम्) मातृभूमि को (आ वदामि) मैं आवाह्न करता हूँ (भूमे) हे भू–माता! (त्वा) तुझसे, हम (अभि नि षीदेम) सदा आश्रय प्राप्त करें।

भावार्थ– मंत्र में उत्तम ढंग के व्यवहार द्वारा मैत्री भाव को निरन्तर आगे बढ़ाने की प्रेरणा दी गई है। नियम, रीति और योग्य विधि से कार्यों को सम्पन्न करने की आदत डालें। इसके अतिरिक्त आहार–विहार, उत्तम शासकीय–व्यवस्थाओं का विकास और समाज–हित में रत रहकर मातृभूमि की सेवा का व्रत लेने पर जोर दिया गया है। मातृभूमि की कितने रूपों में वन्दना की गई हैं और वे रूप क्यों विशेष वन्दनीय हैं इसे भी समझाया गया है। मानसिक,

शारीरिक, आत्मिक और आर्थिक सम्पन्नता को हमेशा ध्यान में रखने की आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला गया है।

विवृति– हे मातृभूमि! आप 'विमृग्वरी' हैं। सबको शुद्ध करने वाली हैं। जिस प्रकार से शोधन या अनुसन्धान द्वारा शुद्धिकरण की प्रक्रिया चलती है उसी प्रकार भू–माता हमारे अंतःकरण की शुद्धिकरण करती हैं। यह मातृत्व का विशेष गुण है। भू–माता शोधन द्वारा हम प्रजा–जनों में हितकारी और पूरकता की भावनाएँ पैदा करती हैं। इससे हमारे अन्दर जो स्वार्थपरक भावनाएँ होती हैं उनका भी शमन होता है। हे माँ, आप हमारे अन्दर व्याप्त अनेक विषय–विकारों (काम, क्रोध, मद, लोभादि) को भी नष्ट कर दें और उसके स्थान पर परोपकार, संयम, करुणा, अहिंसा, प्रेम और सहानुभूति की भावनाएँ भर दें। इससे हमारा अंतःकरण शुद्ध हो जाएगा। जो विपरीत और अनरीति की भावनाएँ हैं वे भी इससे समाप्त हो जाती हैं। आप को वन्दनीय मानने से, शासन और प्रशासन दोनों द्वारा की गई व्यवस्थाएँ, उत्तम बन जाती हैं। नगरों और ग्रामों की व्यवस्था भी उत्तम बनी रहे। इससे प्रजा–जनों का व्यवहार व रहन–सहन भी अच्छा रहता है। आचार–विचार, खान–पान सभी शुद्ध बने रहते हैं। शुद्ध और उत्तम प्रकार से सड़कें, नालियाँ, घर व गलियाँ भी उत्तम ढंग से बनी रहती हैं। यह सब मातृभूमि की कृपा के कारण होता है।

हे मातृभूमि! आप के विशाल क्षेत्र पर ज्ञान–विज्ञान और अन्वेषण करने वाले विज्ञानी जन विश्वकल्याण हेतु धर्म कार्यों में रत रहते हैं। अनेकानेक अन्वेषक नई–नई खोज करके प्राणी मात्र के सुख, सुविधा और शान्ति कार्यों को निरन्तर आगे बढ़ाते रहते हैं।

हे भू–माता! आप अत्यन्त क्षमाशील, पवित्र और प्राणी मात्र को सदैव आश्रय प्रदान करने वाली हैं। प्रजाजन मानवता के कल्याण हेतु आप का निरन्तर आश्रय लेते रहते हैं। आप के परम पावन रूप की हम सभी स्तुति एवं वदंना करते हैं। माँ, आप की ऊपरी सतह पर जो विविध प्रकार के बलवर्द्धक खाद्य पदार्थ, अन्न–जिससे शारीरिक, मानसिक एंव आत्मिक बल की वृद्धि होती है हम सभी के लिए सदैव कल्याणकारक हों। धरती माता अनन्तकाल से जिस प्रकार प्राणी–अप्राणी का परोपकार करती आ रही हैं,, वह अभिनन्दनीय एवं स्तुत्य है। हममें बल, सामर्थ्य और वेद–ज्ञान निरन्तर बढ़े, ऐसी प्रेरणा हम सभी में सदैव देती रहें।

हे भू–माता। आप में अनन्त बल, सामर्थ्य, क्षमता, क्षमा, सहनशीलता और पवित्रता समाहित है। हम सभी पुरुषार्थ करके जीवन के लक्ष्य–चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने वाले होएँ। विश्व समाज का हित हम सभी को निरन्तर पवित्र, ज्ञान–युक्त और क्षमतावान् होने में है। हम सभी निरन्तर उन पदार्थों, तत्त्वों एवं ज्ञान–शक्ति का खोज करते रहें जिससे सभी का कल्याण हो

और सुख की प्राप्ति हो। शुभ, अमृत और शान्ति हमारे जीवन का आधार हों। हम सभी मिल कर उन तत्त्वों एंव पदार्थों की खोज करें जिससे ज्ञान–विज्ञान का विश्व में विस्तार हो। हे माँ, आप का क्षेत्र जिस तरह से विशाल, लम्बा और चौड़ी फलक वाला है, उस पर हम सभी को अन्न–अन्नादि, बलवर्द्धक, धृत प्राप्त होता रहे, और मृत्यु से बचाने वाला अमृत–तत्त्व प्राप्त करके दुखों से मुक्ति प्राप्त करें।

मातृभूमि पर बसने वाले सभी लोगों में अतीव प्रेम, एकता और सद्भावना बनी रहनी चाहिए। एक दूसरे को सहायता पहुँचाने, गलती होने पर क्षमा करने और स्वच्छ बने रहने की प्रवृति भी निरन्तर बनी रहनी चाहिए। यह सब मातृभूमि को श्रेष्ठ गुणों के कारण संभव हो पाता है। भू–माता से अनेक गुणों के प्राप्त करने के लिए हमें सत्साहस प्राप्त हो। जो दैवीय–वृतियाँ नीचे दबी रहती है, जैसे राख के नीचे आग दबी रहती है, उन्हें आत्म–अन्वेषण द्वारा हम प्राप्त करने में सामर्थ्यवान् बनें। स्पष्ट है सात्विक प्रवृतियों को जगाने के लिए भी अन्वेषण की आवश्यकता होती है। तात्पर्य यह है कि मातृभूमि पर बसने वाले प्रजा–जनों को सतत् अन्वेषण करते रहना चाहिए।

हे माँ! आप कई कारणों से 'विमृग्वरी' हैं। शोधन, अन्वेषण व अनुसन्धान को 'विमृग्वरी' कहा गया है। हे भू–माता, आप अन्वेषणशीला हो। प्रजाजन नित् नये अन्वेषण करते रहते रहते हैं। इस लिए आप 'विमृग्वरी' हैं। अन्वेषण के माध्यम से नये–नये आविष्कार होते हैं। इससे ज्ञान मिलता है जो सत्य भाषित करने के लिए आवश्यक है।

हे माँ! धैर्य, सहनशीलता और शक्ति की आप भण्डार हैं, इस लिए भी 'विमृग्वरी' कही जाती हैं। आप के वात्सल्यमयी गोद में पलने वाले मानव की हर अच्छी बुरी गतिविधियों और क्रियाओं को धैर्य पूर्वक सहती हैं। आप के भौतिक शरीर पर चलने वाले शासन की व्यवस्थाएँ सुचारू पूर्वक चलती रहें ऐसी प्रेरणा देती रहना अर्थात् सभी लोगों में सहनशीलता, धैर्य और क्षमा जैसे सद्गुण दृढ़ हों। सभी के आपसी सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हों। सभी सुखी हों। हे मातृभूमि, सुख को देने वाली और आश्रय प्रदान करने वाली आप ही हैं। शासक और उसके प्रजा–जनों की सारी व्यवस्थाएँ उत्तम कोटि की बनी रहें ऐसी प्रेरणा इन्हें देती रहना।

हे भू–माता!, आप अनवरत् वृहद् होती रहती हैं अर्थात् वेद–ज्ञान का विस्तार होता रहता है। इससे आप वृहद होती हैं। ब्राह्मण वावृधाना की संज्ञा आप के लिए इस अर्थ में उपयुक्त है। सभी जन वेद–ज्ञान के स्वाध्यायी बनें। विविध विधाओं को पढ़कर स्वयं को प्रज्ञावान् बनाते हुए तदनुसार जीवन व्यतीत करें। उत्तम आचरण से ही स्वयं के साथ–साथ समाज और राष्ट्र की भी उन्नति होती रहती है। हे माँ! ज्ञान–विज्ञान के भण्डार वेद को पढ़ने और तदनुसार

आचरण करने वाले ब्रह्म कहे जाने वाले ब्राह्मणों से भी आप का विस्तार विद्यावाहनी के रूप में होता है। वेद–विद्या का पठन–पाठन के लिए तप, संयम, त्याग और सत्य की आवश्यकता होती है। अहिंसा का पालन करना इनको अपना स्वभाव बनाना पड़ता है। निष्पक्ष होकर कर्मो का विस्तार करना होता है ऐसा आचरण जो करते हैं, वे ही ब्राह्मण कहे जाते हैं। हे माँ! ब्राह्मण का वर्ण चुनने वाले लोगों में परोपकार, क्षमा, सत्य, अहिंसा, न्याय, प्रेम, पवित्रता और धर्मशीलता सतत् बनी रहे ऐसी कृपा करती रहना। हे सद्गुणी ब्राह्मणों की हे माता! आप वृहद् होती हैं जिससे ब्राह्मणवृत्ति वाले लोगों की सतत् उन्नति होती जाती है।

हे मातृभूमि! आप के वृहद होने के अनेक कारण हैं। आप ब्रह्म जो ईश्वर शब्द का पर्यायवाची है, उससे भी बढती हैं, क्योंकि आप की वात्सल्यमयी गोद में पलने वाले सभी प्रजाजन ईश्वर–विश्वासी और ईश्वर–आराधक हैं। ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त कर जो ज्ञान, कर्म व उपासना में प्रवृत्त होते हैं इससे वे महान् बन जाते हैं। इससे आप भी महिमावती बन जाती हैं। ब्रह्मविद्या की उन्नति से उन्नत होने वाले ब्रह्मविद्या–विभु , ईश्वर के गुणों को धारण करके दैवत्व से परिपूर्ण हो जाते हैं। ऐसे दैवी गुणों पूर्ण ब्रह्मविद्या विभुओं का पालन आप करने वाली हैं।

हे मातृभूमि! हमारी खोज (अन्वेषण) असीम हो। हम अन्वेषी होकर ऐसी बलवर्द्धक, सामर्थ्यवान् और चिन्तन बढ़ाने वाली वस्तुएँ प्राप्त करें जिससे हम सभी सर्व सामर्थ्यवान् बन सकें। हम ऐसे साधक बनें, जिससे सत्य, विज्ञान, वेद और योग विद्या प्राप्त करें, जिससे हम सभी को सारे दुखों से निवृति मिल सके।

हे धरणि माँ! आप की कृपा आप सभी के लिए वरणीय और धारणीय हो। आपका सम्बल हमारे लिए परम अवलम्बन है। आप का अवलम्बन परमेश्वर की अनुकम्पा का ही प्रतिफल है। हम सभी का दुख आप की प्रेरणा से खत्म हो ऐसा आशीर्वाद दीजिए।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद का यह उपदेश अत्यन्त रोचक और ज्ञानवर्द्धक है। सभी लोगों–जिसमें ब्राह्मण, शासक और प्रजा–जन सम्मिलित हैं को उपदेश देते हुए कहा गया है कि सभी को शोधन व अन्वेषण के द्वारा स्वयं को शुद्ध बनाना चाहिए। हर तरह की शुद्धि से सभी पूर्ण बनें, ऐसा प्रयत्न करते रहना चाहिए। सभी में धैर्य, सहनशीलता, क्षमा, अहिंसा, प्रेम, न्याय और परोपकार की प्रवृति हमेशा बनी रहे। ईश्वर–भक्ति व आध्यात्मिकता की धारा प्रत्येक मनुष्य में बहती रहे और सभी मिलकर एक दूसरे की सहायता करते हुए उन्नति करें और सुखी बनें। इससे ही समाज व राष्ट्र की उन्नति होती है।

30

हमारा व्यवहार यथायोग्य और सन्तुलित हो

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः।
पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि।।

शब्दार्थ– (नः तन्वे) निज काया हेतु (शुद्धा) पवित्र (आपः) जीवनरक्षक जल (क्षरन्तु) अहिर्निश रूप से प्रवाहमान् होता रहे (नः) हमारे लिए (यः) जिससे या जो (अप्रिये) जो आत्मानुकूल नहीं है (सेदुः) उसे अलग कर दें या नाश करने वाला व्यवहार (पवित्रेण) अपने तईं पवित्र भावना से (उत् पुनामि) उससे विशुद्ध कर के (निदध्मः) समर्पित भाव से (मा) निज से या अपने आप को (तम्) कर्म से (पृथिवि) हे भूमिमाता।

भावार्थ– व्यवहार, स्वभाव और कर्मों की मधुरता की प्रेरणा देने वाले इस मंत्र में जल की महत्ता, उसके उपयोग और लाभ के सम्बन्ध में बताया गया है। मातृभूमि पर प्रवाहित होने वाले जल की भाँति हमारे विचार और कार्य प्रगतिगामी हों, ऐसा स्वभाव और आदत बनाने चाहिए। व्यवहार की कुशलता से बिगड़े कार्य भी बन जाते हैं। इससे जहाँ आपसी प्रेम बढ़ता है वहीं पर परिवार, समाज और राष्ट्र में उत्तम वातावरण तैयार होता है। हमारा मन, चित्त और हृदय सदैव पवित्र बना रहे– इसके लिए आवश्यक है हमारे विचारों में सदैव पावनता हो, शुभता और सत्यता हो।

विवृति– हे भूमिमाता! आप की वात्सल्यमयी गोद में जीवन का आधार कहा जाने वाला जल अहिर्निश बहता रहता है। सभी प्रजाजन उससे अपनी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताएँ पूर्ण करते हैं। स्नान करते हैं। वस्त्र धोते हैं। पात्रों को धोकर साफ करते हैं। पान करके शरीर की रक्षा करते हैं। इसके अतिरिक्त, उन सभी कार्यों में प्रयोग करते हैं जहाँ जल की उपयोगिता है। हे माता, पवित्र जल सभी प्रजा–जनों को सदैव प्राप्त होता रहे जिससे वे अपनी सभी आवश्यकताएँ पूरी कर सकें।

हे मातृभूमि! हम अप्रिय व्यवहार आपस में कभी न करें। क्योंकि व्यवहार से ही उन्नति और अवनति का निर्धारण होता है। व्यवहार से व्यक्ति ही नहीं समाज व राष्ट्र भी प्रभावित होते हैं। उत्तम व्यवहार से व्यक्ति में उत्तमता आती है और नीचे श्रेणी के व्यवहार से नीचता। उत्तम व्यहार से कल्याण की धारा बहती है और गन्दे व्यवहार से अकल्याण होता है। इस लिए हे माँ! हम व्यवहार कुशल बनें रहे ऐसी प्रेरणा सदैव हमें देती रहें। हममें से कोई एक भी द्वेष

करने वाला न हो। सभी में प्रेम की भावना अतीव स्फुटित होती रहे। व्यक्ति, समाज व राष्ट्र सभी की उन्नति का आधार आपसी प्रेम की भावना का पोषण और द्वेष की भावना की समाप्ति होता है। इस लिए हमारे स्वभाव में मधुरता हमेशा बनी रहे।

धरती माता पर निवास करने वाले हर व्यक्ति का आचरण ऐसा पावन हो जो सब को एक दूसरे को प्रिय बनाए। कहने का तात्पर्य यह है कि आचार–विचार की शुद्धता का ध्यान होना चाहिए। यह स्वयं को श्रेष्ठ बनाने के लिए तो आवश्यक है ही समाज व राष्ट्र की उन्नति के लिए भी जरूरी है।

भूमिमाता हम मनुष्यों (प्राणियों एवं अप्राणियों) की रक्षा हेतु निरन्तर जल स्रोतों द्वारा हमें नवजीवन प्रदान करतीं हैं। जल ही जीवन है। हे मातृभूमि, हमारे तन, मन, हृदय और समाज की निर्मलता के लिए सदैव जल का प्रवाह बहता रहे। जिस तरह से जल से काया शुद्ध होती है उसी तरह से जल–रूपी तप से आत्मा में पवित्रता आती है। हम न किसी का कभी अप्रिय सोचें और न ही हमारा कोई अप्रिय करे। अर्थात् सभी जन एक दूसरे से पवित्र जल की भाँति सबके लिए परमार्थ की भावना से ओत प्रोत रहें। जल का धर्म निरन्तर प्रवाहित होना और नव जीवन प्रदान करना है। ऐसा ही धर्म–कर्म हम सभी में प्रवाहित होता रहे। वैसा व्यवहार मुझमें से कोई न करे, और मैं भी वैसा ही व्यवहार करूँ, जो सबको सुखद लगे और हर तरह से शुभ हो। अशुभ और अप्रिय कर्म से समाज में विद्रूपता और विंगतियाँ पैदा होती हैं। इसका ध्यान, हम सभी को सदैव बना रहे।

हे धरणि माता! हम सभी का पुरुषार्थ धरती के हर प्राणी और अप्राणी के लिए सुखद हो। निज आत्म महत्व, स्वार्थ और अपने–पराये के भेदभाव से दूर रहें। ये कर्म, विचार और व्यवहार समाज को उन्नति, शुभ और आदर्श (मार्यादित) बनाने में विघ्न पैदा करते हैं। हममें ऐसी प्रेरणा भर दें, शक्ति पैदा कर दीजिए जिससे मन, वचन व कर्म से हर पल जल की तरह सबके हित में कर्म प्रवाहित कर सकूँ। जल जैसा स्वभाव हम सभी का हो जाए ऐसी जीवनी–शक्ति हम सभी को निरन्तर प्राप्त होती रहे।

परमपिता परमात्मा हमारे रोम–रोम में बसता रहे। एक पल भी, वह मुझसे विलग न होए। ऐसी भावना हे माता, हममें भर दीजिए जो परमात्मा के लिए अभिप्रेरित हो। हे माता, हम सभी उद्योग करने वाले जन आपकी रक्षा करने में सदैव तत्पर रहें। जो आप को किसी तरह का नुकसान पहुँचाता है, हम सब उसे प्रेरित करके आप के प्रति कृतज्ञता का भाव भर दें।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेदमाता का उपदेश है कि सभी मानवों को उनके विभिन्न

आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शासन की ओर से स्वच्छ जल की सतत् व्यवस्था होनी चाहिए। सब को ऐसे संस्कार एवं शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे सभी का व्यवहार उत्तम कोटि का हो सके। सभी का आचरण ऐसा मर्यादित होना चाहिए कि समाज व राष्ट्र की उन्नति में सहायक हो। सभी के लिए सब में दृढ़ संकल्प बना रहे–ऐसी प्रेरणा देने की व्यवस्था होनी चाहिए। समाज व राष्ट्र का अभ्युदय शुभ संकल्पों के बिना संभव नहीं है।

31

सभी दिशाओं से सुरक्षित मातृभूमि

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः।।

शब्दार्थ– (प्राचीः) पूर्वदिशा में (याः ते प्रदिशः) चार उप–दिशाएँ– अग्नि, वायव्य, नैश्रर्तत्य और ईशान (भूमे) हे भूमिमाता! (याः उदीचीः) जो ऊर्ध्ववाली या उत्तर की ओर (ते) तुम्हारी (अधरात्) दक्षिण की ओर (याः पश्चात्) जो उसके पृष्ठभाग में है या पश्चिम की ओर (ताः) वे सब (चरते) विचरण करने वाले (मह्मम् च ते) मेरे लिए सदैव (स्योनाः) सदैव सुख देने वाली हो (भुवने) इस लोक में (शिश्रियाणः) निरन्तर आश्रय पाता रहूँ (मा निपप्तम्) अधोगामी न बन जाऊँ (प्रदिशः) दूर–दूर तक फैली दिशाएँ।

भावार्थ– विकास की सतत् धाराएं मानव को सुख, शान्ति, समृद्धि और उत्साह से भर देती हैं। प्रजा–जनों को चाहिए की विकास की धारा और अपने लक्ष्य की प्राप्ति में कभी संकल्प से च्युत न हों। मातृभूमि की रक्षा हर प्रकार से प्रत्येक दिशा से सुरक्षित करके हमें सतत करना चाहिए। इससे लक्ष्य–प्राप्ति और उन्नति अहिर्निश होती जाती है। मंत्र में प्रेरणा देते हुए कहा गया है कि सभी को मैत्री के साथ मिलकर श्रेष्ठ कार्यों में हाथ बटाना चाहिए। निःस्वार्थ भाव से कर्म करने की हमें स्वभाव बनाना चाहिए। समाज और राष्ट्र के लिए हम स्वयं को समर्पित करते जाएँ। राष्ट्र में विकास के लिए आवश्यक है कि उत्तम मार्गों का निर्माण शासन की ओर से होता रहे जिससे आवागमन में किसी प्रकार की बाँधा न उत्पन्न हो।

विवृति– हे मातृभूमि! ब्रह्माण्ड के सभी दिशाओं एवं उप–दिशाओं में व्याप्त मनुष्यगण सर्वदा सुखपूर्वक रहते हुए पुरुषार्थ के निमित प्रेरित हों। भू माता की रक्षा में रत योद्धाजन

सदैव सुखी जीवन व्यतीत करें। ऊपर, नीचे, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम की तरह उप–दिशाएँ अग्नि, वायव्य, नैश्रर्तव्य और ईशान नाम की दिशाएँ हम सभी के लिए शुभकारी एवं सुखकारी हों। हे माँ! आप अनादि काल से निःस्वार्थ एवं आग्रह के बिना सब की रक्षा करती आयी हैं। हम सभी निःस्वार्थ भाव से सिक्त (ओत प्रोत) होकर विश्व समाज के हित के लिए निरन्तर कर्म करते रहें। हम सभी ऐसे सहकर्म करें जिससे प्राणी–हित हो और समाज में स्वर्गिक वातावरण पैदा हो।

हे भूमिमाता! सतह पर निवास करने वाले प्रजाजन सतत् प्रयत्न करते हुए अपने जीवन–लक्ष्य को पाने में कामयाब हों। परमात्मा ने मानव से अतिमानव के विकास के लिए हममें हर तरह की शक्ति और साधना की विचार–शक्ति प्रदान की है। हम सभी मनुष्य जीवन के लक्ष्य के प्राप्ति के लिए संघर्ष एवं तपस्या करने में निरन्तर तत्पर रहें। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्राप्ति भू–माता के सहयोग एवं स्वतंत्रता के बिना नहीं हो सकती। इस लिए मातृभूमि के रक्षण को अपने सभी संकल्पों में सर्वोपरि मानना चाहिए।

हे भूमिमाता! हम कभी ऐसे दुर्गुणों में न फँसे जिससे जीवन–लक्ष्य अधूरा रह जाए। सद्‌गुण हमारे जीवन–विकास एवं चरित्र–निर्माण के प्रमुख स्तम्भ हैं। इस लिए इन स्तम्भों को कभी कमजोर न होने दें। जितने मजबूत जीवन स्तम्भ होंगे, जीवन में पूर्णता उतनी ही महत्वपूर्ण होगी।

हे मातृभूमि! हम निरन्तर विचार पूर्वक विचरण करते रहें। स्पष्ट है हमारे ऋषि–मुनि, सन्त, ज्ञानी, परिव्राजक एवं सिद्ध वर्षों–वर्षों से विश्व में विचरण करते रहते थे। अनुभव, ज्ञान, अनुसन्धान और विज्ञान–बोध की समृद्धि इस लिए निरन्तर होती रहती थी। हे धरणि माता! हम सभी प्रजा–जन निरन्तर विचरण करते हुए श्रेष्ठत्व को प्राप्त हों। धर्म का पालन करें और मनुष्यता के लिए ही जियें मरें। इससे कभी भी हमारा पतन नहीं होगा। वेदों का यही विकास वाला मार्ग है। हम सभी, इसी मार्ग पर चलते रहें और आपकी सेवा में सुखी अनुभव करते रहें।

राष्ट्र में शासन–व्यवस्था ऐसी हो जिससे दूर–दूर तक सभी दिशाओं में आने–जाने में किसी को किसी प्रकार का कष्ट न हो। कोई रास्ते में ठोकर खाकर गिर न पड़े। शासन की ओर से मार्ग और वीथियाँ ऐसी उत्तम कोटि की और साफ–सुथरी हों कि आने–जाने में किसी प्रकार की परेशानी न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी दिशाओं में शासन की ओर से बनाए गए मार्ग पूर्णतः सुरक्षित, सुदृढ़ और साफ–सुथरे होने चाहिए।

मातृभूमि के इस स्तुतिगान में वेद का उपदेश सब के लिए अत्यन्त उपयोगी और संग्रहणीय है। समाज व राष्ट्र की उन्नति के लिए रक्षा एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। सभी दिशाओं से राष्ट्र सुरक्षित रहे। मातृभूमि सुरक्षित रहे। प्रजा–जनों के लिए दूर–दूर तक दिशाएँ बाधा रहित हों। आने–जाने वाले मार्ग साफ–सुथरे और सुरक्षित हों। कहने का तात्पर्य यह है कि सुरक्षा के सभी पहलू उत्तम कोटि के हों।

32

मातृभूमि को हिंसा से बचाएँ

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन्परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम्।।

शब्दार्थ– (भूमे) हे भू माता! (मा पश्चात्) और पीछे से या पश्चिम की ओर से (नः) मुझे (पुरस्तात्) सामने से या पूर्व दिशा से (उत्तरात्) ऊर्ध्व से या उत्तर की ओर से (अधरात) निचले भाग से या दक्षिण की ओर से (उत) और वह (मा नुदिष्ठाः) जो परिवर्तित न हो (स्वस्ति) सबके के हित में (परिपन्थिनः) हमें जो हानि पहुँचाना चाहते हैं शत्रु (नः) हमारे लिए (मा विदन) हमारा अहित न हो, प्राप्त करें (भव) हो (किश्च) जो हमसे द्वेष करते हैं (वधम्) शास्त्र और तज्जन्य हिंसा से सम्बन्धी (वरीयः) सबका हित करती हो (यावय) पूर्ण रूप से हटा दे।

भावार्थ– मंत्र में निर्भयता, मनुष्यता और सुनीति समाज और शासन के लिए आवश्यक माना गया है। जो दुर्बुद्धि और अराजक तत्त्व मातृभूमि पर कुदृष्टि रखने की मंशा रहते हों उनके दलन की बात कही गई है। ऐसे विध्वंसकारी तत्त्वों से सावधान रहने की प्रेरणा दी गई है। मातृभूमि से प्रार्थना की गई है कि जो विध्वंसकारी तत्त्व हैं, उनको शुभ कार्यों के लिए प्रेरणा दें जिससे कोई भी व्यक्ति धरती पर प्रतिकूल आचरण न करने वाला हो। सभी में शुभ संकल्प, मर्यादा, नीति और अभय रहने की प्रवृति बने जिससे सभी हर तरह से सुखी होकर मातृभूमि को अपना योग्य अवदान समर्पित कर सकें।

विवृति– हे मातृभूमि! सभी दिशाओं में हम सब निर्भय होकर उन्नति कर सकें। ऊपर, नीचे, उत्तर या दक्षिण दिशा से अर्थात् किसी भी तरफ से कोई भी हम सब को किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सके। कोई असावधान होकर न रहे। असावधानी से हमेशा बचूँ, ऐसी प्रेरणा

सतत् हमें देती रहें। निज पुरुषार्थ करते हुए सच्चाई के मार्ग पर चलते हुए सर्वदा उन्नति करते रहें अर्थात् मनुष्यता धर्म का त्याग कभी न करें। हम सभी में उन्नति की दृढ़ इच्छा–शक्ति अनवरत् जागृत रहे। सब का हित करना हम सभी का उद्देश्य हो। आन्तरिक सौन्दर्य की वृद्धि निरन्तर हो ऐसा कर्म सतत् करते हुए अग्रसित हों।

हे भू–माता! हमें जो परास्त करना चाहते हैं या हानि पहुँचाना चाहते हैं, उन्हें आप नष्ट कर दें। हम सभी अजात शत्रु बनें। अर्थात् निर्भयता का वातावरण पूर्णतः चतुर्दिक छाया रहे जिससे सुख, आनन्द और मैत्री–पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें। हम सभी विवेक, चेतना और बुद्धि से बलवान बनें। कूटनीति, युद्धनीति और सुनीति से हम सभी ओत प्रोत हों। जिससे मातृभूमि के नाशकों का दलन हर तरह से कर सकें। दैवीय–शक्ति हममें दीव्यमान हो। हम अनाथ कभी न हों।

हे धरती माता! आप सर्वदा–सर्वथा निःस्वार्थ भाव से सब का कल्याण करने वाली हो। ब्रह्माण्ड का कण–कण आप की दिव्यता (तेज से) से हर पल विकास कर रहा है। यह उन्नति का रास्ता प्राकृतिक रूप से सर्वदा एवं सर्वथा निर्दोष ही है। इसलिए हे मातृभूमि! हम सभी का विवेक, मन, चित्त और बुद्धि भी सदैव निर्दोष बनी रहे। स्पष्ट है हर स्तर पर मनुष्य जितना निर्दोष बनता जाता है चेतस शक्ति का समुज्ज्वल विकास उसी गति से होता जाता है।

हे मातृशक्ति–भूमे! जो अपने दुष्टाचरण से हम सभी को हानि पहुँचाना चाहते हैं, उनको शुद्धाचरण के लिए आप सदैव प्रेरित करें जिससे उनकी शक्ति स्वर्गिक वातावरण बनाने में उपयोगी हो सके। हमारी प्रार्थना है, विलगाव की जो दुर्वृति शत्रुओं या दुष्टों में बढ़ती जाती है उसे आप शुभमार्गी बनने के लिए अभिप्रेरित करें।

हे पृथ्वी माता! हमारा कर्म मानवता की सेवा के लिए हो। हम दुष्टाचरण करने वालों से आप की सुरक्षा कर सकें ऐसी अतुलित शक्ति हममें भर दीजिए।

मातृभूमि के इस स्तुतिगान में वेद का पावन उपदेश शासक वर्ग के लिए है कि वे प्रथम कर्तव्य के रूप में अपनी मातृभूमि को हिंसकों, चोरों, डाकुओं से मातृभूमि और प्रजा–जनों को बचाएँ। मार्गों की सुरक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि उन पर चलते हुए प्रजा–जनों को चोरों, लुटेरों और डाकुओं का सामना न करना पड़े। हिंसा फैलाने वालों से मातृभूमि को सुरक्षित रखना आवश्यक है। राष्ट्र व समाज की प्रगति जिससे अवरुद्ध न हो।

33

जीवन भर नेत्रों में ज्योति बनी रहे

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम्।।

शब्दार्थ– (भूमे) हे भू–माता! (मेदिना) आनन्दवर्द्धक आलोक (सूर्येण) दिव्य आलोक का अक्षय स्रोत (अभि) आपकी ओर सर्वदा (ते) हम सभी या तुम्हें (विपश्यामि) सौन्दर्य पूर्ण दृष्टि से देखूँ (यावत्) और जब तक (तावत्) तब तक (उत्तराम्–उत्तराम् समाम्) निरन्तर आगे–आगे (सर्वदा) बढ़ता रहूँ (मे चक्षुः) मेरे नेत्रों में (मा मेष्ट) कभी कमजोर न हो अर्थात् सर्वथा व सर्वदा ज्योति बनी रहे।

भावार्थ– आँख है तो जहान् है इस कहावत को इस मंत्र में चर्चा की गई है। आँख मुख्यतः दो प्रकार की मानी गई है। एक वाह्य आँख और द्वितीय आन्तरिक आँख। हमारे दोनों आँखों में शक्ति और सामर्थ्य हो ऐसी भावना की गई है। सूक्ष्म और स्थूल तत्त्वों और आन्तरिक रहस्यों को जानने के लिए यह आवश्यक है कि वाह्य आँख की तरह ही हमारी आन्तरिक आँख सक्रिय रहे। जीवन भर आँखों में ज्योति बनी रहने के लिए मानव को आँखों की निरन्तर सुरक्षा करना आवश्यक है। मातृभूमि से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि आयु भर आँखों में ज्योति बनी रहे जिससे हम अपने कार्यों को ही न भली प्रकार से सम्पन्न कर सकें अपितु मातृभूमि को अपलक देखते हुए सुरक्षा भी करते रहें।

विवृति– हे भूमिमाता! आप जिस सूर्य के प्रकाश से प्रतिदिन प्रकाशित होती हैं, वह तो मेरा सबसे प्रिय मित्र है। उसकी ऊष्मा और ऊर्जा हमारे लिए हर तरह से हितकारी है। ऐसे सच्चे और विश्वासनीय मित्र का प्रकाश हमारे नेत्रों के लिए सुखदायक है। हे माँ! उस स्नेही मित्र सूर्य के चमकीले प्रकाश से मैं आप को जीवनभर निहारता रहूँ, तब तक मेरे नेत्रों में दृश्यता बनी रहे। आप की कृपा तब तक बनी रहे, जब तक मैं आप को अपलक देखता रहूँ। इस लिए नेत्रों की शक्ति और सामर्थ्य बनी रहे और आप के अनुपम–रूपों की वर्षों–वर्षों तक– जरावस्था के वर्षों में भी देखने में सामर्थ्य रहूँ।

हे भू–माता! हमारी समस्त इन्द्रियाँ बलवान, पवित्र और दीर्घ सामर्थ्यवान् बनी रहें। हम सभी प्रकाश–रूपी ज्ञान और दिव्य–दृष्टि से हर सूक्ष्म एवं स्थूल रहस्य को सर्वदा जानने में सामर्थ्यवान् होएँ। परमात्मा की अतीव अद्‌भुत कारीगरी को जानने में सामर्थ्यवान् (क्षमतावान्)

हों। यह सारी सृष्टि आनन्द के लिए है। परमेश्वर की दिव्यतम कृतियों में प्रकाश का दिव्य एवं अक्षय स्रोत भगवान् भास्कर एवं अन्य सौन्दर्ययुक्त कृतियों का हम सब गुणवान करें।

हे मातृभूमि! परमपिता की यह रहस्यमय सृष्टि को जानने के लिए हम सभी अनुसन्धान विज्ञानी बनकर जगत् का कल्याण करें। हमारी शरीर (उसकी) सभी इन्द्रियाँ दीर्घजीवी हों। हम कभी इन्द्रियों का दुर्व्यापार न करें। सभी इन्द्रियाँ सद्कर्म में सतत् रत रहें। किसी भी इन्द्रिय से किसी प्रकार का अनर्थकारी कार्य न हों। यह चिन्तन का विषय है कि इन्द्रिय–धर्म का पालन (मर्यादा) हमारी इन्द्रियाँ कर रहीं हैं कि नहीं। इन्द्रिय–धर्म का पालन करने वाला ही साधक और सर्वहितैषी बन सकता है। धरती माता की रक्षा, पोषण और संरक्षण इन्द्रियों के सदुपयोग एवं सामर्थ्यवान बनने से ही हो सकता है। विचलन से हम सदैव बचते रहें।

हे माता! आँखों की ज्योति जीवनभर बनी रहे, यह तो आवश्यक है ही, मेरी इन्द्रियाँ भी जरावस्था तक स्वस्थ और बलवान् बनी रहें– जिससे जीवन के सभी उत्तम कार्य मर्यादापूर्वक संपादित करता रहूँ। तात्पर्य यह है, नेत्रों की ज्योति और इन्द्रियों में शक्ति बनी रहने से मातृभूमि की उन्नति हेतु सभी कार्य भली प्रकार सम्पन्न किये जा सकते हैं। आवश्यकता है नेत्रों की ज्योति बनाए रखने और इन्द्रियों में शक्ति व सन्तुलन को बनाए रखने के लिए, ऐसा आचरण करना चाहिए जो इनमें सहयोगी बने। नेत्र भी एक इन्द्रिय है लेकिन अन्य इन्द्रियों से इसका कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि सारा जगत् इसी से द्रष्टव्य होता है।

हे धरती माता! जिस प्रकार परमात्मा का दिव्यतम् तेज स्रोत तेज के रूप में भास्कर हर पल ब्रह्माण्ड का सर्वकल्याण कर रहा है उसी तरह हम सभी प्रजाजन अपने अन्तर–आलोक से विश्व समाज को सुखी बनाने के लिए हर पल प्रयत्न करते रहें। हम सभी को धरती से परिश्रम पूर्वक अन्न, अन्नादि पैदा करके ही भोजन करना चाहिए। पृथ्वी माता हम सभी को धन–धान्य, दूध, पूत विद्या व ज्ञान सतत् प्रदान करती रहे,– जिससे कभी किसी वस्तु या पदार्थ की कमी न हो। हमारे नयनों में जीवन भर ज्योति बनी रहे– जिससे धरती, आकाश और पाताल में स्थित वस्तुओं एवं पदार्थों को देख सकूँ।

हमें प्रतिदिन परमात्मा से नेत्रों की ज्योति और सभी इन्द्रियों में शक्ति व सामर्थ्य बनाये रखने की प्रार्थना करते हुए इनकी रक्षा व पोषण पर विशेष ध्यान देकर इन्हें पूर्ण आयु तक अपनी संगी बनाना चाहिए।

हे मातृभूमि! हम सभी की अभीप्सा है–आपकी प्रेरण व शक्ति हमारे हर कार्यों की गति एवं पवित्रता प्रदान करे। हम शारीरिक एवं बौद्धिक–रूप से अक्षम न हों अर्थात् जगतहित के लिए स्वाहित का त्याग करने में कभी हिचकिचाएँ नहीं। परिश्रम ही सफलता का एक रास्ता है।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद माता का उपदेश मानव मात्र को यह संदेश दे रहा है कि मातृभूमि पर शासन करने वाले प्रबन्धकों को प्रजा–जनों के लिए ऐसी सुन्दर और उपयोगी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे मातृभूमि की उन्नति हेतु किये जाने वाले उत्तम कार्यों का विधिवत् निरीक्षण–परीक्षण कर सकें। नेत्रों में ज्योति अन्तिम श्वास तक बनी रहे। सभी प्रजा–जनों को चाहिए कि नेत्रों की ज्योति को जरावस्था तक बनाए रखने के लिए इसकी भली भाँति रक्षा करें। यह स्वयं के लिए ही लाभकारी नहीं है बल्कि समाज व राष्ट्र के लिए लाभकारी है।

34

हम सुख की नींद सोयें

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम्।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्पृष्टीभिरधिशेमहे।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि।।

शब्दार्थ– (भूमे) हे भू माता! (यत्) और जब (शयानः) निद्रा में अविरत् (दक्षिणाम्) दाहिने और (सव्यम्) बाएँ ओर सर्वदा (पार्श्वम् अभि) पार्श्व में या करवट (पर्यावर्ते) और करवट जब लूँ (उत्तानाः) उतान होकर या चित्त होकर (प्रतीचीम्) पश्चिम दिशा में पाँव करके (पृष्टीभिः) पीठ के बल (शेमहे) नींद लें (सर्वस्य प्रतिशीवरि) सब को सर्वदा सुलाने वाली (भूमे) मातृभूमि (तत्र) वहाँ भी या उस अवस्था में (नः) हम (सभी को) (मा हिसीः) हमारा विनाश न हो।

भावार्थ– जिस वसुधा पर हम प्रजाजन रहते है उसे बिना किसी भेदभाव के पृथ्वी माता आश्रय ही नहीं देती अपितु सबको अन्न, फल, जल और पर्याप्त वायु भी– जीवन–चक्र को सुचारु–पूर्वक चलाने के लिए सृष्टि में व्यवस्था की हुई है। समाज और राष्ट्र में शासन–व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि कोई भी व्यक्ति भूखा न सोए। रात में सभी सुख की नींद सोयें ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए। एक खुशहाल राष्ट्र की यह पहचान होती है। मंत्र में कहा गया है कि हमारे अन्दर विश्वबन्धुत्व की भावना सतत् बनी रहे और सभी प्रजा–जनों में न तो कभी हिंसा की भावना का उदय हो और न ही कोई किसी को दुख दे या प्रताड़ित ही करे। एक मानव का दूसरे मानव के प्रति हमेशा संवेदना बनी रहे। सभी एक दूसरे के सुख–दुख में काम आएँ ऐसा स्वभाव बनाना चाहिए।

विवृति– हे मातृभूमि! आप की वात्सल्यमयी गोद में बसने वाले प्रजा–जनों को आप सदैव सुख देती हो। इस लिए आप 'प्रतिशीवरी' कही जातीं हैं। जिस प्रकार से बच्चा अपने माँ की गोद में निश्चिन्त होकर सुख की नींद सोता है वैसे ही हम आप की गोद में निश्ंचिन्त होकर सोते हैं। भूखे पेट सोने वाला कोई नहीं और न ही कोई निर्धन ही है। सब के शरीर पर पर्याप्त वस्त्र हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि नींद न आने का कोई कारण नही है। सुख की नींद सोना सुखी होने का ही प्रमाण है।

हे भू माता! हम सभी प्रजाजन दाहिने, बाएँ और उतान– जब भी निद्रा लें, आपका संबल बराबर मिले। पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण की शक्ति होती है। यह गुरुत्वाकर्षण की शक्ति हर वस्तु को नीचे की ओर खींचती है। हे माँ! जिस तरह से गुरुत्वाकर्षण शक्ति से हर वस्तु नीचे की ओर खिंचती चली आती है, वैसा ही आकर्षण हम सभी में आप के लिए हो अर्थात् मेरे सद्धर्म एवं सद्कर्म से विश्व समाज में व्याप्त दुर्वृत्तियाँ समाप्त होकर सद्वृत्तियों में परिवर्तित हो जाएँ। वैज्ञानिकों का अभिमत है कि धरती पर नंगे बदन लेटने से धरती के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक एवं प्रवृत्तियात्मक आयामों पर पड़ता है। इसलिए धरती माँ के सम्पर्क में हम सभी को किसी न किसी रूप में रहना ही चाहिए।

हे भूमिमाता! हम सभी में संवेदना गहरे तक स्थापित रहे अर्थात् मानव का मानव के प्रति संवेदना बनी रहे। जिस तरह का प्रेम गौ माता का बछड़े के प्रति और भाई का भाई के प्रति होता है वैसा प्रेम हम सभी प्रजाजन– विश्व समाज से करते रहें। आग्रह या दुराग्रहवश किसी को अपना या पराया न समझूँ।

हे धरणि माँ! मै, आप के सम्पर्क में रहता हुआ जाने–अनजाने में अनेक तरह की मर्यादाएँ भंग करता हूँ। आपको कष्ट देता हूँ, अनर्थकारी कार्य कर डालता हूँ, फिर भी आप हमेशा हम सब को क्षमा कर देती हैं। क्षमा व दया आप के स्वभाव में है। हे माँ! हमारी संततियाँ भूल–वश या अभूलवश आप को कष्ट पहुँचाएँगी, आप उन्हें भी क्षमा कर देंगी, यह हमें भरोसा है।

हे जीवनदायिनी भार वाहनी माँ! जिस तरह से आप अपने विशाल वक्षस्थल पर निरन्तर प्रजा–जनों को आश्रय देतीं आई हैं और सतत् विकास के लिए प्रेरित कर हम सभी में शक्ति–संवर्द्धन करती आई हैं, आगे भी हम सब के प्रति ऐसा दैवीय भावना बनाएँ रहें।

हे भूमिमाता! हम सभी का जीवन अहिंसा, करुण, दया और मानस्विता से ओत प्रोत हो सके, ऐसी प्रेरण = दैवीय भाव का हम सभी में भरतीं रहें। हम सभी में शुभत्त्व प्रस्फुटित होता रहे।

हे सुषमा युक्त धारणी माँ! विश्वबन्धुत्व की भावना हम सभी के रोम–रोम में आप्लावित होती रहे। हिंसा विश्व–बन्धुत्व की भावना को तोड़ने वाली है। इस लिए माँ, हम सभी किसी भी तरह (मन, वाणी व कर्म से) हिंसा न करें। अहिंसा हमारा धर्म हो। अहिंसा हमारी शक्ति हो। इस लिए कि आप को अहिंसा प्रिय है। इसलिए हे माँ! हम कभी हिंसा के चपेट में न आएँ। धर्मच्युत हम सभी में से कोई न होए ऐसी शक्ति हम सभी में भर दीजिए।

प्रजा–जनों में कोई भी व्यक्ति अमानवीय आचरण करने वाला नहीं है। बलवान निर्बल को सताता है नहीं। जो निर्बल हैं वे भी चिंतामुक्त हैं। सब में एक दूसरे के प्रति पूरकता का भाव है। कोई अत्याचारी भी नहीं जिसके अत्याचार से निर्बल व असहाय व्यक्ति दुखी–पीड़ित होकर रात में न सो सकते हों। एक आदर्श ढंग का जैसा समाज होना चाहिए, वैसा ही है। यह सब हे माँ! आप का अपने पुत्रों के प्रति स्नेह का ही प्रतीक है।

हे माँ! हम सोते हुये हर दिशा में सुखी रहें ऐसी कृपा बनाए रखना। कहने का आशय यह है कि रात में सोने की व्यवस्था ऐसी उत्तम ढंग की होनी चाहिए कि किसी को भी किसी प्रकार का कष्ट न अनुभव हो। जिन अवस्थाओं और विपरीत स्थितियों के कारण व्यक्ति ठीक से रात में निश्चिन्त होकर सो नहीं पाता, उनको दूर करना शासन के प्रबन्धकों का है।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद का उपदेश उन राज प्रबन्धकों के लिए है जो प्रजा–जनों के लिए हर प्रकार की प्रबन्ध की व्यवस्था के जिम्मेदार हैं। राज प्रबन्धकों को चाहिए कि प्रजा–जनों के विश्राम और सोने की व्यवस्था ऐसी हो, जो कष्ट रहित हो जिससे सभी लोग निश्चिन्त होकर किसी भी करवट आराम से सुख की निद्रा लें सकें। मातृभूमि को 'सर्वस्व प्रतिशीवरी' इसी लिए कहा गया है कि वह सब को आश्रय देने वाली और सुख की नींद सुलाने वाली है। आशय यह है कि समाज में कोई भूखे पेट न हो, या कोई निर्धनता के कारण कष्ट में न रहे और अत्याचारियों के अत्याचार से पीडित न हो। दुखी व्यक्ति किसी कारण से हो, उसे रात में नींद नहीं आती है। एक आदर्श समाज और महान् राष्ट्र वही है जहाँ का हर व्यक्ति सुख की नींद लेता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शासकों को प्रजा–जनों के सुख के लिए हर प्रकार की सुव्यवस्था निर्दोष ढंग करनी चाहिए।

35

उर्वरा शक्ति से सम्पन्न हमारे खेत

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।

शब्दार्थ– (भूमे) हे भू–माता! (यत्) जो भी या जिस स्थान को (विखनामि) गहराई में खोदूँ (तत्) वह स्थान या उसे (ते मर्म मा) उस अंतःहृदय को (रोहतु) अल्प समय में पुनः उगे (विमृग्वरि) सतत् पवित्र रहकर पवित्र करने वाली (अर्पिपम्) पूर्ण रूप से सुखी (मा) हानि न पहुँचे (क्षिप्रम्) शीघ्र उगे (हृदयम्) अंतःकरण (ते) आप के द्वारा।

भावार्थ– मंत्र में कृषि–कर्म को करने वाले कृषक–जनों, पृथ्वी के गर्भ से रत्नादि धातुओं और कोयलादि निकालने वाले श्रमिक–जनों को इस बात की प्रेरणा दी गई है कि कृषि या रत्नादि निकालते समय पृथ्वी के मर्म को विदीर्ण न करें। धरती की उर्वरा–शक्ति का नाश किसी भी अवस्था में नहीं होना चाहिए। एक कुशल कृषक और श्रमिक एवं अनुसन्धानकर्ता हमेशा इन बातों का अवश्य ध्यान रखते हैं। अपने निहित स्वार्थ के लिए किसी को भी भूमि की उर्वरा–शक्ति को न तो नष्ट करना चाहिए और न तो भूमि पर कभी हिंसा की भावना से कोई कार्य ही करना चाहिए। धरती में गड्ढे खोद कर छोड़ना धरती के प्रति हिंसा करना माना गया है। जिस प्रकार से वनस्पतियों और औषधियों से आच्छादित धरती सुन्दर और शोभायुक्त लगती है वैसी ही भूमि हमें अपने कार्यों के लिए बनानी चाहिए अर्थात् पृथ्वी की शोभा नष्ट करने से सदैव बचना चाहिए।

विवृति– हे भूमिमाता! कृषि–कर्म के बिना जीवन को आगे बढ़ाना दुष्कर जानकर, आप द्वारा प्रदत्त क्षेत्र को उर्वर बनाने के लिए बहुत बार खेत को हमें खोदना पड़ता है। यह कार्य जितने विधि–विधान से (वैज्ञानिक ढंग से) किया जाता है बीज बोने पर फसल उतनी ही अच्छी मिलती है। ध्यान रखना चाहिए और संकल्प लेना चाहिए कि हम खोदने व गहरे से जोतने के दौरान धरती में निहित रोहण (उगने की) शक्ति को कभी नष्ट नहीं होने देंगे। इससे आगे भी, इस शक्ति के संचित होने के कारण, हम अच्छी फसल उगा सकेंगे। इससे एक फसल के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और तीसरी के बाद चौथी अर्थात् फसल–चक्र चलता रहेगा। हे माँ! आप के वक्षस्थल पर छोटी–बड़ी अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ उगती हैं। ऐसा लगता है जैसे कोई हरा चादर आप ने ओढ़ा हुआ है ऐसी सुन्दर

वनस्पतियों के उगते रहने के कारण आप के भूखण्ड की उर्वरा–शक्ति नष्ट नहीं होती अर्थात् बंजर–भूमि कहीं भी दिखाई नहीं देती है।

कृषक जन कृषि करने में निपुण और श्रमशील हैं। वे अपनी सरस बुद्धि से आप की उर्वरा–शक्ति नष्ट नहीं होने देते। उनकी इच्छा हमेशा यही रहती है कि जिस भूमि पर वे खेती करते हैं, उसकी उर्वरा–शक्ति निरन्तर बढ़ती रहे।

हे भू–माता! आप के भीतर असंख्य बहुमूल्य रत्न सोना, चाँदी और धातुयें भरी हुई हैं। कोयले का अथाह भण्डार भी आप में छिपा है। इन सभी को प्राप्त करने के लिए गहराई से खुदाई करनी पड़ती है। हम इन रत्नों व पदार्थों को प्राप्त करते समय यह ध्यान रखेंगे कि आप के मर्म को किसी भी प्रकार से क्षति न पहुँचे। साथ ही उर्वरा–शक्ति का भी नाश न हो। खुदाई करने वाले श्रमिक इतने कुशल हैं कि वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि मिट्टी की उपजाऊ शक्ति नष्ट न हो।

हे मातृभूमि! हम कृषि और खनिज कार्यों के लिए बराबर तुम्हारी अनेक विधियों से खुदाई करते हैं। इस दौरान यह ध्यान दिया जाना आवश्यक होता है, तुम्हें किसी प्रकार की क्षति न होने पाए कि तुम्हारे प्राण– मर्म–स्थल और हृदय को चोट पहुँचने की बराबर संभावना बनी रहती है। उर्वरा–शक्ति, रोहण–शक्ति युक्त कृषि–योग्य स्थानों को सुरक्षित रखना आवश्यक है। अन्यथा इसके नष्ट होने की संभावना बनी रहती है। हे माँ! हमें इन सभी बातों पर हमेशा ध्यान बना रहे ऐसी प्रेरणा आप देती रहें।

हे भू–माता! हम सब निरन्तर पुरुषार्थ करते हुए जीवन–विकास के लिए धरती की उर्वरता बढ़ाते रहें। उर्वरता बढ़ाने के लिए भूमि का समतल, महीन और खाद युक्त करता रहूँ। जितनी भी जीवन कल्याण की औषधियाँ हैं, रत्नादि और अन्न हैं, हम सब के लिए अह्लादकारी हों। जो भी हम सब बोएँ, लगाएँ और रोपे वे तीव्रगति से पल्वित, पुष्पित होकर फल देने वाली हों जाएँ, ऐसी कामना निरन्तर करते रहना चाहिए।

हे मातृभूमि ! आप के वक्षस्थल हृदयादि अर्थात् मर्म–स्थलों को कभी हानि न पहुँचाऊँ। धरती को माता कहने से यह भाव खुद–ब–खुद प्रकट हो जाता है कि हम पुत्र की तरह उसकी रक्षा, संरक्षण और पोषण करें। किसी भी हालात में उसको आघात न दें अर्थात् धरती को खोदकर छोड़ न दें, गड्ढे न बना दें। समतल भूमि पर औषधियाँ एवं अन्नादि पैदा करके अपना पोषण एवं सरंक्षण करें और समाज का भी। धरती माता के प्रति कभी स्वार्थ या अहंकार वश हिंसक न हों। हम सब सदा मर्यादित होकर जीवन व्यतीत करें। मर्यादा–युक्त–जीवन ही आदर्श पर अग्रसित हो सकता है।

हे धरती माँ! हम सभी कृषादि कर्म करते हुए वैभवपूर्ण जीवन गुजारें। हमें इसका ध्यान रहें, कभी अपने सुख एवं स्वार्थ के लिए दूसरे के सुख एवं स्वार्थ को नष्ट न करें अर्थात् दानवीय स्वभाव, प्रवृत्ति और कर्म से हम सभी हमेशा दूर रहें।

हम सभी ऐश्वर्यवान् बनें। ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए आप के वक्षस्थल को विदीर्ण न करें। शुभ भावना से रत्नादि व धनादि प्राप्त करें, जीवन यापन के लिए हम सभी परिश्रम पूर्वक जो धरती पर बोएँ वे फूल फलादि से ओत प्रोत कर दें। अर्थात् हम सभी रत्नादि व धनादि प्राप्त कर अघा जाएँ। हे धरणि! हम भूखे कभी न रहें। शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक (सामाजिक) पोषण के लिए जिस–जिस पदार्थ, वस्तु एवं संसाधन की हमें आवश्यकता हो, सभी प्रसन्नता पूर्वक हमें प्रदान करती रहें। हे माँ! हम सभी आप के प्रति सदैव बड़ी श्रद्धा एवं विनम्र भावना से सुआस्था प्रकट करते रहें अर्थात् आप के प्रति कृतघनता के भाव एक पल के लिए भी न आए।

हे मातृभूमि! हम सब सभी धर्म एवं शुभ कार्यों के प्रति अनवरत् जागृत रहें। आप जनजागरण प्रिय हैं। सब के अन्तःकरण में परमात्म–प्रकाश का स्फुटन हो ऐसी शक्ति हमें प्रदान करतीं रहें। सुचिता, मुदिता, प्रज्ञा, मेधादि शक्तियों से हम सभी सदैव ओत प्रोत रहें। विश्वजनों का हित इनमें निहित है।

हे भूमिमाता! पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए सतत् धर्म–मार्ग पर बढ़ते रहें। हममें से कभी कोई पीड़ित या व्यथित न होए ऐसी कृपा बनाए रहें।

भूमिमाता के स्तुतिगान में वेद माता का उपदेश कितना मर्मस्पर्शी है, कितना प्रेरणा–दायक है। उपदेश में कहा गया है कि कृषि–कार्य और खोदने के कार्य में आवश्यक सावधानी अवश्य बर्तनी चाहिए। कृषकों को कृषि विज्ञान और खदानों को खोदने वालों को भूतल या भूगर्भ विज्ञान की विधिवत् जानकारी अवश्य होनी चाहिए। इससे भूमि की उर्वरा–शक्ति और रोहण–शक्ति का नाश नहीं होता है। इससे खेती के लिए आवश्यक उर्वरा–शक्ति सुरक्षित बनी रहती है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किस कार्य के लिए कितनी भूमि, किस प्रकार खोदी जानी चाहिए अन्यथा भूमि की कई बार उर्वरा–शक्ति नष्ट हो जाती है। इस लिए शासन की ओर इस पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

36

षड् ऋतुओं वाली मातृभूमि

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्।।

शब्दार्थ– (भूमे) हे मातृभूमि! (ते ग्रीष्मः) तुम्हारा ताप या ग्रीष्म ऋतु (वर्षाणि) बरसता है, वर्षा ऋतु (शरद्) शरद् ऋतु (आश्विन–कार्तिक) (हेमन्तः) शीत ऋतु के आरम्भ का काल हेमन्त (शिशिरः) ठंठ का उफान वाला काल या शिशिर (माघ–फाल्गुन) (वसंतः) सरस ऋतु वसन्त (ऋतवः) वे ऋतुएँ (ते) तुम्हारी (हायनीः) पूरे वर्ष भर (पृथिवि) धरणि माता (विहिताः) स्थापित हुई (अहोरात्रे) दिवस–रात्रि (नः) हमारे लिये (दुहाताम्) कामनाओं को पूर्ण करते रहें।

भावार्थ– मंत्र में वर्ष भर क्रम से बढ़ने वाली ऋतुओं की विशेषता को बताते हुये इनका मानव और अन्य प्राणियों पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन किया गया है साथ ही इन ऋतुओं में पैदा होने वाले अन्न, फल, फूल, मेवे, औषधि और वनस्पतियों के लाभ और उपयोग की भी प्रेरणा दी गई है। धरती के भिन्न–भिन्न स्थानों पर वर्ष भर अलग–अलग प्रकार की ऋतुएँ होती हैं। भारत में छः ऋतुएँ और अन्य देशों में इससे भिन्न प्रकार की ऋतुएँ होती हैं। अलग–अलग स्थान पर अलग–अलग तरह के अन्न, मेवे, औषधियाँ, फल, फूल और वनस्पतियाँ पैदा होती हैं। प्रकृति की विशेषता है कि जहाँ जिस प्रकार की आवश्यकता होती है और जिस ऋतु में जो वनस्पति और औषधि पैदा होती है, वह वनस्पति और औषधियाँ अन्य किसी ऋतु में पैदा नहीं होती हैं। यह संकेत है कि वह वनस्पति और औषधि या फल–फूल उसी ऋतु में प्रयोग करना निरापद होता है। हमें चाहिए कि ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले अन्न, फल, फूल, मेवे और वनस्पतियों को ऋतु के अनुसार प्रयोग में लाएँ और जीवन को स्वस्थ बनाएँ।

विवृति– हे मातृभमि! परमात्मा ने कैसा अद्भुत अनुपम विधान ऋतुओं का बनाया है जो पूरी तरह वैज्ञानिक है। ये सभी वस्तुयें सूर्य के चारों ओर आप की परिभ्रमण से क्रमशः बनती हैं, जो ऋतु–चक्र कहा गया है। ये हैं–ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त। सभी ऋतुओं के अपने रंग–ढंग हैं। सभी के अपने–अपने प्रभाव हैं। जिनसे अलग–अलग किस्म के अन्न, फूल, फल, मेवे, औषधियाँ व वनस्पतियाँ पैदा होती हैं। जिसका लाभ मनुष्यों को ही नहीं बल्कि अन्य प्राणियों को भी प्राप्त होता है। इससे प्रजा–जनों को सुख प्राप्त होता है। विभिन्न

ऋतुओं में विभिन्न किस्म के पैदा होने वाले फूल, फल, अन्न, मेवे वनस्पतियों और औषधियों का प्रभाव भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है, इससे तन व मन दोनों में प्रसन्नता आती है। कोई ऋतु किसी अन्य ऋतु से विशिष्ट है तो कोई अन्य विशिष्टताओं से भरी हुई प्रकृति की शोभा बढ़ाती है। सभी ऋतुओं की एक विशेषता यह है कि सभी मानव सहित अन्य प्राणियों को फूल, फल, अन्न, वनस्पतियाँ व अन्य खाद्य दे जाती हैं। प्रकृति की सुषमा, इन ऋतुओं से ही शोभायमान होती है। यह शोभा देखकर मन मंत्र–मुग्ध हो जाता है। हे माँ! इन ऋतुओं के आगमन से आप की शोभा और महिमा का वर्णन शब्दों से नहीं हो सकते हैं। यह आप की महानता नहीं तो और क्या है।

हे भू–माता! आप पर बसने वाली ग्रीष्म, शरद्, शिशिर, हेमंत, वर्षा और वसंत ऋतुएँ सदा हम सब के लिए कल्याणी हों। रात–दिन हम सभी के लिए शुभकारी बनी रहें। हम सभी सदैव सभी ऋतुओं के द्वारा पोषित और सुरक्षित हो, अगम मार्ग पर बाधारहित होकर बढ़ते रहें।

हे मातृभूमि! घाम (धूप) हमें कभी व्यथित न करे अर्थात ग्रीष्म ऋतु हम सब के लिए सदैव अनुकूल बनी रहे। ताप का सहना अर्थात् तितिक्षा हममें अतीव सहनशक्ति का संचरण करती है। जो मनुष्य ताप अर्थात् घाम नहीं सह सकते, जो जल्दी घाम के ताप से व्याकुल हो जाते हैं, वे सच्चे जीवन साधक नहीं बन सकते। इस लिए हम सभी को चाहिए ग्रीष्म ऋतु की व्यग्रता से घबराएँ नहीं, अपितु प्रकृति का वरदान मानकर इसको सहन करने की शक्ति बढ़ाएँ। धरती माता, इस स्वभाव के लिए हममें शक्ति प्रदान करें। धरती पर मनुष्य ऐसा प्राणी है जो ऋतुओं के अनुसार दिनचर्या में बदलाव लाता है। ये बदलाव मनुष्य के स्वास्थ्य, आयु और कार्यों को संतुलित ढंग से करने के निमित्त आवश्यक हैं।

भारत भू–भाग पर ऋतुओं की जो विविधता पाई जाती है वह अद्‌भुत है। छः ऋतुओं वाला यह देश षड्–ऋतु–देश कहा जाता रहा है। ऋतुओं के अनुसार अनेक–अनेक पुष्प, पुष्पित हो मनुष्य को आनन्दित करते रहते हैं। हे भू–माता, यह आप की अनुपम विविधता विरदावली है। वसन्त ऋतुराज कहाता है। वसन्त के शुभागमन पर केवल वनस्पतियाँ ही पुष्पित, पल्वित और उल्सित नहीं होती, अपितु पशु, पक्षी, मनुष्य भी नव विहंगमय उत्साह से भर उठते हैं।

हे भू–माता! उक्त छः ऋतुओं से सभी प्रजा–जनों को मिलने वाले सुख, लाभ आनन्द और स्वास्थ्य की उत्तमता सदैव बनी रहे। इन ऋतुओं में पैदा होने वाले विभिन्न पदार्थों की अपनी अलग विशेषता है। यह विशेषता हम सभी को अतीव सुख व आनन्द को देने वाली होती है। ये सुख या आनन्द हमें प्रति वर्ष प्राप्त हो ऐसी कृपा हमेशा बनाए रखना।

हे महीषी! आप से संरक्षित एवं शोभित कण–कण वनस्पतियाँ, पशु,–पक्षी और मनुष्य ऋतुओं से अनुशासित और शोभित होता है। ऋतुओं के परिवर्तन से धरती का हर पदार्थ, वस्तु, प्राणी और अप्राणी का वाह्य एवं आन्तरिक बदलाव हो जाता है। यह ही सृष्टि–चक्र का रहस्य है। दिन–रात के चक्र से जिस तरह से काल की गति बढ़ती जाती है उसी तरह ऋतुओं के चक्र से अनेक तरह के परिवर्तन होते रहते हैं। हे भूमिमाता! हम प्रजाजन को निरन्तर पौष्टिक आहार, दुग्धादि प्रदान करती रहें। जिससे हम सभी पोषित, संरक्षित और शक्तिशाली हो जगत् के कल्याण हेतु अधिक से अधिक श्रम कर सकें। हे माँ!, हम सभी को कुसुमित करतीं रहें, जिससे कभी हममें निराशा का बोध न हो।

पृथ्वी माता के स्तुतिगान के उपदेश में बहुत मार्मिक बात कही गई है कि मातृभूमि की गोद में बसने वाले सभी प्रजाजन वर्ष भर ऋतु–चक्र के अनुसार आने वाले सभी ऋतुओं का महत्त्व समझते हैं। किस ऋतु में किस प्रकार की वनस्पतियाँ उगती हैं, इसका विधिवत ज्ञान सभी को करना चाहिए। इससे सभी प्रकार की वनस्पतियों का समुचित लाभ प्राप्त होने वाला सुख व आनन्द लिया जा सके। इतना ही नहीं, घर–द्वार और परिसर सजाने में इन ऋतुओं में पैदा होने वाले फूल, फल व अन्न का उपयोग किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि छः ऋतुओं का वर्षभर पूरा आनन्द उठाते हुए अपने जीवन को स्वस्थ, समृद्ध व वैभवशाली बनाने का प्रयास करना चाहिए। यह ऋतुचर्या और जीवनचर्या को समझकर और लाभकारी बनाया जा सकता है।

37

इन्द्र (सम्राट) का वरण

याप सर्पे विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः।
परा दस्यून्ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम्।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे।।

शब्दार्थ– (या विमृग्वरी) अनुसन्धानात्मक रूप से जो या शुद्ध करने वाली (अप सर्पम्) निरन्तर गतिमान या साँप की भाँति कुटिल चाल वाले (विजमाना) हिलते हुए (यस्याम्) उस भू–माता को (अग्नयः) ताप देने वाली या अग्नियाँ (अल्सु अन्तः) जल के अन्दर जो अग्नि है (पृथिवि) भू–माता (देवपीयून्) विद्वान–जनों को सताने वाले (दस्यून) दुष्ट जन (परा ददती)

निरन्तर दूर भगाती है (इन्द्रम्) ऐश्वर्यशाली सम्राट और परमात्मा (वृणाना) वरणीय (वृत्रम्) मनुजता का शमन करने वाले (शक्राय) शक्ति से पूरित या विभिन्न प्रकार के कार्य करने वाली (वृषभाय) स्वसंचालित, बलवान् (वृष्णे) प्रकाशित अंतःशक्ति (दध्रे) स्वपोषित या धारण की गई।

भावार्थ– वसुधा पर सत्य और शुभ सभी के जीवन का आधार बनें और अनुसन्धान कार्य निरन्तर चलते रहें जिससे ज्ञान–विज्ञान और धर्म का पोषण होता रहे। धरती पर देव प्रवृति के मनीषी–जनों की निरन्तर समृद्धि और दानव प्रवृति के लोगों का अनवरत् नाश या सुधार होता रहे। इससे ही मातृभूमि की समृद्धि और विकास की धारा आगे बढ़ती है। मंत्र में अग्नियों के उपयोग और मानव समाज का अग्नि से होने वाले विविध कार्यों की भी कल्याणकारी चर्चा की गई है। मातृभूमि पर वही लोग फूलते–फलते हैं जो मानवता की धारा को किंचित भी अवरुद्ध नहीं करते हैं। इसकी प्रेरणा भी मंत्र में दी गई है। सत्य और पवित्रता का संरक्षण धरती पर स्वर्गिक वातावरण के निर्माण में आवश्यक है। राष्ट्र में ऐसे इन्द्र (सम्राट) का ही वरण होना चाहिए जो हर प्रकार से प्रजा–जनों का कल्याण करने वाला और सत्य, पवित्रता तथा अन्य सदगुणों का संरक्षण करता हो।

विवृति– हे मातृभूमि! आप में जो विभिन्न प्रकार की अतुलशक्ति, अन्वेषण–प्रियता और दुष्ट–दलन की शक्ति है, वह हमें निर्भय और जिज्ञासु बनाती है। आप भूमि माता के रूप में 'विमृग्वरी' हैं। अर्थात् शोधकर शुद्ध करने वाली हैं। आप की पावन गोद में बसने वाले प्रजा–जनों का हृदय आप की महिमामयी वात्सल्य से पूर्ण मातृत्व भावना उन्हें पवित्रता प्रदान करती है। सभी लोगों में एक स्वार्थ त्याग की भावना पैदा होती है जो आप के प्रति सद्भावना पैदा करती है। एक अन्वेषी–प्रवृति का जन्म, आप की प्रेरणा से पैदा होती है। जिससे वे नये–नये आविष्कार कराने में सफल होते हैं। इस दृष्टि से भी आप 'विमृग्वरी' हैं।

भू–माता पर निरन्तर विचरण करने वालों को चाहिए कि वे अपने गहन अनुसन्धानों से विश्व कल्याण निमित्त तत्त्वों को उपार्जित करते रहें। मातृभूमि को रत्नगर्भा कह कर सम्बोधित इसलिए किया जाता है कि जितना खोजते और ढूढ़ते जाएँ उतनी ही महत्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। खोज हमारे जीवन का महत्वपूर्ण आयाम है। हम सभी को समाज कल्याण हेतु खाद्य व रत्नादि खोजते हुए, अपने आप की खोज भी चलती रहनी चाहिए। इस खोज एवं शोध से ही जीवन की अर्थवत्ता पूर्ण होती है।

हे भूमिमाता! विद्वान जन उठते, बैठते और चलते हुए ज्ञानाग्नि को उसी तरह बढ़ाते रहें जिस प्रकार से बादलों के बराबर घर्षण से बिजली निकलती रहती है।

मातृभूमि की रक्षा करने वाले विद्वान लोग निरन्तर विकास–मार्गी बने रहें। हे भू–माता!

सज्जनों की रक्षक, अनुसन्धानियों को प्रेरणा और बलशालियों को सुबल प्रदान करने वाली हो। दुष्ट–जनों के पौरुष को खत्म कर उनका नाश कर देती हो। प्रजा–जनों का संकट दूरकर उनमें निर्भयता का सद्‌गुण भर दीजिए।

धरती माँ! आप दुष्टों को नाश करने के लिए ज्ञानी सूरवीरों में बल–विक्रम और उत्साह को भरती रहती हो। इस रूप में आप सूरवीर, विद्वान–पोषिता हो। रजनीचरों के दर्प का दलन करने के कारण आप दानव–संहारिका हो। सत्य का संरक्षण एवं पोषण देने के कारण आप सत्य–संवाहिका हैं। हे माँ! आप के तो अनन्त रूप हैं। अनन्त गुण और धर्म हैं। हे महीमती, शत्रुविनाशक, सूरवीर और ज्ञानी–जनों को आप अनवरत् धारण कर समाज को अभय प्रदान करती हो। विश्व समाज में निर्भयता का वातावरण बनें, इसके लिए भय और आतंक मचाने वाले आततायियों का नाश होना आवश्यक है।

हे भूमिमाता! जिन योद्धाओं और धर्मधुरीण ज्ञानी–जनों का आप का आश्रय, आशीर्वाद और प्रेरणा मिलता रहता है वे अपनी शक्ति, भक्ति, सत्साहस, उत्साह और ज्ञान से विश्व–जनों के हितार्थ सदैव लगे रहें। विश्व–जनों के मंगल जीवन के लिए यह आवश्यक कर्म है। स्वर्गिक वातावरण धरती पर स्थापित हो– ऐसी प्रेरक शक्ति ज्ञानी सूरवीरों को मिलती रहे– ऐसी हमारी कामना एवं प्रार्थना है माँ।

हे विमृग्वरी भूमिमाता! आप सभी अन्वेषण–प्रिय अन्वेषकों को अन्वेषण करने के लिए सदैव प्रेरित करती रहें जिससे अन्वेषण की प्रक्रिया अनवरत् चलती रहे।

हे माँ! आप की प्रेरणा पाकर हममें पावनता की प्रवृति आगे बढ़ती जाती है। हम शुद्ध होते जाते हैं और सत्य के अनेक रूपों का अनुसन्धान करके नयी–नयी जानकारी प्राप्त करते रहते हैं। आप विषैले सर्पों के घातक विष से हमें सदैव बचाती हैं। इसी प्रकार, सर्प प्रकृति के विषैले और घातकी दृष्ट लोगों को भी दूर हटा देती हैं। इससे समाज में दुष्टता और राक्षसी प्रवृति बढ़ने नहीं पाती है। मातृभूमि पर चलने वाली राज–व्यवस्था चुस्त–दुरुस्त होने के कारण विषैले प्रकृति के लोगों पर अंकुश लगा रहता है। उन्हें मनमानी करने की छूट नहीं होती है, यदि किसी कारणवश विपरीत प्रकृति के लोग अपनी करतूतों से क्षति पहुँचाते हैं तो उन्हें दण्डित करने की भी पर्याप्त व्यवस्था है। उन्हें फिर स्वतंत्र रहने की छूट नहीं होती, बल्कि उन्हें कारागार में डाल दिया जाता है।

हे विमृग्वरी माता! आप ने सभी प्रजा–जनों में पवित्रता की भावना भर दी है, उससे कुटिलता की प्रकृति वाले लोग घबराते हैं। वैसे आप विषैले प्रकृति के लोगों को कभी सहन नहीं करती हैं।

हमारी मातृभूमि पर अनेक प्रकार की अग्नियाँ प्रज्वलित रहती हैं। इसी में एक ऐसी भी अग्नि है जो जल में निवास करती हैं। यही नहीं बादलों से निकलने वाली ताड़ित–अग्नि जिसकी चमक दूर–दूर तक जाती है, उस अग्नि से रक्षा करने के उपाय खोजें जा रहे हैं। इस मेघ–अग्नि का विज्ञान के कार्यों में किस प्रकार उपयोग किया जाए इस पर भी अनुसन्धान बराबर चलता है। वर्षा के जल का उपयोग उसे विधिवत् संचित करके, बाँध बनाकर, नहरों के द्वारा विभिन्न कार्यों में उपयोग करके, नदियों पर बाँध बनाकर उससे विद्युत पैदा करके और प्रपातों का रूप देकर उसको वैज्ञानिक–विधि से विद्युत में परिवर्तित करके उपयोग किया जाता है। जो विद्युत इन विधियों से प्राप्त होती है उसका उपयोग राष्ट्र के विभिन्न कार्यों में और प्रजा–जनों के घरों को प्रकाशित करके किया जाता है। यही नहीं, उत्पादित विद्युत से यंत्रों के द्वारा अन्य ऐसे अनेक कार्य किये जाते हैं जो प्रजा–जनों के लिए अत्यन्त उपयोगी और लाभकारी होते हैं। इसमें एक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रसारण का भी होता है। जिसे लोग देख–सुनकर लाभ उठाते हैं। ये सभी कार्य विद्युत को संचित (इक्ट्ठा) करके ही सम्पन्न किये जाते हैं। मातृभूमि की खुशहाली का यह महत्त्वपूर्ण अन्वेषण है।

हे मातृभूमि! आप की वात्सल्यमयी गोद में बसने वाले देव–पुरुष के प्रतिरोधी प्रकृति के लोगों को कभी सहन नहीं करती हैं। जो लोग हिंसक, डाकू, चोर, ठग और विश्वासघाती प्रकृति के हैं, उनको कहीं रहने की आज्ञा शासन की ओर से भी नहीं है। ऐसे दुष्ट प्रकृति के लोगों को वश में रखने की उत्तम–व्यवस्था है। इन्हें उत्तम शिक्षा देकर इन्हें सुधारा जाता है या दण्ड देकर। इन दोनों विधियों से कुटिल लोगों की संख्या समाप्त कर दी जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि दुष्ट–जनों को मातृभूमि पर निवास करने की आज्ञा नहीं है। यदि कोई भी दुष्ट अपनी कुटिलता से बाज नहीं आता है तो शिक्षा और दण्ड दोनों का प्रयोग कर उसका सुधार किया जाता है।

हे मातृभूमि! आप प्रजा–जनों के हित में इन्द्र (सम्राट) का चुनाव करती हो। अर्थात् वंशागत राज्य भूमि पर नहीं चलता है। 'वरण' शब्द इसी अर्थ में है। राजा अपने उत्तम प्रबन्ध एवं विधान से विषैले या विपरीत प्रकृति के चोर, डाकू, लुटेरे, ठग और विश्वासघातियों का उच्छेदन करता है और प्रजा–जनों के हित में योजनाएँ बनाकर लागू करता है। उससे राष्ट्र दिनोंदिन समृद्ध होता जाता है।

हे माता! आप के वात्सल्यमयी गोद में बसने वाले सभी लोग ईश्वर पर विश्वास करने वाले हैं। उनका अंतःकरण परमात्मग्नि से दीप्तमान है। ऐश्वर्य को धारण करने वाले हैं। भौतिक ऐश्वर्य एवं मूल्याधारित सद्गुण के धारण करने वाले हैं। पाप कर्म करने वालों का

समाज में कोई स्थान नहीं है। पाप कर्म सबके लिए उपेक्षणीय है। मातृभूमि पर पाप और पापी दोनों की उपेक्षा की जाती है। ऐसे लोग जो पाप कर्म करते हैं उन्हें दूर ही रखा जाता है। तात्पर्य यह है, श्रेष्ठ कर्म का ही वरण होता है। अधोकर्म और अधोमार्ग दोनों का तिरस्कार होता है।

मातृभूमि पर शासन प्रबन्ध उत्तम ढंग से किया गया है। व्यवस्था करने वाले अपने कर्तव्यों का पालन तत्परता और उचित ढंग से करते हैं।

हे माँ! आप हर तरह की हितकारी शक्तियों से सम्पन्न हैं। इसी लिए प्रजाजन सुखी व सम्पन्न हैं। लोग अपनी योग्यता, प्रतिभा व रुचि के अनुसार अपने–अपने कार्य बहुत कर्मठता और सच्चाई के साथ करते हैं। सभी शक्ति से सम्पन्न हैं। इस लिए इनकी तुलना 'वृषभ' से की गई है। सभी दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझ कर कार्य करते हैं। सद्गुणों के धनी होने के कारण मातृभूमि की दिनोंदिन उन्नति होती जाती है।

मातृभूमि के स्तुतिगान का यह वेदोपदेश मातृभूमि के प्रति भक्ति उत्पन्न करने और विषैले जनों, डाकू, चोर, लुटेरों और ठगों से सावधान और उन्हें हटाने की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मातृभूमि पर राज–व्यवस्था जब चुनाव के द्वारा अर्थात् राष्ट्र–प्रमुख प्रजा–जनों के द्वारा चुना जाएगा तो वह प्रजा का पालन परोपकार की भावना से करेगा। ऐसा राष्ट्र–प्रमुख का ही वरण (चुनाव) किया जाना चाहिए। मातृभूमि की उन्नति तभी सम्भव है, जब लोग पापों से बचे रहें और पापियों का स्थान कहीं न हो। जिससे पाप–वृति के लोग पैदा न हो सकें। मातृभूमि की समृद्धि तभी होगी, जब सभी लोग सुशक्ति सम्पन्न, विचारवान् और परोपकार में सदैव रत रहें। दृष्ट प्रवृतियाँ और अपकारी लोगों का स्थान कहीं नहीं होना चाहिए।

38

सुविधायुक्त और आरामदायक निवास–गृह

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते।
ब्रह्मणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे।।

शब्दार्थ– (यस्यां सद्) जिस सदन में (हविर्धाने) हवि के लिए समर्पित (यूपो निमीयते) यजन के निमित्त निर्मित स्तम्भ (यस्यां) जिस (भू–माता) पर (यजुर्विदः) यजुर्वेद के लिए समर्पित

ब्राह्मण (ब्राह्मणः) ज्ञानी जन (ऋग्भिः) ऋचाओं के लिए (साम्ना) मुक्ति के राह पर या सामवेद में (अर्चन्ति) पूर्ण समर्पण भाव से परमात्म–चिन्तन (ऋत्विजः) यजन कर्म करने वाले (इन्द्राय) नेतृत्व करने वाले इन्द्र (सोमम् पातवे) अमृत पान करने हेतु (युज्यन्ते) युक्ति पूर्वक आगे बढ़ता।

भावार्थ– मंत्र में सभी मनुष्यों के लिए सुविधा–युक्त और आरामदायक आवास, शुभ कर्म करने और सम्राट द्वारा प्रजा–जनों के कल्याण की चर्चा की गई है। ऋत्विजों, ब्रह्म–ज्ञानियों और मातृभूमि की रक्षा करने वाले योद्धाओं को अपने निरत कर्मों में रत रहने की प्रेरणा दी गई। स्वस्थ्य जीवन के लिए नींद का सन्तुलित ढंग से आना आवश्यक है, प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों और कर्तव्यों को निभाता हुआ रात्रि के समय सन्तुलित ढंग से गहरी नींद में सोता है, ऐसे प्रजा–जनों को सुखी बताया गया है। यज्ञ–यूपों का वर्णन मनोहारी है। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन स्वच्छ पर्यावरण, निरापद कृषि और देवत्व की प्राप्ति के लिए यजन कार्य करना आवश्यक है। इसका भी मंत्र में चर्चा की गई है।

विवृति– हे भूमिमाता! आप हर तरह से महिमावती हैं। आप की महानता का आप की वात्सल्यमयी गोद में पोषण पाने वाले प्रजाजन भी गुण गाते हैं। सभी प्रजा–जनों (अधिवासी) के पास सुविधायुक्त आराम देने वाले मकान हैं। सभी मकानों में आवश्यकता के अनुसार कमरों का निर्माण हुआ है। अपने कमरे में वे रहते हैं और आराम की नींद लेते हैं, तो किसी में अन्न भण्डारण होता है। इस प्रकार प्रयोजन को दृष्टि में रखते हुए कमरे बनाए गए हैं। सुन्दर और सुविधा–युक्त इन हवादार मकानों में आराम पूर्वक रहते हैं। उन्हें रात में नींद बहुत चैन से आती है।

हमारी मातृभूमि हमेशा से ऋत्विज ब्रह्म ज्ञानियों से पवित्र रही है। यजन कर्म सभी कर्मों में श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ कर्म करने वाले प्रजाजन सदैव मातृभूमि को पवित्र एवं ऐश्वर्य सम्पन्न बनाने के लिए यजन कर्म करते आएँ हैं। यज्ञ को ही धरती माता की नाभि कहा गया है अर्थात् यज्ञ, इस धरती का सारा आधार है। जिस तरह से, यज्ञ–कर्म करके ब्रह्मज्ञानी भू–माता को पवित्र और शुभकारी बनाते रहे हैं, उसी तरह से हम सभी यज्ञ–कर्मों के द्वारा, मातृभूमि को पवित्र और शुभकारी बनाएँ। यज्ञ के बिना समाज में सन्तुलन कायम नहीं किया जा सकता हैं। यज्ञ–कर्म का मायने ऐसे कर्म जिससे जगत् का हर विधि से भला होता हो।

मातृभूमि पर निवास करने वाले प्रजाजन लोकोपकारी यज्ञों को सम्पन्न करके लोकहित के अनेक कार्य करते हैं। इन यज्ञ–कर्मों में कृषि, उद्योग, व्यापार, शिक्षण संस्थान, औषधालय और अनुसन्धान शालायें तथा समितियों द्वारा किये जाने वाले कर्म प्रमुख हैं। यज्ञ वैयाक्तिक और सार्वजानिक हित में किये जाते हैं। जिन स्थानों पर यज्ञ–कर्म किये जाते हैं, उनके उन्नत

द्वारों को 'यूप' कहा जाता है। ये यूप भी विविध प्रकार के होते हैं। सभी यूपों में जनहितकारी भावना से कार्य किये जाते हैं। सभी नर–नारी इनमें उत्साह से भाग लेते हैं।

यज्ञ–स्तम्भ यूप कहे जाते हैं। यज्ञ–स्थानों को चिन्हित किये जाने के कारण प्रजाजन उस स्थान पर जाकर अपने यज्ञ सम्पन्न करते हैं। जो जन नेतृत्व करते हैं वे समाज के स्तम्भ अर्थात आधार–तुल्य हैं। हम सभी ऐसे नेताओं का सम्मान करें और उनकी प्रशंसा में गान करें। वेद–ज्ञान का गान करने वाले ब्रह्मणगण हमारे लिए वन्दनीय हैं। जिस सोमरस का पान देवत्त्व को धारण करने वाले इन्द्र के समान महान् है, वे हम सभी के लिए विशेष स्तुत्य के योग्य हैं। हे धरती माता! वर्षों–वर्षों से विद्वानों ने समाज एवं प्रकृति कल्याण में जो यज्ञ किए– उससे ही हम सब का मन निर्विघ्न निरन्तर आगे बढ़ते रहे। धर्म का वास्तविक उद्देश्य विश्व एवं प्रकृति का विकास एवं शुभकारी बनाना है। इसलिए हम सभी प्रजाजन निरन्तर धरती हितार्थ, शुभकारी कार्य करते रहें। यज्ञ ही धर्म का आधार है। जो इसे सुदृढ़ बनाने के लिए पुरुषार्थ करता है, वह ही सही अर्थों में मनुज धर्म का रक्षक है। जिन धर्मों से भू–माता का सर्वकल्याण होता है वे ही धारण करने के योग्य हैं अर्थात् निज स्वार्थ और दुराग्रह से ऊपर उठकर हमें सुकर्म करने का संकल्प लेना चाहिए। जो सुकर्मी और सुधर्मी नहीं है, वे इस भूमि पर भार के सामान हैं।

यज्ञ–स्तम्भ अर्थात् यूप का कर्मकाण्ड में प्रयोग अग्निहोत्र के सन्दर्भ में भी है। प्रजाजन अग्निहोत्रादि कर्म करके वायुमण्डल और जलवायु को स्वच्छ बनाते हैं। इससे समय पर वर्षा होती है और प्रजाजन समृद्ध होते हैं। यह समाज व राष्ट्र के लिए भी अत्यन्त लाभकारी है। हमारे सभी कार्य (कर्म) यज्ञ भावना से पूरित हों ऐसी भावना रखनी चाहिए।

हे मातृभूमि! आप की वात्सल्यमयी गोद में चारों वेदों के महान् वेदज्ञ ब्राह्मण निवास करते हैं। परमात्मा की स्तुति, उपासना और प्रार्थना चारों वेदों के मंत्रों के माध्यम से करते हैं। परमात्मा के महतोमहान् गुणों का गान करना स्तुति कही जाती है। उसके समीप बैठना उपासना और ऐश्वर्य और अन्नादि के लिए कहना प्रार्थना कही जाती है। सभी प्रजावान् ऋत्विज हैं। ऋत्विज वे होते हैं जो यज्ञों को सम्पन्न कराते हैं। निरुक्त के अनुसार ऋतु में नियम पूर्वक यज्ञ कर्म करने वाला ऋत्विज है। सभी जन मातृभूमि की उन्नति के लिए कर्म करते हैं। इस लिए सभी प्रजावान् 'ऋत्विज' हैं। ये ऋत्विज हर कार्य समय के भीतर करते हैं। इससे कार्य ठीक ढंग से होता है और उसका पूरा लाभ प्राप्त करते हैं।

मातृभूमि के रक्षक इन्द्र सम्राट प्रजा–जनों की हर तरह से रक्षा करते हैं। प्रजाजन उत्तम यज्ञ–कर्म करके ऐश्वर्यशाली बनते हैं। वे अपना कुछ अंश 'कर' के रूप में इन्द्र को समर्पित

करते हैं। 'कर' सभी देते हैं और जितना जिस भाग का देय होना चाहिए, वह उतना देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई व्यक्ति राष्ट्र व समाज कार्य को आगे बढ़ाने के लिए 'कर' अवश्य पूरी सच्चाई से देता है। करवंचना से सभी बचते हैं।

सभी प्रजाजन ईश्वर की प्रार्थना, उपासना व स्तुति अर्थात् सन्ध्या का नित्य कर्म बहुत श्रद्धा के साथ किया करते हैं। उस परमात्मा को हृदय में बसाकर, उसका रसापान करते हैं, जैसे सोमरस का पान करके आनन्द प्राप्त करते हैं। परमात्मा की भक्ति करके प्रजाजन सुख प्राप्त करते हैं।

वेद में इन्द्र के अनेक अर्थ हैं। इसमें औषधि, सूर्य, ईश्वर, सम्राट और वायु प्रमुख हैं। समाज के हर घर में यज्ञादि के कर्म निरन्तर होते रहे हैं। ऋत्विज इन यज्ञों में सोमादि शुद्धि करने वाली औषधियों एवं घृतादि के माध्यम से यज्ञ करते हैं। जो औषधियाँ यज्ञों में प्रयुक्त होती हैं, वे अनेक रोगों को नष्ट करने वाली भी होती हैं। यज्ञ में निकली गैसें सूक्ष्मादि होकर कई प्रकार से लाभ पहुँचाती हैं।

जलवायु इन यज्ञों से शुद्ध होता है। शरीर निरोगी और पुष्टिकारक हो जाती है। वर्षा में वर्षा जल, कृषादि के अतिरिक्त अन्य बहुत से कार्यों में उपयोग होता है। सोमपान समाज की समृद्धि कराता है।

मातृभूमि के स्तुतिगान में प्रजा–जनों एवं सम्राट को उपदेश दिया गया है कि प्रत्येक मातृभूमि के निवासी के लिए ऐसा मकान होना चाहिए जो उठने, बैठने, खाने–पीने के लिए व्यवस्थित हो। यज्ञ कर्म सभी को मिलकर करना चाहिए। उद्योग–धन्धें, व्यापार, सभा और समितियों में होने वाले उत्तम कर्म (यज्ञ) सब के हित में होने चाहिए। ब्राह्मण–वृति के लोगों को वेदों का पठन–पाठन, यज्ञादि और परोपकार के अन्य कर्म दृढ़ता के साथ करते रहना चाहिए। सम्राट को प्रजा–जनों के लिए अच्छी सुरक्षा–व्यवस्था करनी चाहिए। राज्य को 'कर' बहुत ही सच्चाई के साथ देना चाहिए। ईश्वर–भक्ति करके सोमरस का पान करते रहना चाहिए।

39

मातृभूमि के महान् ऋषि–महर्षि

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह।।

शब्दार्थ– (यस्यां) जिस (भू–माता) पर (पूर्वे) पूर्व में (भूतकृतः) पूर्व में निर्माण कार्य करने वाले (सप्तं ऋषयः) व्यवहारों में रत रहने वाले (सत्रेण) मनीषी–जनों का पोषण और संरक्षण करने वाले (यज्ञेन) यजन के लिए (तपसा सह) तितिक्षा सहकर या तप से युक्त (गाः) निरन्तर गान होता है (उदानृचुः) यशगान जो (उद्गार का) करते हैं (ब्रह्मचर्य) ब्रह्म जैसा चरित्र।

भावार्थ– इस धरा धाम पर अनन्तकाल से ऋषि–महर्षियों का निवास रहा है। ये वेद मंत्रों के साक्षात्कर्ता रहे हैं। अनेक अनुसन्धानों और अपने अति कठोर तप से हमारे इन ऋषियों–महर्षियों ने प्राणी मात्र के कल्याण और पृथ्वी के विकास के निमित्त अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। मंत्र में ऋषियों–महर्षियों से प्रेरणा लेकर प्रत्येक व्यक्ति को प्राणी कल्याण और मानवता के हित में अपना जीवन समर्पित करने के लिए प्रजा–जनों को प्रेरित किया गया है। जिस प्रकार से लोकोपकार के कार्य हमारे देवगण ऋषि करते थे, वैसे हमें भी करना चाहिए जिससे अपना और मानव समाज का कल्याण हो सके।

विवृति– हे मातृभूमि! आप की महानता पर बारम्बार सिर नवाता हूँ। एक महान् परम्परा सृष्टिकाल से चली आ रही है। जिसमें ऐसे–ऐसे तत्त्वदर्शी, आत्मज्ञानी, धर्मपालक और वेद–मंत्रों के साक्षात्कर्ता ऋषि–महर्षि हुये जिन्होंने अपने अनुसन्धानों से सभी सत्य–विद्याओं को जगतहित में प्रचारित–प्रसारित किये। नित नूतन शोधों के द्वारा उन्होंने तत्त्व को जाना समझा। 'वेधा' शब्द इसी नूतन अनुसन्धानों के लिए है। तप करने वाले–तितिक्षा, संयम, धैर्य और पावनता को जीवन का स्वभाव बनाने वाले हमारे मार्ग–दर्शक ऋषि रहे हैं। पृथ्वी पर यज्ञन की जितनी भी धारायें लोकोपकार के लिए स्फुटित हुईं, सभी हमारे इन महान् ऋषि–महर्षियों की ही देन हैं। यज्ञ से अंतःप्रज्ञा और अंतःचेतना ही जागृत नहीं हुईं अपितु सारा ब्राह्मण्ड श्रेष्ठता के पावन प्रवाह में अभिसारित हुआ। हमारे ऋषियों के द्वारा जो यज्ञ किये जाते रहे हैं, वे समाज, राष्ट्र व संस्कृति की चेतना को विस्तारित करने वाले होते रहे। सत्योपदेश की जो परम पावन सर्वश्रेष्ठ धारा का प्रवाह जगत् में हुआ, वह भी हमारे ऋषि–महर्षियों की दी हुई है।

मातृभूमि पर निवास करने वाले पूर्व में जो योग–साधक ऋषिगण थे उन्होंने अतीन्द्रिय साधना के माध्यम से अनेकानेक धर्म कार्य किए। अतीन्द्रिय साधना उच्च–कोटि की साधना मानी जाती है। लेकिन अद्यतन युग में ऐसे साधक बहुत ही कम हैं। भू–माता हम प्रजा–जनों को वेद ज्ञान की साधना के निमित्त आत्मशक्ति, सत्साहस एवं संकल्पबद्ध होने की अमित–शक्ति प्रदान करें जिससे निज को साधकर विश्व समाज का कल्याण कर सकें।

मातृभूमि पर अनन्तकाल से ऐसे तपस्वी, अनुसन्धानक, ऋषि, कवि, मनीषी और वेद–धर्मी सत्पुरुष हुए जिन्होंने अपनी विपुल ज्ञान–सपदा से, तपस्या रत रहकर वेद–ज्ञान प्राप्त कर सृष्टि के विकास में अतीव योगदान दिए। ऐसे ऋर्षि–तपस्वियों को हम सभी सादर नमन् करते हैं। इसी सृष्टि–चक्र में हम सभी श्रेष्ठ नर अतुलित ज्ञानार्जना करते हुए परम श्रद्धा, भक्ति, प्रेम एवं धर्मनिष्ठ (सृष्टि नियमों का पालन) होकर सृष्टि के विकास के निमित्त अपना सर्वस्त अर्पित कर दें। मनुष्य धर्म की यही उच्च अभिमत्ता है।

शरीर विज्ञान के अनुसार हम जिन इन्द्रियों के द्वारा समग्र कार्य, व्यवहार एवं ज्ञानार्जन करते हैं, उनको शक्तिशाली एवं पवित्र बनाए रहने के लिए अच्छा (बेहतर) आहार–विहार का सेवन निरन्तर करते रहें। हमारी इन्द्रियाँ जितनी शक्तिशाली, पवित्र और मनस्वी होंगी, हम उतना ही उन्नति के मार्ग पर निरन्तर अग्रसित होते जाएँगे।

धरती माता सृष्टि काल से यजन करती आ रही हैं। ये यज्ञ, सृष्टि की सार्थकता, विकास और उन्नति के प्रतिपादक हैं। यज्ञ ही धरती का आधार स्तम्भ और केन्द्र हैं। हम सभी प्रजाजन ऐसे धर्म धुरीण यज्ञों को सतत् आगे बढ़ाने में संकल्पित हों। यज्ञकर्ता ऋषिगण, देवता और मनुष्य– जितने भी ब्रह्म के रूप में यज्ञ वेदी (भू–माता के वितान पर) पर विराजमान हैं, हम सभी उनकी हर विधि से सेवा, सुरक्षा और स्तुति करने वाले बनें। यह भी एक तरह का देव यज्ञ है। देव यज्ञ करने वाले देवत्व को प्राप्त होते हैं।

हमारे ऋषि–महर्षियों का जीवन सप्तहोता यज्ञ के सदृश्य रहा है। ऐसे यज्ञ से सारा जीवन ही यज्ञमय हो जाता है। इसमें मन, आत्मा के अतिरिक्त नेत्र, कर्ण, नासिका, त्वचा व जिह्वा भी भाग लेते हैं। यही सप्तहोता हैं। इनके यज्ञन से सारा जीवन यज्ञमय हो जाता है। तात्पर्य यह है, इन यज्ञकर्ताओं के यज्ञ से केवल शरीर का हित नहीं होता, बल्कि जगत् का भी उपकार होता है। ऐसे यज्ञ ऋषि–परम्परा के अंग हैं।

ऋषि–महर्षियों के द्वारा किये गये महान् यज्ञों और उनके यज्ञमय जीवन से सकल वसुधा पर तत्त्व की धारा का प्रवाह होता है। कोई युग और काल ऐसा नहीं रहा है जो ऋषियों के यज्ञ–कर्म का अनुगामी न रहा हो। धरती पर ऐश्वर्य (सद्गुण) समृद्धि हुई, वह भी ऋषि–यज्ञों

का परिणाम रहे हैं। ज्ञान–विज्ञान, जीवन–धर्म, आध्यात्मिकता का प्रकाश ऋषि–यज्ञों से प्रकाशित होता आया है। ऋषि–महर्षियों की यह परम्परा आज भी चली आ रही है।

मातृभूमि पर अहिर्निश चलने वाली यज्ञ की महान् परम्पराएँ समाज व राष्ट्र की सदैव हितकारणी रही हैं। आज भी ऐसे महान् ऋषि हैं जिनके महान् तपोमय यज्ञ से जगत् का कल्याण हो रहा है। ऐसे महान् यज्ञकर्ता ऋषि–महर्षियों के व्यवहार और तप को हम अपने जीवन को यज्ञमय बनाने के लिए धारण करें। इससे यज्ञ परम्परा का ही गौरव नहीं बढ़ेगा अपितु स्वयं को और समाज व राष्ट्र का भी गौरव बढ़ता जाएगा। ऐसे यज्ञमय जीवन से अपना ही कल्याण न करें, बल्कि समाज व राष्ट्र का भी कल्याण करें।

भू–माता के स्तुतिगान में वेद का यह महान् उपदेश कितना अद्भुत और मनोरम है। ऋषि परम्परा में होते आये यज्ञ भूत, वर्तमान और भविष्य को ऐश्वर्यशाली और गौरवपूर्ण बनाने वाले हैं। इनकी धारा आगे भी अहिर्निश बहती रहे ऐसा कार्य हमें करना चाहिए। गौरवशाली ऋषि परम्परा अनन्तकाल तक चलती रहे, यह हमें ध्यान रखना चाहिए। जब तक धरती पर यज्ञ–कर्म निरन्तर होते रहेंगे, मानव सद्गुणों से युक्त हो एक आदर्श समाज, राष्ट्र, संस्कृति व चेतना का निर्माण करता रहेगा। इस लिए हमें यज्ञ–परम्परा, यज्ञ–कर्म और यज्ञ–संस्कृति को अक्षुण्य बनाये रखना चाहिए। यह महान् व्यवस्था और राष्ट्र के लिए भी आवश्यक है।

40

शुद्ध उपायों से ही धन का अर्जन करें

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः।।

शब्दार्थ– (सा भूमिः) यह हमारी भू–माता (यत् धनम्) जिस धन शक्ति से (नः) हम श्रेष्ठ–जनों के लिए (आ) उसी तरह (दिशतु) निरन्तर दें (कामयामहे) जैसी शुभ कामना करते हैं (भगः) ऐश्वर्य से परिपूर्ण (अनुप्रयुङ्क्ताम्) हमारे लिए उपयोगी बनें (इन्द्रः) इन्द्रियों के स्वामी अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त जन (पुरोगवः) निरन्तर अग्रसित होकर या मार्गदर्शक बनकर (एतु) चलें या परास्त कर दें।

भावार्थ– ऐश्वर्य की कामना लौकिक और अलौकिक दोनों लोकों के लिए फलदायी होती है। लौकिक जीवन में ऐश्वर्य से सुख, प्रजा, पशु, कीर्ति और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है और अलौकिक जीवन, ऐश्वर्य सद्‌गुण, धर्म और परमात्म–चिन्तन की ओर ले जाता है। मातृभूमि ऐश्वर्य को देने वाली हैं। लेकिन जो ऐश्वर्य और धन हम प्राप्त करें, वह शुद्ध उपायों से ही कमाया हुआ होना चाहिए। ऐसा ऐश्वर्य ही स्थाई और धर्म–युक्त होता है। हमारा संकल्प और श्रम दोनों में सन्तुलन हो। चरित्र को समुज्ज्वल बनाकर हमें लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार की शक्ति प्राप्त करने के लिए सतत् आगे बढ़ते जाना चाहिए। मंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को ऐश्वर्यशाली बनने की बात प्रमुखता से कही गई है।

विवृति– हे मातृभूमि! हम सभी प्रजाजन, उन ऐश्वर्यों एवं सुखों से परिपूर्ण हों जिससे हमारी कामनाएँ एवं वासनाएँ पूर्ण हो सकें। हमारा ऐश्वर्य एवं धन, उन भूमि–पुत्रों की रक्षा, पोषण एवं संरक्षण में उपयोगी हों, जो भू–माता की हर क्षण विध्वंसकारी अधर्मियों से रक्षा करते हैं। हमारे सूरवीर योद्धा निर्भय होकर धर्म (सृष्टि नियमों के प्रतिपालक) धुरीण बनें। उनमें धैर्य, सत्साहस एवं शुभ संकल्प (मंगल के लिए) सदा जागृत रहें। सब का सबके प्रति वैसा प्रेमभाव बना रहे, जैसे दो सहोदरों में होता है।

सर्वदायिनी भू–माता! आप की वात्सल्यमयी गोद में पोषण पाने वाले और सदैव समृद्धि की ओर बढ़ने वाले हम प्रजाजन आप का कितना गुणगान करें। ऐसी कौन–सी वस्तु, कौन–सी कामना और कौन–सी याचना नहीं– जिसे आप ने पूर्ण न किया हो। आप तो सर्व सामर्थ्यवान् हैं। हे माँ! हम प्रजाजन जिस ऐश्वर्यवान् की कामना करें–वह चाहे भौतिक, ऐश्वर्य हो या आध्यात्मिक ऐश्वर्य सभी आप देने में सामर्थ्य रखती हैं। इस लिए हे माँ! हम जब भी, जिस वस्तु की कामना करें, उसे प्रदान करती रहें। धन के अभाव से हम कभी व्यथित न हों। हमारा कमाया हुआ धन सत्य के मार्ग से आया हुआ हो और उसका उपयोग भी हम उत्तम कार्यों में ही करें।

यह भूमि 'वीरभोग्या वसुन्धरा' कही जाती है अर्थात् हम सभी प्रजाजन आवश्यकता के अनुसार पृथ्वी के धन, सम्पदा और संसाधनों का दोहन कर सुखी हों। हममें से किंचित दरिद्र न रहें। हम सभी ऐसे धन, सम्पादाओं एवं ऐश्वर्यों का भोग करें जो धर्म के द्वारा कमाया गया हो। अधर्म के द्वारा कमाया धन कभी सुख, आनन्द और शक्ति देने वाला नहीं होता है। समाज को नेतृत्व देने वाला नेता (इन्द्र) धर्म ध्वजवाहक बनकर उन आतताइयों का नाश करते जाएँ जिनसे धरती पर भय, हिंसा और फँसाद फैलता है। समाज सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् मार्ग पर सतत् अग्रसित करने वाले नेतागण तपस्वी और ज्ञानी बनें। क्योंकि इनके तप, ज्ञान, व्यवहार, कार्य और चरित्र की पवित्रता और शक्ति से समाज का समुज्ज्वल विकास हो सकता है।

धरती पर स्वर्ग उतरने की जो परिकल्पना या कहावत् कही गई है, वह तभी सम्भव है, जब नेता गण मनस्वी, तपस्वी और आत्मज्ञानी होंगे।

हे मातृभूमि! धरती पर निवास करने वाले सभी प्रजा–जनों में मर्यादा, चरित्र और सुविवेक पल्वित होता रहे– ऐसी प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान करती रहें। जो अज्ञानी, कुलघाती, समाज विध्वंसक एवं आतताई ऐश्वर्य, धन, शान्ति, विकास और सुसंस्कृति को हानि पहुँचाते हैं, उन्हें हम सभी जीवनधर्मी जन दूर हटा दें।

धरती का हर पल विकास, विस्तार और धर्म–ऐश्वर्य से बढ़ रहा है। इसे प्रत्यक्ष देखने के लिए महात्माओं, विद्वानों, ब्राह्मणों (ज्ञानियों) का सहयोग ले सकते हैं। हम सभी की कामना एवं भावना इनके प्रति कृतज्ञता पूर्ण हो। हम सभी कृतज्ञ होकर इनकी सदा वन्दना करते रहें।

भूमिमाता! जो अनन्त वर्षों से ऐसे देवत्व–पूर्ण एवं ऋषित्व–पूर्ण मनस्वियों को प्रश्रय देती आई हैं, हम सभी इस महान् कार्य के लिए भू–माता की हर्षित, उत्साहित और आनन्दित होकर स्तुति एवं वन्दना करते हैं।

हे भूमिमाता! हम पुरुषार्थी एवं संकल्पशाली बने रहें। निकम्पापन हममें किंचित भी न हो। हम जिन श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए संकल्पवान् बनें, उन्हें प्राप्त करने के लिए निरन्तर पुरुषार्थ करते रहें। ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए हमें विविध कार्यों के लिए प्रेरित करती रहें। धन प्राप्ति के उत्तम उपायों के प्रति भी हममें उत्साह भरती रहें। धन–प्राप्ति में हमारी राजव्यवस्था हमारी मार्गदर्शक बनी रहे। जिससे सात्विक धन की प्रवृति बनी रहे। हममें परमात्म–चिन्तन एवं भक्ति की लगन लगी रहे। हम पर, उस दाता की कृपा सदैव बनी रहे। हमारी बुद्धि इस प्रकार सात्विक बने जो स्वयं की ही समृद्धि न कराने वाली हो, बल्कि सब की समृद्धि की कामना करने वाली और सहयोग करने वाली हो। हमारी बुद्धि विनम्रता वाली और प्रियता वाली हो। तात्पर्य यह है कि सात्विक बुद्धि सभी ऐश्वर्यों का आधार है। इस आधार को हम कभी उपेक्षित या नष्ट न करें।

भूमिमाता के स्तुतिगान में धन प्राप्ति और ऐश्वर्य से युक्त होने के लिए वेद का उपदेश अत्यन्त प्रेरक और संग्रहणीय है। धन भौतिक (सांसारिक) जीवन का प्रमुख आधार है। बिना धन के जीवन बसर करना दूभर हो जाता है। इस लिए वेदमाता उपदेश करती हैं–प्रजाजन जीवन को सुखमय बनाने के लिए श्रेष्ठ एवं सत्य के मार्ग से ही धनार्जन करें। ऐसे अनेक कार्य करने चाहिए जिससे अधिकाधिक धन की प्राप्ति हो सके। धन प्राप्ति में परमात्मा की कृपा बहुत आवश्यक है। इस लिए परमात्मा की भक्ति करते रहना चाहिए। धन के स्रोत और

अवसर प्राप्ति में राज–व्यवस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस लिए राज–व्यवस्था का सहयोग प्राप्त करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। राज–प्रबन्धकों को भी चाहिए कि वह प्रजा–जनों को धन–प्राप्ति के लिए सदैव मार्ग दर्शन करते रहें।

41

नृत्य व गान में प्रसन्न प्रजाजन शत्रुरहित हों

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्रणुदतां स पत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु।।

शब्दार्थ– (यस्यां) जिस (भूम्याम्) भू–माता पर (व्यैलबाः) मुखर वीर योद्धा या नाना प्रकार की वाणियाँ बोलने वाले (गायन्ति) गान करते हैं (नृत्यन्ति) नाचते हैं (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं (यस्यां भूम्याम्) और जिस मातृभूमि पर (आक्रन्दः) तेज स्वर में (यस्याम्) जिस पर (दुन्दभिः च वदति) विशेष प्रकार का युद्ध बाजा जो युद्ध होने का सूचक होता है (सा भूमिः) वह मातृभूमि (नः) हम सभी के लिए (सपत्नान्) विध्वंसकारियों को या शत्रुओं को (प्रणुदताम्) दूर हटा दें या मार भगाएं (पृथिवी) धरती माँ (मा) हम सभी को (असपत्नम्) अजातुशत्रु (कृणोतु) करे।

भावार्थ– मंत्र में अन्याय, हिंसा, आतंक, घृणा, शत्रुता और दुर्वृति–प्रवृतियों के नाश के लिए मातृभूमि को हर प्रकार की विध्न–बाधाओं से रहित कर, मातृभूमि के संरक्षण पर बल दिया गया है। प्रत्येक मातृभूमि–वासी वीर योद्धा को इसके लिए सदैव तत्पर रहने और धैर्य पूर्वक मातृभूमि और प्रजा–जनों की सुरक्षा करने की बात कहीं गई है। समाज और राष्ट्र में सुख, शान्ति और आनन्द तब होता है जब समाज और राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का सच्चाई और पूरे लगन से पालन करने के लिए तत्पर होता है। एक आदर्श और सुखी समाज एवं राष्ट्र में ऐसे कर्तव्यनिष्ठ और सच्चे व्यक्ति ही निवास करते हैं। हमें मातृभूमि और समाज को विध्वंसकारी तत्त्वों से सावधान रहना चाहिए और उनकी प्रत्येक दुर्वृति को नष्ट करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

विवृति– हे मातृभूमि! आप के द्वारा दिये गये आनन्द का क्या कहना! यह सब आप की कृपा का फल है। आप की वात्सल्यमयी गोद में पोषण पाने वाले प्रजा–जनों पर शासन–तंत्र

की व्यवस्था इतनी उत्तम है कि हर कोई भाव–विभोर होकर खुशी से नृत्य करता दिखाई पड़ता है। दुख और उदासी दूर–दूर तक दिखाई भी नहीं देते हैं। सभी नर–नारी प्रसन्न होकर हर्ष में नृत्य करते रहते हैं, ऐसा प्रिय जीवन प्रजा–जनों का है। किसी प्रकार की चिंता प्रजा–जनों में नहीं दिखाई देती है। लेकिन, चिंतारहित होकर भाव–विह्वल होकर नाचते–गाते रहते हुए भी, आमोद–प्रमोद में डूबकर वे कभी विलासी जीवन की ओर उन्मुख नहीं होते हैं। उनमें संयम, धैर्य, सावधानी और अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठा लगातार बनी रहती है। अपनी शक्ति आमोद–प्रमोद में काफी क्षीण नहीं होने देते, बल्कि उनका आमोद–प्रमोद उच्च श्रेणी का होता है। उनकी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शक्ति निर्बल को सताने नहीं अपितु उनकी सहायता के काम आती है। उनकी शक्ति मातृभूमि के शत्रुओं को रौदने के लिए होती है। उनकी शक्ति युद्ध–क्षेत्र में वैरियों के ललकार को 'तुमुल' जयघोष द्वारा दबाने और उनके छक्के छुड़ाने में लगती है। युद्ध–क्षेत्र में वे जो वाद्ययंत्र बजाते हैं उससे दिशाएँ कम्पित हो जाती हैं। उनका एक–एक कदम आगे बढ़ना शत्रु के लिए किसी रौद्र–रूप धारण किये अग्नि–ज्वाला से कम नहीं होती है। उनके एक–एक पग धरती को कम्पायमान करने वाले होते हैं। उनके द्वारा शत्रुओं पर किये गए अस्त्र–शस्त्रों का प्रहार इतना विकट होता है कि बैरी हार मानकर पीछे हट जाता है। उनके अस्त्र–शस्त्र ऐसे रूप में होते हैं कि शत्रु सेना का लहू वे पीकर ही सन्तोष करते हैं। उनका लक्ष्य शत्रु–सेना को परास्त करके मातृभूमि से भगाने का पूर्ण हो जाता है। ऐसे वीर योद्धाओं का भला कौन प्रशंसक नहीं होगा।

यह धरती वीरों और योद्धाओं की है। योद्धा अपने बल–विक्रम से शत्रुओं का विनाश कर धरती पर आनन्द की समृद्धि करते हैं। यह भूमि सदा से उत्साह–पूर्ण धर्म–योद्धाओं की रही है। जो आनन्दमग्न हो नाचते, गाते हुए खुशियाँ बनाते हैं। मातृभूमि पर शान्ति, धर्म और न्याय का विनाश करने वाले दुष्टों का दलन, ये मिलकर करते हैं। हमारी भू–माता कभी आतताइयों से घिरी न हों, चारों ओर आनन्द की वर्षा होती रहे, कोई किसी से विद्वेष और अविश्वास न करे, ऐसा वातावरण पृथ्वी पर अनवरत् कायम रहे।

पृथ्वी पर सच्चे सुख, समृद्धि, शान्ति और धर्म का राज्य तभी कायम हो सकता है जब कोई भी मनुष्य निज स्वार्थ, आग्रह, दुराग्रह, अहंकार एवं आत्म–महत्व के वशीभूत होकर कोई किसी से द्वेष, ईर्ष्या और अधर्म (अन्याय एवं हिंसा) का व्यवहार न करे। युद्ध तभी होता है, जब स्वार्थ, अहंकार, अतिमहत्वाकांक्षा और दुराग्रह के वशीभूत होकर मनुष्य कार्य और व्यवहार करता है। भू–माता से बार–बार प्रार्थना इन्हीं दुर्वृत्तियों और दुर्गुणों को खत्म करने के लिए की गई है। वेद में परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना विनत भावना से की गई है–हे पिता! आप ही

हमारे लौकिक और परलौकिक उन्नति और विद्या (ज्ञान) के देने वाले हैं। हम सभी श्रेष्ठ–जन निर्वेर भावना से अनवरत आपस में मिलकर विकास के मार्ग पर सतत् आगे बढ़ते रहें।

मातृभूमि के कण–कण में हर्ष, जीवन्तता और अहिंसा व्याप्त होकर सुकीर्ति का प्रहवन होता रहे। धरती पर सर्वमंगल का वातावरण स्थापित हो, चारों ओर मंगलगान करके हर्ष–विभोर हो नृत्य करते हुए वीर योद्धा धरती के विनाशकों का सर्वनाश के लिए आगे बढ़ते जाएँ। जो जहाँ पर है वहाँ अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार देश, समाज और संस्कृति की रक्षा हेतु तत्पर रहे, इससे ही विश्व समाज का सर्वकल्याण हो सकता है। गुण–कर्म–स्वभाव के अनुसार मनुष्य सम्मान, मान और प्रतिष्ठा अर्जित करे। जातिगत सामाजिक ऊँच–नीच व भेदभाव का मिथ्या, दम्भ और दुर्गुणों से सदैव दूर रहें। समाज से चारों ओर आनन्द के विस्तार का यही महनी मार्ग है। हम सभी इस राह के अनुगामी बनें–ऐसे सद्संकल्प से अविरत् पूरित रहें।

यह धरती सदैव उन महान् भूमि–सपूतों की रही है, जो अपने अद्वितीय एवं अनुपम गुण–कर्म एवं स्वभाव से आनन्द का पोषण एवं भोग करते रहें हैं। हम सभी उन्हीं श्रेष्ठ वीर योद्धाओं के पथानुगामी बन अनुपम एवं अद्वितीय गुण–कर्म एवं स्वभाव के साथ आनन्द के रस से सिक्त होते रहें। हमारा आनन्द दूसरे को भी आनन्दित करने वाला हो। दूसरे को जिससे कर्म, कार्य और निज धर्म से दुख प्राप्त होता है, वहाँ पर आपस में टकराहट एवं युद्ध (झगड़ा–फँसाद) होता है। बड़े–बड़े युद्ध आपसी अहंकार, जिद और अतिमहत्वाकांक्षा (स्वार्थ की पराकाष्ठा) के कारण इस भूमि पर होते आए हैं। इनसे धरती पर अशान्ति पैदा होती रही है। लेकिन विकास और विस्तार (सुरक्षा) का मार्ग भी धर्मयुद्ध ही है। इसलिए अतीत में अनगिनत युद्ध हुए जिसमें असंख्य मनुष्य, पशु और पक्षियों की हानि हुई।

यह भूमि वीरों से हमेशा सुशोभित रही है। अजेय वीर अपने बल–विक्रम से दल–बल और घोड़ों (चतुष्पदों) के संग धरती के विनाशक शत्रुओं का नाश कर मनुष्यता की रक्षा में तत्पर रहते हैं। हम सभी मनुष्यता एवं सुचिता की रक्षा के लिए उनके समान कर्म करें। मनुष्य समाज का सौभाग्य इसी से स्फुटित एवं गौरवन्वित होता है। जब तक प्रत्येक मनुष्य का गौरव एवं सौभाग्य का जागरण नहीं होगा, तब तक भू–माता का सौभाग्य नहीं जगेगा। भूमि हमारी माता है और हम सब उसके पुत्र हैं, इस सद्भावना के साथ धरती माँ के विकास हेतु, विघ्नों का नाश करते रहें। हम सब शत्रु रहित जब तक नहीं होंगे, हमारा जन्म लेना और मरना, दोनों सार्थक नहीं हो सकता है। हे मातृभूमि, हम सभी को शत्रु रहित कर सदा आनन्दित करती रहें।

ऐसे वीर योद्धा जिनकी शक्ति सिंह जैसी है। ये वीर योद्धा प्रजाजन हर क्षण मातृभूमि की रक्षा के प्रति सदैव तत्पर रहते हैं। ऐसे वीर योद्धाओं से रक्षित मातृभूमि तुम्हारी कृपा वीर योद्धा प्रजा–जनों पर सदैव बनी रहे। हे माँ, आप कृपा करके शत्रुओं को भगाती रहना और प्रजा–जनों को ऐसी शक्ति से पूरित करती रहना कि वे शत्रुओं के छक्के छुड़ा दें। शत्रु कभी आक्रमण करने का साहस ही न कर सके। तात्पर्य यह है, मातृभूमि के वीर प्रजा–जनों में मातृभूमि की रक्षा के प्रति सजगता हमेशा बनी रहे। इतनी शक्ति प्रजा–जनों में हो कि शत्रु शत्रुता करने की हिम्मत न कर सके। राष्ट्र और समाज में वीर योद्धा–जो शक्ति साहस, संयम और संवेदना से परिपूर्ण हों से ही मातृभूमि की रक्षा हो सकती है।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद का उपदेश उन वीर प्रजा–जनों के लिए अत्यन्त प्रेरणाप्रद है जिनके कारण राष्ट्र और समाज की रक्षा होती है। मातृभूमि के प्रजा–जनों को सुख, शान्ति, समृद्धि और आनन्द का अनुभव तब होते हैं, जब उन्हें राज्य शासन प्रबन्धकों के द्वारा उत्तम प्रबंध प्राप्त होता है। लेकिन हर्षित होकर भाव विभोर होकर नृत्य करते हुए भी मन में विलासिता की प्रवृति पैदा हो– ऐसा संयम प्रजा–जनों को रखना चाहिए। क्योंकि विलासिता शक्ति को नष्ट कर डालती है और शक्ति का राज्य जीवन को ही शक्तिपुंज नहीं बनाता, बल्कि समाज व राष्ट्र की रक्षा होती है। तात्पर्य यह है शक्ति युद्ध के समय शत्रुओं को भगाने और उन्हें नष्टकर मातृभूमि की रक्षा करने के काम आती है। प्रजा–जनों में शक्ति का संचय रहने से ही उनमें युद्ध करने की क्षमता बनी रह सकती है। ऐसे साहसी, शक्ति–संचयी वीर योद्धा प्रजा–जनों से ही मातृभूमि की हर तरह से रक्षा हो सकती है। कोई भी शत्रु ऐसे पराक्रमी वीर प्रजा–जनों के सामने शत्रुता करने का साहस भी नहीं कर सकता है। कहा भी गया है– **शक्तिमेव जयते।**

42

समृद्ध कृषि–क्षेत्र युक्त मातृभूमि

यस्यामन्नं ब्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।

शब्दार्थ– (यस्याम्) जिसमें (भूमि) पर (अन्नम्) जीवनी शक्ति के स्रोत अन्न (ब्रीहियवौ) गेंहू, चावल और तरह–तरह के अन्न (यस्याः) जिसके (इमाः) बहुवचन के लिए (पञ्च) पाँच प्रकार

के (मनस्वी, ज्ञानी, व्यापारी, शिल्पी और सेवा कर्म में रत) लोग (पंच कृष्टयः) पाँच तरह के मानव (यास्याः) जहाँ पर (वर्षमेदसे) वर्षा से स्नेह रखने वाले (पर्जन्यपत्न्यै) जिससे पालन–पोषण होता है (भूम्यै) मातृभूमि के लिए (नमः अस्तु) मातृभूमि को नमन्।

भावार्थ– कृषि व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र की समृद्धि का आधार मानी गई है। जितनी उत्तम कृषि होती है उतनी ही व्यक्ति, समाज और परिवार में खुशहाली आती है। कृषक का धर्म अन्न उपजाना और उसे राष्ट्र को उचित मूल्य लेकर प्रदान करना है। कृषि अत्यंत श्रमसाध्य कर्म है। मातृभूमि के लिए जितने मूल्यवान् सुरक्षाकर्मी हैं उतने ही कृषक भी हैं। मंत्र में कृषक जनों की समृद्धि, खुशहाली और विकास के लिए राष्ट्र के नायकों को उनको हर प्रकार से सहयोग देने की बात कही गई है। कृषि का आधार जल है। जल वर्षा से मुख्यतः प्राप्त होता है। वर्षा समय पर यथायोग्य मात्रा में हो इसके लिए परमात्मा की अनुकम्पा के साथ प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाने की भी चर्चा की गई है। मातृभूमि पर सभी वर्णों के लोग निवास करते हैं। सभी श्रेष्ठ चरित्र वाले हों और कृषक–जनों का सभी आदर और सहयोग दें, इसकी प्रेरणा मंत्र में दी गई है।

विवृति– हे भू–माता! आप सुख–समृद्धि से युक्त हैं। अनेक प्रकार के अन्न से आप पोषित हैं। गेंहू, जौ, चावल और अन्य प्रकार के अन्न बहुतायत में उत्पन्न होते हैं। ये अन्न, जिन प्रजा–जनों के कर्म से पैदा होते हैं वे उन्हें तथा सभी प्रजा–जनों को जीवन देते हैं। अन्न पैदा करने वाले कृषक समाज व राष्ट्र के आधार हैं। यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य च शूद्र तथा इन चारों वर्णों से विचारधारा से भिन्न लोग भी रहते हैं। इन पाँचों वर्णों का समाज व राष्ट्र में समान भागीदारी एवं आदर सम्मान है। पाँचों अपनी योग्यता, प्रतिभा और गुण के आधार पर मातृभूमि को समृद्ध बनाने के लिए उपयोगी योगदान देते रहते हैं।

मातृभूमि की उन्नति में पाँचों वर्णों का योगदान प्रशंसनीय है, लेकिन कृषि अर्थात् कृषि–कर्म करने वाले कृषक–जनों का योगदान विशेष है। कृषि प्राणियों का जीवनाधार ही नहीं होती, बल्कि समाज व राष्ट्र–उन्नति में प्रमुख योगदान देती है। कृषि–कर्म के लिए पाँचों– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र तथा चारों वर्णों से भिन्न मत–विचार धारा वाले व्यक्तियों के प्रयासों का परिणाम सुफल प्रदान करने वाला होता है। किसी भी समाज व राष्ट्र की उन्नति कृषि–कर्म की उन्नति पर निर्भर करती है। सभी प्रजाजन पावन आचार–विचार व चरित्र वाले हैं। ऐसे धवल चरित्र के प्रजा–जनों पर परमात्मा की अनुकम्पा सदैव बनी रहती है। परमात्मा की अनुकम्पा के बिना कृषि के लिए न तो समय पर वर्षा होती है और न ही निरोगी फसल ही होती है। इस लिए अच्छी कृषि के लिए परमात्म–कृपा आवश्यक है। वर्षा के

स्वामी इन्द्र हैं। इन्द्र परमात्मा का भी नाम है। इन्द्र की अनुकम्पा का मतलब होता है– ईश्वर की अनुकम्पा। वर्षा होने से हरी भरी फसल लहलहा उठती है। ईश्वर की कृपा से कृषि हेतु समय–समय पर वर्षा होती है। यह वर्षा कृषकों के मन को हर्षित कर देती है, क्योंकि इससे फसल अच्छी होती है। जब फसल अच्छी होती है तो समाज व राष्ट्र में खुशहाली आती है। खुशहाली से समाज व राष्ट्र की प्रजा खुशहाल रहती है। सभी लोगों को आवश्यकता के अनुसार खाने–पीने की सभी वस्तुयें उपलब्ध होती हैं।

मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी प्राणी पाँच तत्त्वों से निर्मित हैं (पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु) अपने गुण–कर्म–स्वभाव के अनुसार पृथ्वी पर के संसाधनों एवं पदार्थों का भोग करते हैं। मानव समाज में विद्वान, सूरवीर, व्यापारी, कारीगर (कलाकार) और शारीरिक श्रम से समाज को सुख प्रदान करने वाला श्रमिक (सेवक) धरती का भोग पाकर सुख का अनुभव करता है। इस विशाल वसुंधरा पर सनातन से पंचकुल प्रतिष्ठित होते आए हैं। ये पंचकुल विश्व समाज की विभिन्न सभ्यताओं, संस्कृतियों, कलाओं एवं विद्याओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

धरती पर ऋतु अनुकूल अन्न, फूल, फल, मेवे और दूसरे खाद्य पैदा हों। समय से वर्षा (पर्जन्य) हो और समय से दूसरी ऋतुओं का आगमन हो। जिस तरह वर्षा के जल से विभिन्न तरह के जीव–जन्तु उत्साहित और हर्षित होते हैं उसी तरह से वारिधि के जल से मनुष्य (विशेषकर कृषक समाज) तृप्ति और आनन्द का अनुभव करता है। धरती पर ऋतुओं एवं जीवन–चक्र का रहस्य समझकर हम सभी गुण–कर्म–स्वभाव के अनुकूल यथायोग्य व्यवहार (बर्ताव) करें। इससे ही धरती पर सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य और मानवता का विस्तार होता है।

जिस भू–माता पर अनादिकाल से प्रजाजन अपने अद्वितीय एवं अनुपम गुण–कर्म–स्वभाव, विद्या, ज्ञान–विज्ञान एवं चिन्तन से विश्व समाज को पूर्ण सुखी बनाने का यत्न एवं परिश्रम करते आए हैं, उस मातृभूमि पर अन्नत काल तक ऐश्वर्य, आनन्द एवं न्याय–धर्म का पोषण एवं स्थापन होता रहे। सत्य की विजय एवं सुख की समृद्धि भूमिमाता के आशीर्वाद अर्थात् अनुकम्पा से ही संभव है। धरती माँ, हम सब को अनवरत् अपनी अनुकम्पा से सिक्त करें। हम सभी मातृभूमि को विनम्र एवं हृदय से धन्यवाद एवं नमन् करते हैं।

इस प्रकार मेघ से कृषि का पालन और पोषण होता है। समय से वर्षा हो इसके लिए आवश्यक है कि ऋतु–चक्र सन्तुलित रहे। पर्यावरण स्वच्छ रहे। हे माता, आप समृद्धिशालीनी हैं। आप को हम प्रजाजन नमन् करते हैं। मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद का अन्नदाता को दिया गया प्ररेणाप्रद उपदेश अत्यन्त संग्रहणीय है। मातृभूमि का समृद्धि का आधार कृषि है।

इस लिए कृषि पर शासन और संस्थानों को विशेष ध्यान देना चाहिए। अन्न प्रचुर मात्रा में उत्पन्न किया जाए और सभी आवश्यक चीजों की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए। भू–माता पर निवास करने वाले सभी प्रजा–जनों को चाहिए कि वे अपनी उन्नति योग्यता, प्रतिभा व रुचि के अनुसार मातृभूमि की समृद्धि के लिए कठिन परिश्रम करें और कर्तव्यों का दृढ़ता से पालन करें। सभी प्रजा–जनों का आचार–विचार पवित्र बना रहे और मेघ से वर्षा समुचित रूप से हो, इसके लिए परमात्मा की भक्ति करके, उसकी अनुकम्पा प्राप्त करें। तात्पर्य यह है अच्छी कृषि के लिए अच्छे कृषकों की आवश्यकता के साथ–साथ परमात्मा की अनुकम्पा और शासन की अच्छी व्यवस्था भी होनी भी आवश्यक है।

43

शिल्पियों द्वारा निर्मित सुन्दर ग्राम–नगर

यस्याः पुरो देव कृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु।।

शब्दार्थ– (यस्यां) जिस (भूमि) पर (देवकृताः पुरः) शिल्पियों द्वारा बनाए हुये (यस्यांः) जिस (भू–माता) पर (क्षेत्रे) मैदानों में या खेतों में (विकुर्वते) सामर्थ्यानुसार कार्य करते हैं (प्रजापतिः) प्रजा का पालन–पोषण करने वाले जन (विश्वगर्भाम्) जिससे सारा विश्व उत्पन्न हुआ है या सब कुछ जिसके गर्भ में है (पृथिवीम्) मातृभूमि के प्रति (आशाम् आशाम्) सभी दिशाओं में (रण्याम्) सुशोभित (कृणोतु) (अनवरत्) निर्माण करते रहें।

भावार्थ– मंत्र में मातृभूमि पर चलने पर कार्यों और ग्राम और नगर में कुशल शिल्पियों द्वारा निर्मित प्रासादों और भवनों की सुन्दरता का वर्णन किया गया है। एक आदर्श ग्राम और सुन्दर नगर में सुन्दर भवनों का निर्माण कुशल शिल्पियों के द्वारा होना चाहिए जिससे उसमें हर प्रकार की सुविधा हो, वे आरामदायक हों और विविध–कार्यों को संचालित करने के लिए उपयुक्त हों। ग्रामों और नगरों की गलियाँ, बाजार और मार्ग खुले और उत्तम प्रकार से निर्मित होने चाहिए। कलात्मकता, विचारात्मकता और विविधता इनमें अवश्य होनी चाहिए। बसावट ऐसी होनी चाहिए जैसे की देवपुरी बसाई गई हो। शिक्षा के प्रथम, मध्य और उच्च श्रेणी के शिक्षालय की व्यवस्था भी होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सुन्दर फलदार वृक्ष, वनस्पतियाँ और

सजावट के अन्य पौधें लगाए जाने चाहिए।

विवृति– विविध रम्य प्रासादों से विभूषित भू–माता देव और मनुज का सदा कल्याण करने वाली है। देव तुल्य प्रजा–जनों ने मिलकर वर्षों–वर्षों में ऐसे भवन, महल और प्रासाद (किले) बनाए जो सबको आकर्षित करते हैं। अपने–अपने कौशल और कलात्मकता से ऐसे नगर बसाए गए, जो युगों–युगों तक मानवता की समृद्धि के केन्द्र बने रहे। एक से बढ़कर एक लोग इन नगरों को दिव्य–स्वरूप प्रदान करने वाले हुए हैं।

हे भू–माता! आप की मनोहारी प्रासाद युक्त सुषमा और कला–कौशल का क्या कहना! आप पर अनगिनत संख्या में नगर, शहर बसे हुए हैं जिनमें विचित्र प्रकार की चित्रकारी युक्त भवन बने हुए हैं। भवनों की यह चित्रकारी कुशल शिल्पियों ने अपनी कला प्रदर्शन करते हुए किया है। ये भवन, इतने मनोहर, सुन्दर और चित्रयुक्त हैं कि देखने में देवपुरी के भवन जैसे लगते हैं।

हे माँ! आप पर बसने वाले विभिन्न प्रकार के नगर, ग्राम और उन ग्रामों व शहरों (नगरों) में बने हुए भवन, नेत्रों को सुख देने वाले हैं। ये सभी भवन खुले हुए और हवादार हैं। नगरों व ग्रामों में बनाई गईं गलियाँ और बाजार साफ–सुथरे हैं। घर कैसे होने चाहिए इसका सर्वप्रथम वर्णन वेदों में प्राप्त होता है। घरों के आगे पुष्प–उद्यान और घास के सुन्दर मैदान हैं। इनकी शोभा तब और भी बढ़ जाती है जब यहाँ बनाई गए मार्गों के दोनों ओर छायादार वृक्ष लगे हों। बच्चों और बुजुर्गों के लिए खेलने तथा भ्रमण करने के लिए उद्यान व खेल के सुन्दर मैदान बने हुए हैं। यह बसावट देखकर लगती है जैसे यह साधारण ग्राम या नगर नहीं, अपितु देवपुरी है। हे माँ, आप ऐसे ही सुन्दर देव–पुरियों वाले प्रजा–जनों को धारण करने वाली हैं।

हे मातृभूमि! कृषि करने वाले प्रजाजन अपने खेतों में भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। कोई अपने खेत में बीज बो रहा है तो कोई फसल की सिंचाई कर रहा है। कोई गुड़ाई कर रहा है तो कोई अनाज की उगाही करके अन्न निकाल रहा है। सभी लोग अपने क्षेत्र में (खेत) में कोई न कोई कृषि–सम्बन्धी कार्य कर रहे हैं, इससे वे खुशहाल हो रहे हैं और समाज में भी समृद्धि आ रही है। तात्पर्य यह है कि जब सभी लोग अपने समय का सदुपयोग करते हुए अपने–अपने कार्यों में व्यस्त रहते हैं तो समाज व राष्ट्र में खुशहाली एवं समृद्धि आती है।

धरती पर बसने वाले जन, अपने परिश्रम के बल पर हर तरह की समृद्धि, ऐश्वर्य,

सूरवीरता, ज्ञान, कला एवं विद्या के धनी होकर निरन्तर अपने गुण–कर्म–स्वभाव के द्वारा सुविचारित और सुख का विस्तार करते रहें। प्रेम, अहिंसा, सत्य, दया और धर्म को धारण कर मातृभूमि के रक्षक, पोषक और विस्तारक अनवरत् ज्ञान एवं विवेक द्वारा विश्व–जनों का कल्याण करते रहें।

हम सभी प्रजाजन सद्गुण, कीर्ति एवं विद्या–धन को अर्जित करके अपना एवं समाज का सर्वकल्याण करें। मनुज धर्म की जो व्यवस्था निरन्तर सृष्टिकाल से अनवरत् चली आ रही है उसे हम सभी सच्चे मन, वाणी एवं कर्म से धारण करते रहें इससे ही मनुजता का संवर्द्धन अविरत् होता जाएगा।

मातृभूमि के अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग कार्य चलते रहते हैं। कहीं कृषि हो रही है तो कहीं उद्योग–धन्धें चल रहे हैं तो कहीं बाजार में व्यापार हो रहा है। कहीं बुनाई का कार्य हो रहा है तो कहीं सिंचाई का तो कहीं विद्यालयों में बच्चे पढ़ रहे हैं। शिक्षा के लिए छोटे बच्चों के लिए प्राथमिक पाठशाला है तो किशोरों के लिए उच्च माध्यात्मिक विद्यालय तो बड़े छात्रों के लिए विश्वविद्यालय स्तर के शिक्षालय हैं। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों के लोग अलग–अलग कार्य कर रहे हैं। इससे हर तरफ समृद्धि आती है।

हे भू–माता! शासन सत्ता संभालने वाले या शासन का प्रबन्ध करने वाले प्रबन्धक अपने कुशल प्रबन्धकीय कार्य से पोषण प्राप्त कर रहा है। आप ही विश्वगर्भा कही जाती हैं। ऐसा कौन सा पदार्थ नहीं है जो आप धारण न करती हों। कौन सी धातु ऐसी नहीं जो आप धारण न करती हो अर्थात् सब कुछ आप के ही अन्दर समाहित है। इन पदार्थों, धातुओं और रत्नों का उपयोग हम प्रजाजन करते रहे हैं और इनका समुचित लाभ भी उठाते रहे हैं। इससे प्रजा–जनों का ही नहीं बल्कि सारे समाज और राष्ट्र में समृद्धि आई है। हे माँ, आप की कृपा सदैव इसी प्रकार बनी रहे जिससे हम समृद्धिशाली और खुशहाल बने रहें। हम सब का समाज व राष्ट्र की उन्नति में योगदान सदैव बना रहे ऐसी प्रेरणा हम सभी में भरती रहें।

हे मातृभूमि! प्रजा–जनों के कल्याण हेतु और आप की सुरक्षा के लिए बनाई गये शासन को संभालने वाला प्रजापति या सम्राट में ऐसी सुबुद्धि भरते रहना कि वह अपनी उत्तम–व्यवस्था से कल्याण एवं रक्षा का कार्य करे अर्थात् सुन्दर ढंग से करता रहे। उस सुन्दर व्यवस्था एवं रक्षा से सभी दिशाओं में सुन्दरता बढ़ती जाये साथ ही सकल ब्रह्माण्ड का स्वामी प्रजापति परमेश्वर की अनुकम्पा हम सभी पर (प्रजा–जनों) सदैव बनी रहे अर्थात् प्रजापति शासन और जगत् का प्रजापति परमात्मा की अनुकम्पा से राष्ट्र, ग्राम, नगर, बागवानी उद्योग–धन्धें और अन्य सभी क्षेत्रों में समृद्धि सदैव बनी रहे। सभी सुन्दर बने रहें।

पृथ्वी माता पर ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो मनुष्य की आवश्यकता की न हो। जितने भी पदार्थ, तत्त्व और यौगिक धरती के ऊपर या अन्दर पाए जाते हैं सभी मनुष्य के भौतिक, सामाजिक और धार्मिक विकास में सहयोगी और उपयोगी हैं। जीवन और जड़ दोनों धरती की सत्ताएं हैं। इसलिए दोनों का विकास की निरन्तरता बनी रहे, यह आवश्यक है। धरती का कोई कोना या दिशा ऐसी नहीं है जो उचाट, उजाड़ और पूर्णतः सूना हो। मतलब हर जगह जड़ और चेतन की सत्ता मौजूद है। इस लिए हम सब को चाहिए धरती के ऊपर या अन्दर हर जड़ और चेतन से हमारा लगाव और प्रेम हो।

इस रहस्यमय दिव्य–भूमि पर असंख्य पदार्थ ऐसे मौजूद हैं जो हमें सुख प्रदान करते हैं और हमारे लिए ज्ञान–विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हम सभी में उन पदार्थों के प्रति कभी द्वेष, दुराग्रह या दम्भ न उत्पन्न हो। हमारी मातृभूमि सृष्टिकाल से जीव–अजीव दोनों का पोषण, संरक्षण और सवर्द्धन करती आई है। वसुओं, देवताओं, किन्नरों, देवों एवं मनुष्यों के योग से सम्पन्न हमारी धरती अनन्त काल तक प्राकृतिक पदार्थों एवं सौन्दर्य से सदा सम्पन्न रहे, ऐसी हम सभी प्रजा–जनों की कामना है।

मातृभूमि पर प्रजापतियों की कृपा से ऐसी रमणीयता हो जो मनोहारी लगे। जिसे देखकर मन खुशियों से झूम उठे। तात्पर्य यह है समाज व राष्ट्र में चहुओर सुन्दरता का होना आवश्यक है। यह सुन्दरता समृद्धि का द्योतक है।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेदमाता का अत्यन्त मर्मस्पर्शी उपदेश प्रजा–जनों में प्रेरणा को भरने वाला है। मातृभूमि के प्रजा–जनों को चाहिए कि वे नगर व ग्राम में सुन्दर, टिकाऊ एवं आकर्षक भवनों का निर्माण करते रहें। कृषि कार्य, उद्योग–धन्धें और व्यापार के द्वारा समृद्धि प्राप्त करना चाहिए। केवल स्वहित में नहीं प्रत्युत सबके हित में समृद्धि का लाभ वितरित हो अर्थात् वितरण की व्यवस्था भी उत्तम, सन्तुलित और सर्वहितकारी होनी चाहिए। इसके लिए शासन के व्यवस्थापकों को चाहिए कि ऐसी उत्तम और सुन्दर व्यवस्था स्थपित करें जिससे व्यवस्था के सारे कार्य बहुत उत्तम प्रकार के हों। शासन की उत्तम–व्यवस्था और जगत् के शासक परमेश्वर की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए सदैव उसकी स्तुतिगान और प्रार्थना करते रहना चाहिए। सभी के अन्दर आस्तिकता की भावना निरन्तर बनी रहे। भौतिक एंव आध्यात्मिक उन्नति करके सदा सुखी बने रहें। इसके लिए परमात्मा की अनुकम्पा आवश्यक है।

44

ऐश्वर्यों वाली मातृभमि

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना।।

शब्दार्थ– (निधिम्) उत्कृष्ट पदार्थ या रत्न (गुहा) अन्तर गहराई में (बहुधा) अनेक प्रकार से (बिभ्रती) धारण किए हुए (पृथिवी) मातृभूमि (मणिं हिरण्यं) चमकीले रत्नादि या सुवर्ण (मे ददातु) मुझे प्रदान करे (वसुदा) उत्कृष्ट वस्तुओं से संचित (वसूनि) ऐश्वर्य को देने वाली (सुमनस्यमाना) प्रसन्नता से ओत प्रोत (रासमाना) परोपकार करने वाली (देवी) देवत्व गुणों से पूरित एवं मर्यादित।

भावार्थ– मंत्र में मणि–माणिक्य, सुवर्ण और अन्य बहुमूल्य रत्न, अन्वेषण द्वारा परिश्रम पूर्वक प्राप्त करके ऐश्वर्यवान् बनने की प्रार्थना की गई है। मातृभूमि के गर्भ में असंख्य रत्नादि और खनिज पदार्थ संचित हैं। इनका यथायोग्य बटवारा करके राष्ट्र के सभी प्रजा–जनों को ऐश्वर्यवान् बनाने की बात कही गई है। धन–सम्पदा गृहस्थ जीवन ही नहीं राष्ट्र के अन्य सभी कार्यों और विकास के लिए आधार है। सम्पन्न राष्ट्र में धन–धान्य और रत्नादि के भंडार होने चाहिए। मातृभूमि सम्पन्न तभी हो सकती है, जब इस पर निवास करने वाले सभी लोग सम्पन्न हों। एक वैभवपूर्ण समाज और एक सर्वसम्पन्न राष्ट्र में सभी का योगदान यथायोग्य होना चाहिए। धन बटवारे में भेदभाव किसी भी स्तर पर नहीं होना चाहिए। सभी लोग सुखी, स्वस्थ्य, सम्पन्न और एक दूसरे के पूरक बनें। धर्म और अध्यात्म के रहस्य को समझकर जीवन को पूर्णता की ओर बढ़ाने के लिए ईश्वर की भक्ति को भी मंत्र में आवश्यक माना गया है।

विवृति– हे भू–माता! आप तो रत्नगर्भा हैं। आप के अन्दर असंख्य गहरी गुफाएँ हैं जहाँ अनेक प्रकार के पदार्थ, रत्न और खजाने संचित हैं। कहीं किसी प्रकार का धन है तो कहीं अन्य प्रकार का। तात्पर्य यह है गुफाओं में कितना धन, रत्न व पदार्थ हैं इसका कोई पारावार नहीं है। हे माँ, अपने गर्भ–गुफा में संचित इन रत्नों और धनों से हमें समृद्धशाली बना दीजिए। हमें मणि, माणिक्य, सुवर्ण रत्नादि, धन प्रदान करें जिससे सुखी हो जाऊँ।

मातृभूमि रत्नगर्भा ओर वसुमती कही जाती है। वसुन्धरा और मही भी इसी का नाम है। रत्नों को धारण करने के कारण यह रत्नगर्भा है। वसुओं की माँ होने से यह वसुमती है। इस धरती पर ही (अनगिनत) असंख्य दिव्य तेज वाले रत्न, मणियाँ और जवाहरात पाए जाते हैं, जो अन्वेषक एवं

खोजकर्ता पृथ्वी के गर्भ में छिपे रत्नादि को निज परिश्रम से प्राप्त करते हैं, वे ऐश्वर्यवान होकर सुकीर्ति कमाते हैं, उनके गहन अनुसन्धान से समाज को अतिशय लाभ होता है।

हे भू–माता! आप धन–सम्पदा देने वाली हैं। आप वसुदा और महीमती कही जाती हैं। प्रजा–जनों को धन देना आप का स्वभाव है। इस लिए, हे माँ, हमें अतुल धन–सम्पत्ति प्रदान करती रहें। आप की कृपा बनी रहे जिससे हम सभी सुखी हों और समृद्धशाली हों। हे आश्रयदायनी माँ, हम तो आप से सदैव हर प्रकार से पोषण पाते हैं इस लिए धन देकर हमें सुखी बनाती रहें। समाज व राष्ट्र में कोई भी व्यक्ति अभाव और दुख से परेशान न हो। इस लिए हे माँ, वैभवपूर्ण समाज बने ऐसी कृपा सदैव बनाएँ रहें। तात्पर्य यह है कि धरती के अन्दर अतुल धन, सम्पत्ति, रत्न संचित हैं इनका उपयोग कर हमें सुखी बनना चाहिए, क्योंकि ये सभी वस्तुयें प्रजा–जनों के उपयोग और सुखी बनाने के लिए ही हैं।

धरती माता की रक्षा करने वाले वीर योद्धा अपनी पवित्र बुद्धि एवं सद्विवेक से जन–हितैषी कार्य करते हैं। इनका हर कार्य धर्म सम्मत होता है। हम सभी उनके धर्म–युक्त कार्यों से अनुप्रेरित होकर विश्व समाज के हित के लिए ब्रह्मवर्चस एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले बनें। इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है, हमारे कार्य निज स्वार्थ से अनुप्रेरित होकर कभी न सम्पन्न हों, इसमें ही सुकीर्ति है।

इस मंत्र की मूलभावना सत्यान्वेषी और शुभार्थी बनने के लिए है। इसी भावना में एक बात और भी कह दी गई है, वह है धरती में छिपे रत्नादि को सतत् परिश्रम एवं अन्वेषण के माध्यम से ही प्राप्त करें। मतलब, किसी से जबरन छीन–झपट कर या चोरी–जारी के जरिए कदापि न प्राप्त करें। खोज, शोध और अन्वेषण में शारीरिक एवं मानसिक (बौद्धिक) दोनों श्रम का ठीक उपयोग होता है। इसलिए इससे प्राप्त रत्नादि एवं धन निज, परिवार एवं समाज सब के लिए कल्याण कारक होता है।

भू–माता असंख्य रत्नादि और धन–सम्पदा से सदैव विभूषित रहती हैं। प्रजाजन पुरुषार्थ करते हुए सतत् धन–सम्पदा प्राप्त कर सुखी बनें और उन्हें बनाएँ जो धन–ऐश्वर्यों के न होने से दुख पाते रहते हैं। मंत्र में ऐश्वर्य के माध्यम से सम्पन्नता की पूर्ति की प्रेरणा दी गई है। ऐश्वर्य हमारे लौकिक और अलौकिक दोनों सुख के लिए आवश्यक हैं। लौकिक सुख दिव्य रत्नादि एवं धन–धान्य के माध्यम से प्राप्त होता है, लेकिन अलौकिक सुख जिसे परमानन्द कहा जाता है, वह इन रत्नादि, धन–सम्पदाओं के भोग के बाद तृप्त होने पर परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा से प्राप्त होता है।

धरती माँ, हम सभी को जीवन–पर्यन्त दोनों प्रकार के ऐश्वर्य एवं ब्रह्मवर्चस प्राप्त करने के लिए सतत् प्रेरित करतीं रहें। यहां यह प्रश्न उठाया जा सकता है धरती माँ किस तरह हमें प्रेरित करतीं हैं? वह तो निर्जीव दिखतीं हैं। लेकिन निर्जीव दिखने वाली भू–माता निर्जीव नहीं, परम चैतन्य हैं। यदि चैतन्य न होती तो चेतन एवं प्राण वाले जीवों का जीवन सम्भव नहीं था।

हम प्रजा–जनों की उत्कृष्टता धर्मपूर्वक धन प्राप्त करने में है। इस लिए धरती के अन्दर छिपे अतुल सम्पदा, धन व रत्न को जबरन पाने या चोरी के द्वारा न प्राप्त कर परिश्रम पूर्वक ही प्राप्त करना चाहिए। परिश्रम से प्राप्त धन ही व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्टa ds fy, dY;k.kdkjh gksrk gSA

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद का उपदेश ऐश्वर्यवान बनकर सुख प्राप्त करने का है। धरती के गर्भ में असंख्य प्रकार के पदार्थ, धन, रत्न और सम्पदाएँ हैं। इनका उपयोग सन्तुलित और ठीक तरह से किया जाना चाहिए। इससे व्यष्टि से लेकर समष्टि तक को सुखी बनाया जा सकता है। इस लिए मातृभूमि पर स्थापित शासन–व्यवस्था का प्रबन्ध इस प्रकार का होना चाहिए कि मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी प्रजा–जनों को उनकी आवश्यकता के अनुसार खानों से प्राप्त धन–सम्पदाओं का विपणन हो। सभी प्रजा–जन उससे प्रत्यक्ष या परम्परागत रूप से लाभ प्राप्त कर सकें। इसमें भाव यह है कि मातृभूमि पर निवास करने वाला हर व्यक्ति शासन से ऐश्वर्यवान बनाने की प्रार्थना कर रहा है और शासन–तंत्र का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह निष्पक्ष और कर्तव्य की भावना से प्रत्येक व्यक्ति को ऐश्वर्यशाली बनाकर सुख प्रदान करे। निर्धनता सबसे बड़ा अभिशाप है, दुख है। मातृभूमि से जो भी धन राज्य का शासन प्राप्त करे या निकाले उसमें सबका समान रूप से भागीदारी समझकर सबको उनकी आवश्यकता के अनुसार वितरण करे।

45

विविधताओं को धारण करने वाली मातृभूमि

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।

शब्दार्थ– (बहुधा) अनेक रंग व ढंग के (विवाचसम) विद्वतापूर्ण भाषा–भाव के सम्भाषण करने वाले (जनम्) विकास पसन्द लोग (बिभ्रती) धर्म को प्राप्त (यथौकसम्) संस्कृतिपूर्ण ढंग से

निवासित (नाना धर्माणाम्) अनेक धर्मों को मानने वालों की भाँति (अनपस्फुरन्ती) पूर्णतः स्फुरित न होने वाली (ध्रुवा) दृढ़ संकल्प या स्थिर खड़ी हुई (धेनुः इव) गौ के सदृश्य (मे) मुझको (द्रविणस्य) धन–ऐश्वर्य से पूर्ण (सहस्रं धारा) हजारों धाराओं वाली (दुहाम्) दुहते हैं।

भावार्थ– मातृभूमि की विविधताओं की चर्चा मंत्र में की गई है। प्रजा–जनों में यह विविधता भाषा–भेद, विचार–भेद, रंग–भेद, काल–भेद, विश्वास–भेद, कार्य–भेद, धन–भेद, व्यवहार–भेद और समुदाय–भेद, आयु–भेद, आश्रम–भेद, वर्ण–भेद, संस्कृति–भेद जैसे अनगिनत भेद देखें जाते हैं।

लेकिन इस विविधता से किसी में आपस में बैर–विरोध नहीं होता है। एक सर्व सम्पन्न राष्ट्र में इन भेदों के होते हुये भी सभी लोग मिलकर मैत्री भाव से रहते हैं। मंत्र में प्रेरणा दी गई है कि पुरुषार्थ और अपना स्वधर्म निभाते हुए सभी लोगों को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए मातृभूमि और राष्ट्र की सेवा में कभी न्यूनता नहीं करना चाहिए। राष्ट्र धर्म और जीवन धर्म का पालन में बराबर की कुशलता दिखनी चाहिए।

विवृति– हमारी यह मातृभूमि विविधताओं को धारण करती रहती है। ये विविधताएँ जीवन, परिवार, समाज, संस्कृति, भाषा और धर्म की हैं। मानव जाति से सम्बन्धित विविधताएँ ही आश्चर्य में डालने वाली हैं। मातृभूमि पर निवास करने वाले असंख्य मानवों की भाषाएँ भिन्न–भिन्न हैं। परिवार की बनावट और जीवनदर्शन भिन्न हैं। संस्कृति अलग–अलग हैं। एक भाषा बोलते हुए भी स्वर–भेद एवं ध्वनि–भेद के कारण उनकी वाणियाँ भिन्न–भिन्न हो जाती हैं। भाषा की भिन्नता का कारण एक दो नहीं, बल्कि अनेक हैं। इस कारण से भाषाई भिन्नता की विविधता भी अद्‌भुत है। भाषा से क्षेत्र, समुदाय, राष्ट्र और समाज की पहचान जुड़ी हुई है। इस कारण से भाषाई भिन्नता का महत्त्व मातृभूमि की विविधता का प्रमुख अंग है। काल, स्थान और अन्य कारणों से भी उनके विचार मातृभूमि के प्रति हमेशा परायणता का होता है। तात्पर्य यह है कि भाषा–भेद के कारण प्रजा–जनों में आपसी प्रेम, एकता और मानवीय चेतना के सूत्र कम नहीं होने चाहिए।

मातृभूमि पर बसने वाले प्रजा–जनों की स्वधर्म की विविधता कई प्रकार की है। एक दूसरे के प्रति व्यवहार, सब के भिन्न–भिन्न प्रकार के हैं। कोई गुरु है तो कोई शिष्य। कोई राज्याधिकारी है तो कोई प्रजा के रूप में अपने कर्तव्य निभा रहा है। परिवार में कोई पति है तो कोई पत्नी तो कोई मां है तो कोई पिता। लेकिन सभी अपने धर्म का पालन करने वाले हैं। समाज में कोई ब्राह्मण का कर्म कर रहा है तो कोई क्षत्रिय के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा हैं। कोई वैश्य है तो कोई श्रमिक के रूप में अपना स्वधर्म निभा रहा है।

इसी प्रकार आश्रम धर्म का पालन भी आयु और परम्परा को ध्यान में रखते हुए किया जा रहा है। कोई गृहस्थ–धर्म का पालन कर रहा है तो कोई ब्रह्मचर्य का तो कोई वानप्रस्थ का तो कोई संन्यास का। विविधता वाली मातृभूमि के मानवीय कार्य–व्यवहार में शिक्षक का कार्य करने वाले, व्यापार करने वाले और कृषि तथा उद्योग–धन्धें चलाने वाले और उनसे सम्बन्धित प्रजा–जनों के द्वारा निभाए जा रहे स्वधर्म का पालन कर्तव्यनिष्ठा से करना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। तात्पर्य यह है भू–माता पर बसने वाले जितने भी मानव प्रजाजन हैं सभी अपने–अपने स्वधर्म का पालन, अपनी क्षमता, योग्यता और रुचि के अनुसार करते हैं। विविधताओं वाली प्रजा–जनों की विविधता इतने रूपों में है कि वर्णन करना सहज नहीं। प्रकृति, देश, काल, जगत् और ईश्वर–विश्वास सम्बन्धी विविधता के कारण प्रजा–जनों में भिन्नता है। सब के अपने विचार और आचार हैं। विचार–भेद और दर्शन–भेद के कारण व्यवहार–भेद और स्वधर्म का पालन का भेद भी दिखाई देता है। इसका भेद परम्पराओं, धाराणाओं और मान्यताओं तक में गहरे तक दिखाई पड़ता है। प्रजा में अर्चना, संस्कार, कर्मकांड और अन्य रूपों में भेद दिखाई पड़ते हैं। पृथकता एक शाश्वत सत्य के रूप में हम देखते हैं। इसके बावजूद भी सभी मातृभूमि के प्रजाजन अपने कर्तव्य को दूसरे के कर्तव्य से बड़ा या छोटा नहीं समझते।

मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी प्रजा–जनों में जो विविधता है, उसमें आपसी मैत्री सम्बन्ध कभी कमजोर नहीं होते। भले ही वे भिन्न–भिन्न भाषाएँ या बोलियाँ बोलते हों। भले ही उनके रीति–रिवाज संस्कार और संस्कृति भिन्न–भिन्न हों। भले ही उनके व्यवहार मेल न खाते हों। यह सब कुछ होते हुये भी, उनमें आपसी प्रेम का भाव लगातार बना ही रहता है। वाणी–भेद, भाषा–भेद, विचार–भेद , संस्कृति–भेद, स्थान–भेद और धर्म–भेद, उन्हें पृथक–पृथक नहीं करता, क्योंकि सभी मातृभूमि के ही प्रजा–जन हैं। सब में स्नेह व प्रेम ऐसा है जैसे परिवार में भाई–भाई का आपसी प्रेम होता है।

मातृभूमि पर बसने वाले सभी प्रजा–जनों को मैत्री सम्बन्ध मातृभूमि की समृद्धि एवं खुशहाली लाने वाला है। इस मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध के कारण ही धन का प्रवाह सहस्रों धाराओं से होता है। ये धन (द्रविण) की धाराएँ ऐसी ही हैं जैसे गाय अपने वोग्धा को बहुत ही शान्तिपूर्वक अमृत की तरह दूध की धाराएँ प्रवाहित कर देती है। हमारी भू–माता भी उसी 'गौ' की तरह है। वह अपने प्रजा–जनों को असंख्य धाराओं से धन प्रवाहित करती है। इससे प्रजाजन सुखी एवं खुशहाल रहते हैं।

हे मातृभूमि ! आप की कृपा से हम प्रजा–जनों के लिए गौ के दुग्ध की धाराओं सदृश्य धन की धाराएँ सतत् प्रवाहित होती रहें। हम ऐश्वर्य और सुख वैसे ही प्राप्त करते रहें, जैसे

अब तक प्राप्त करते आए हैं।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेदमाता का उपदेश मानव मात्र को अपने स्वधर्म एवं स्व–कर्तव्यों के पालन के लिए प्रेरणा दे रहा है कि वाणी–भेद, धर्म–भेद, भाषा–भेद, स्थान–भेद, रंग–भेद, आयु–भेद होते हुए भी सभी को आपस में मैत्री पूर्वक प्रेम से रहना चाहिए। मातृभूमि सभी की है, सभी उसके पुत्र हैं। जिस प्रकार एक परिवार में सभी लोग बहुत आत्मीयता पूर्वक रहते हैं वैसे ही सभी को मातृभूमि के प्रजा–जनों को एक परिवार मानते हुए प्रेम का व्यवहार करना चाहिए। इससे ही मातृभूमि में समृद्धि आती है। इससे ही समाज में खुशहाली आती है और इससे ही राष्ट्र में एकता व शक्ति का संचार होता है। आपस में मैत्री भावना से ओत प्रोत होकर रहने से ही धन का प्रवाह सतत् प्रवाहित होता रहता है। तात्पर्य यह है, अनेक भेद होते हुए भी जब सभी लोग आपस में बिना आग्रह–दुराग्रह, द्वेष, ईर्ष्या या स्वार्थ के वशीभूत होकर व्यवहार करते हैं तो हर प्रकार से उन्नति होती जाती है।

कवि ने कहा है–

प्रेम, एकता, भाईचारा सदा बनाकर रखना।
इससे सब में मैत्री बढ़ती जीवन का है विधना।।

46

विषैले जीव–जन्तुओं से निरापद मातृभूमि

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्त जब्धो भृमलो गुहाशये।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोपसृपद्यच्छिवं तेन नो मृड।।

शब्दार्थ– (पृथिवि) हे भू–माता (यः) जो (सर्पः) रेंगने वाले जीव–जन्तु या सर्प (गुहाशये) बिल में रहने वाले (वृश्चिकः) बिच्छु या डंक मारने वाले जीव (हेमन्त जब्धः) ढिढुरता हुआ (भृमलः) डर के मारे घुमरी आ जाए (क्रिमिः) कीड़े–मकोड़े (प्रावृषि) वर्षा काल में (यद्‌यत) जो भी (एजति) रेंगते हुए (जिन्वत्) जगकर (तत्) और वह (नः) हम सभी पर (मा उप सृपत्) मुझसे दूर रहें (शिवम्) जो मंगल हो (तेन) उससे (नः) हमें (मृड) अभय कर दीजिए।

भावार्थ– पृथ्वी पर असंख्य तरह के जीव–जन्तु रहते हैं। इसमें से अनेक विषैले भी होते हैं जिनके विष से मानव की मृत्यु भी हो जाती है। मंत्र में ऐसे विषैले जीव–जन्तुओं से सुरक्षा

शासन की ओर से किये जाने का प्रसंग वर्णित है। ये रेंगने वाले विषैले जीव सर्प, विच्छु और अन्य प्रकार के होते हैं। मातृभूमि से प्रार्थना की गई है कि सभी प्रजा–जनों को ऐसे विषैले प्राण घातक जीवों से अभय प्राप्त हो। धरती पर हितकारी जीवों का निवास हो। मातृभूमि विषैले जीव–जन्तुओं से रहित हो। जीवन की समृद्धि और सुख के लिए मानव को सताने वाले तीन तापों– दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को व्याप्त न हों। हितकारी और मंगलकारी शक्तियाँ प्रत्येक जन के जीवन का संरक्षण करती रहें।

विवृति– हे वसुमति! जो अनेक प्रकार के रेंगने और डंक मारने वाले जीव–जन्तु– जिनके काटने से शरीर में विष व्याप्त हो जाता है, उनसे हमारी रक्षा कीजिए। जो बिलों, खोहों और मादों में जाड़े की ऋतु में रहते हैं ऐसे जीव–जन्तु हमें स्पर्श न करें। मतलब, जिन जीव–जन्तुओं से हमें हानि पहुँच सकती है उनसे हमारी सुरक्षा कीजिए।

वर्षा ऋतु में अनेक रेंगने और चलने वाले विषैले प्राणियों से हमारी रक्षा कीजिए। मनुष्य को तीन तरह के ताप सताते हैं– दैहिक, दैविक और भौतिक। दैविक ताप से हम बचें रहें, तो अनेक दुखों से यहाँ तक कि मृत्यु से भी बच सकते हैं अर्थात विषैले जीव–जन्तुओं से हम बचकर पूर्ण और स्वस्थ जीवन जी सकते हैं। धरती माता सभी प्राणियों की नित आश्रय देती हैं लेकिन उनकी रक्षा भी करती हैं– जो धरती पर विषैले जीव माने जाते हैं उनसे। मार्ग पर चलते हुए हमें किसी जीव–जन्तु से भय न लगे अर्थात् विषैले जीवों से हमें अभय प्राप्त हो। अभय के बिना किसी भी कार्य को पूरा नहीं किया जा सकता है। इस लिए हे भू–माता, हमें हर तरफ से अभय प्राप्त हो। जीवन की समृद्धि अभय के संग बढ़ती जाती है। हमारा हर रास्ता और कार्य, निश्चलता के साथ हो।

हम जिस पथ पर चलें, वह मंगलकारी हो अमंगल कभी न हो क्योंकि मंगल ही हमारी सुभावना है, प्रवृति और संवेदना है। हे मातृभूमि, मंगल हमारा हर क्षण हो। अमंगल हमारा जिनसे–जिनसे होता हो, उन्हें हम सबों से दूर हटा दीजिए। जिस तरह से वर्षा के जल से अनेक प्रकार के जीव–जन्तु जन्म ले लेते हैं, असंख्य ऐसे जीव जो बरसात की बूंदों से नया–नया जीवन प्राप्त कर लेते हैं, हम सभी लोग आप से शक्ति और नव चेतना प्राप्त करके यशस्वी और दीर्घजीवी बनें।

हे धरती माँ! जितने मंगल करने वाले जीव–जन्तु हों, उनकी सहायता हम सब को प्राप्त हो। जिनसे हम सभी सुख पाएँ, उनके प्रति हम अपने दायित्व निभाएँ। विश्व में अनेक तरह की हितकारी शक्तियाँ हैं, उनसे ही समाज का कल्याण और प्रकृति को संरक्षण प्राप्त होता है। हम सभी प्रकृति के शुभचिन्तक बनकर सब के कल्याण के लिए सदैव तत्पर रहें। धरती पर

मंगल शुभ–कार्यों और सद् संकल्प से होता है। इसलिए हे माँ, हमारे संकल्प, कर्म एवं विचार सदैव शुभगामी हों।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद का परम पावन उपदेश में यह बताया गया है कि राष्ट्र में शासन द्वारा की जाने वाली व्यवस्थाएँ इस प्रकार की होनी चाहिए कि वर्षादि ऋतुओं में कष्ट पहुँचाने वाले जीव–जन्तुओं से रक्षा हो सके। साँप और बिच्छू जैसे विषैले जीव–जन्तु वर्षा ऋतु में इधर–उधर भागते रहते हैं। प्रजा–जनों को इससे किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे ऐसी व्यवस्था शासन की ओर से होनी चाहिए। मार्गों पर प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था तथा सफाई का ध्यान किया जाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को विषैले जीव–जन्तुओं से डर न लगे अर्थात् सभी अभय हों। यदि दुर्भाग्य से किसी व्यक्ति को विषैले जीव–जन्तुओं से कष्ट पहुँचता है तो उसकी चिकित्सा के प्रबन्ध की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है, ऋतुओं के अनुसार प्रजा–जनों की रक्षा का प्रबन्ध शासन की ओर से हर समय उपलब्ध होना चाहिए।

47

श्रेष्ठ मार्गों का निर्माण

ये ते पन्थानो वहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड।।

शब्दार्थ– (ये) जो (ते) तुम्हारे (पन्थानः) अनेक रास्ते हैं (जनायनाः) जिस पर लोग आते–जाते हैं (बहवः) बहुत से (रथस्य) रथों के (यातवे) आने–जाने लायक (वर्त्म) उपयोगी मार्ग (यैः) जिनसे या जिनके द्वारा (उभये) दोनों ओर (भद्रपापाः) अच्छे और बुरे दोनों तरह के (संचरन्ति) संचारित करते हैं (आना–जाना) (तं) उन (अनमित्रं) अजातशत्रु (अतस्कम्) तरस्करी से रहित (पद्धति) उसको (जयेम्) जीत लें (यत्) और जो (शिवं) मंगल करने वाले (तेन) उससे (नः) हमें (मृड) सुख दीजिए।

भावार्थ– मंत्र में उत्तम और सुरक्षित मार्गों के निर्माण और उन पर चलने वाले राहगीरों की सुरक्षा की चर्चा की गई है। जिन मार्गों पर हमारे ज्ञानवान् पूर्वज अभय पूर्वक आते–जाते थे, जिन पर दस्युओं और अन्य घातक प्रवृति के विध्वंसक लोगों का भय नहीं था ऐसे सुरक्षित मार्गों का ही निर्माण होना चाहिए। ग्राम, नगर और शहरों में यातायात के उत्तम साधनों की

सुव्यवस्था शासन की ओर से होनी चाहिए। वाहन ऐसे हों जो आरामदेह और तेज गति वाले हों। मार्गों पर किसी को अशपृस्य कहकर आने–जाने से नहीं रोका जाना चाहिए। हमारे विचार मानवता के रक्षक पूर्वजों की तरह सर्व हितैषी होने चाहिए। इससे अपना और समाज का सदैव मंगल होता है। मंत्र में सुभग पथ पर चलने की प्रेरणा दी गई है।

विवृति– हे भू–माता! बसाये गये शहरों व नगरों (जनपदों) में यातायात के अनेक साधन सुलभ हैं। सभी नगर व गाँव परस्पर सड़कों से जुड़े हुए हैं। इतना ही नहीं, गाँवों व नगरों को आपस में मिलाने का कार्य भी, ये मार्ग ही करते हैं। ये इस प्रकार से कार्य करते हैं कि जिससे किसी को किसी प्रकार की असुविधा न हो सके। ये मार्ग– सड़कें कई भागों में मिलकर विभक्त हैं। जिसमें पैदल यात्रियों के लिए अलग, मोटर गाड़ी के लिए अलग, भारी वाहन के लिए अलग (माल ढोने वालों के लिए अलग) मार्ग हैं। इस लिए किसी को किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती है। राष्ट्र में मार्गों की यह सुव्यवस्था प्रजा–जनों के हित में बनाई गई है। कोई भी इन मार्गों से कष्ट का अनुभव नहीं करता है।

हे माता! उन मार्गों पर चलने वाले सज्जन, विद्वान और मनस्वी–जन तो हैं ही, चोर, डाकू और अन्य प्रकार के दुष्ट चरित्र वाले व्यक्ति भी इन पर चलते हैं। लेकिन ऐसे दुष्ट (प्रवृतियों के लोगों को) स्वभाव के व्यक्तियों को उनके गंदे कार्य के लिए कारागार में तो डाला जा सकता है, लेकिन उन्हें उन मार्गों पर चलने से रोका नहीं जा सकता है, क्योंकि एक नागरिक के रूप में उन मार्गों का उपयोग करना उनका अधिकार है। इसी प्रकार, इन मार्गों पर अशपृस्य कहकर किसी को चलने से भी नहीं रोका जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है, राष्ट्र के समस्त नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के, उन पर चलने का समान अधिकार है।

हे मातृभूमि! शासन की सुव्यवस्था के कारण हम जिस मार्ग पर भी चलते हैं, उन पर डाकुओं, चोरों और अन्य दुर्बुद्धि वाले लोगों से हमें कोई भय नहीं लगता है। कहने का तात्पर्य यह है सभी मार्ग पूर्णतः निरापद हैं। हम सभी माँ, इन मार्गों पर निष्कंटक बिना भय के चलते जाएँ ऐसी मंगल कामना आप से हम करते हैं। आप की कृपा, हम सभी पर बनी रहे यही हम चाहते हैं।

हे भू–माता! अनेक प्रकार के मार्गों पर अनेक तरह के लोग आते–जाते हैं। ये रास्ते ऊबड़–खाबड़ , समतल और ऊँचे–नीचे होते हैं। इन राहों पर भी भले–बुरे जन प्रतिक्षण गुजरते हैं। इन्हीं मार्गों पर तरह–तरह के पशुादि भी आते–जाते हैं अर्थात् एक जगह से दूसरी जगह पर आने–जाने की सुगमता इन रास्तों से ही होती है। हे मातृभूमि! ये रास्ते हम सभी के लिए अभय हों, अर्थात् इन पर कोई कुकर्मी और कुपंथी रास्ता रोक कर न बैठ जाए।

हे धरती माता! उन राहों पर तरह–तरह के अन्न ढोए जाते हैं। व्यापारी व्यापार हेतु आवागमन करते हैं अर्थात् मनुष्य और पशु इन मार्गों पर चलते हैं, इनसे जो कार्य–व्यवहार होता है, वह सबके लिए शुभकारक हो। मनुष्य निष्कटंक पथों पर चलते हुए, अपने कार्यों को सम्पन्न करें। इसके लिए आवश्यक है ये सदैव शत्रु रहित हों। सभी प्रजाजन विचार करके निरन्तर मार्गों पर निर्भय हो आगे बढ़ते रहें। इससे उनका भला होगा ही समाज का भी उनके द्वारा कल्याण होगा।

शुभ विचार करके जो सतत् अपने कार्यों को सम्पन्न करते हैं वे ही सृष्टि–धर्म का सही अर्थों में पालन करते हैं। इसलिए हर इंसान को यह जरूरी है सदैव सद्‌विचारों के बाद ही अपने पथ पर अग्रसित हो। जो मनुष्य–धर्म का पालन करते हैं, वे ही सफल होते हैं। उनका जन्म धरती के लिए पुण्य और उन्नति का कारण है। विवेकवान् मनुष्य को चाहिए कि वे उन कुमार्गियों से दूर रहें जो अपने अशुभ संकल्प और दुर्विचार के द्वारा अपना और समाज का बहुत अहित करते हैं।

हे मातृभूमि! हम सबों को सदैव अभय प्रदान करें अर्थात् ऐसी प्रबल इच्छा शक्ति एवं सद् संकल्प से हम सभी को ओत प्रोत कर दीजिए जिससे भय पैदा करने वाले कुपंथियों को दूर हटा सकूँ। हम सभी जन पूर्वजों की भाँति अपने मिशन को पूरा कर सकें। हममें उत्साह, सत्साहस, अभीत्सा और धर्म–निष्ठा हमेशा बनी रहे। हम कभी भी कायरता के रास्ते पर न चलें। कृपणता और कृतघनता से भी सदैव दूर रहूँ। समाज का हित अपना हित समझूं और समाज का अकल्याण का दूषित विचार हममें किसी में भी न आए।

हे मातृभूमि! शासन की सुव्यवस्था के कारण हम जिस मार्ग पर भी चलते हैं उन पर डाकुओं, चोरों और अन्य दुर्बुद्धि वाले लोगों से हमें कोई डर नहीं लगता है। हे माँ, इन मार्गों पर निष्कंटक, बिना भय के हम चलते जाएँ ऐसी मंगल कामना आप से हम करते हैं। आप की कृपा हम सभी पर बनी रहे, यही हम चाहते हैं।

हे धरणि! उन बाटों पर हमारा सतत् आना–जाना जिस पर हमारे समाज–कल्याणी पुरखे चलते आए हैं। जिन राहों पर रथी रथों पर बैठ कर शत्रु सेना को परास्त कर देते है, उन रास्तों का हम सभी अनुसरण करें, उनका पथिक बनूँ। जिन मार्गों पर चल धर्म–योद्धा धर्म की विजय और अधर्म का पराजय करते आए हैं, वे हमारे लिए निष्कंटक और शुभ हों। यदि इन मार्गों पर लूट–मार करने वाले, वधिक और बटमार चलें तो उन्हें हम सभी मिलकर दूर हटा दें। ऐसा शुभ संकल्प हम सभी में प्रतिपल दृढ़ होता रहे।

हे वसुमति! जिन मार्गों पर चलने से हम लोगों का भला होता हो, उन पर निरन्तर आगे बढ़ने के लिए हम सभी को प्रेरित करती रहें। जिन पर चल कर हमारा इहलोक एवं परलोक सुधरता हो, वे मार्ग हमारे विजन के लिए शुभकारी एवं सुखकारी हों। हम सभी के जीवन के अनेक रास्ते हमारे सभी के लिए विचार के लिए प्रतिबद्ध हैं। किन पर चलने से सत्य और न्याय की वृद्धि होती है, ऐसा विचार करके ही हम उन पर आगे बढ़ें। इसी में ही जीवन–लक्ष्य की पूर्ति हो सकती है, इससे ही परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है।

हे भू–माता! हमें हर तरह का सुख प्रदान करें, जिससे हम सब का लक्ष्य सुख पूर्वक प्राप्त हो सके। जैसे आप दिव्यता, क्षमा–शीलता और ऐश्वर्य से मुक्त हैं, वैसे ही हम सभी को प्रदान करें।

मातृभूमि के स्तुतिगान के इस वेदोपदेश में मनुष्य को यह उपदेश दिया गया है कि राष्ट्र के ग्राम, शहर, नगर (जनपद) में यातायात की जो सुव्यवस्था सुन्दर ढंग से की गई है, वह प्रशंसनीय है। राजमार्ग या सड़कें किस प्रकार की बनाई जानी चाहिए, उसे भी उत्तम तरीके से समझाया गया है। जैसे रथों के चलने वाले, पैदल चलने वाले, यात्रियों के लिए, भारी वाहनों के लिए और यात्रियों को ढोने वाले राजमार्ग अलग–अलग होने चाहिए। जिससे यातायात सुगमता और अच्छी प्रकार से हो सके। इसके अतिरिक्त आपस में किसी प्रकार का टक्कर न हो और किसी को कोई हानि न उठानी पड़े। सभी राष्ट्रवासी बिना किसी भय के यात्रा कर सकें और व्यवस्था करने वालों को चाहिए कि घातक प्रवृतियों के लोगों से यात्रियों की रक्षा की उत्तम–व्यवस्था सदैव करते रहें। मार्गों पर सब का बिना भय के और बिना भेदभाव के समान रूप से चलने का अधिकार होना चाहिए। यह समाज व राष्ट्र दोनों के हित में है।

48

अपरमित सहनशक्ति वाली मातृभूमि

मल्वंबिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय।।

शब्दार्थ– (मध्वं) अन्तर शक्ति (बिभ्रती) जो धारण करती है (गुरुभृत्) गम्भीर व्यक्तित्व या भारी और बड़े पदार्थों को धारण करने वाली (भद्र पापस्य) भले और बुरे की (निधनम्) प्राण से

रहित (वराहेण) उत्तम जल देने वाली (संविदाना) अच्छी वर्षा कराने वाली (तितिक्षुः) तप करने वाली या सहनहील (सूकराय) सुन्दर विवरण युक्त या उत्तम कर्म करने वाले (पृथिवी) भू–माता (मृगाय) किरणों को सदा पवित्र करने वाली।

भावार्थ– धरती माता में जो अपरमित सहनशक्ति, क्षमाशीलता और सब के संरक्षण का स्वभाव है वह सभी के लिए प्रेरणाप्रद है। बिना किसी भेदभाव और स्वार्थ के सब के कल्याण का स्वभाव जैसे परमपिता परमेश्वर का है वैसा ही भूमिमाता का है। गुरुत्वाकर्षण की जैसी शक्ति धरती माता में है अन्य किसी भी उपग्रह, ग्रह या नक्षत्र में नहीं पाया गया है। सभी प्रकार के धर्मों, नियमों और जीवन देने की जैसी क्षमता पृथ्वी में है वैसी अन्य किसी में नहीं। इस लिए हम सभी प्रजा–जनों को भूमिमाता को साक्षात् देवी मानते हुए इनके संरक्षण, सुरक्षा और पोषण के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। पर्यावरण, जीवनशक्ति, अन्न, फल, मेवे, रस और अन्य सभी पोषक चीजें ही नहीं रत्न, खनिज और अपार ऊर्जा की स्रोत भी पृथ्वी माता है। हम सभी को अपने कर्तव्यों को पालन करते हुए भू माता के विकास और विस्तार के लिए स्वर्गिक वातावरण धरती पर बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। यह मानवीय धर्म तो है ही हमारा पावन कर्तव्य भी है।

विवृति– हे मातृभूमि! आप में अपरमित सहनशक्ति है। वन, पर्वत, सागर, नदियाँ, पशु, मनुष्य से लेकर अनन्त प्रकार के जीव–जन्तु और पदार्थों को आप निरन्तर धारण करती हैं। ऐसा पदार्थ या प्राणी नहीं जिसका हर प्रकार के भार को न धारण कर रही हों। आप पर ही,समाज का मार्गदर्शन करने वाले महापुरुष और चिन्तक (कवि व लेखक) निवास करते हैं। हम तो आप की अतुलित सहनशक्ति से आश्चर्य में हैं, यह कैसे संभव हुआ!

हे भू–माता! आप की सहनशक्ति के क्या कहने। ऐसी कौन सी घटना या कार्य नहीं जिसका प्रभाव आप पर न पड़ता हो। आप लोगों के जन्म–मरण को सहन करती हो, वह चाहे श्रेष्ठ प्रवृति के हों या दुर्गुणी। गुरुत्वाकर्षण की शक्ति से युक्त हमारी मातृभूमि हर तरह के सुभग और दुर्वृत्ति वाले लोगों को धारण करने वाली है। इस असाधारण धारण करने की प्रवृत्ति के कारण पृथ्वी माता को **धरणि** कहा जाता है। भू पर जितने भी धर्म (सृष्टि नियम के अनुसार) चलायमान हैं सभी धरणि माता के अनुसार व्यवस्थित हैं। इसलिए वसुमती माता सर्वश्रेष्ठ व्यवस्थापिका भी हैं। भू–माता ही सभी धर्मों की नियन्ता हैं। जिन धर्मों से प्राणी और अप्राणी दोनों व्यवस्थित हैं, वे हम सबके लिए सदैव शुभकारी बने रहें। पृथ्वी माँ की गति के कारण ऋतुएँ बदलती हैं और वर्षा भी होती है। सूर्य की किरणें अपने प्रभाव से जीवन को जागृत करतीं हैं और पर्यावरण को स्वच्छ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अर्थात् पृथ्वी

की शक्ति एवं धर्म से ही सृष्टि की निरन्तरता बनी हुई है। हम लोग इस रहस्य को समझें और सृष्टि–धर्म का पालन करते हुए धरती माता के विकास के लिए अपने मानवीय एवं सृष्टि–धर्म का निरन्तर पालन करते हुए निज कर्तव्यों एवं व्यवहारों को व्यवस्थित ढंग से करते रहें। पृथ्वी में अनन्त शक्ति और धारणा–शक्ति है, इन शक्तियों को किस तरह मानवीय एवं सृष्टि–विकास के लिए कैसे उपयोग करें, इस पर निरन्तर अनुसंधान एवं चिन्तन करते रहें। विज्ञान, धर्म, अध्यात्म एवं तंत्र–यंत्र के क्षेत्र में जितने भी अनुसंधान हो रहें हैं और पहले भी हुए हैं, सभी पृथ्वी से ही उद्भुत हैं। सृष्टि के नियम जैसे सृष्टिकाल से गतिमान एवं व्यवथित हैं उसी तरह अनन्त नियम (धर्म) इस सृष्टि में व्यवस्थित हैं। हम सभी इन नियमों को खोजते हुए अनेक रहस्यों को जाने–समझें और मानवता को सुखी बनाने के लिए कार्य करें ऐसा संकल्प करें।

जितना सुदृढ़ संकल्प हमारा होगा, मानवीय धर्मों को बढ़ाने में उतनी तीव्र गति से मानवता को सुखी करने में हमारा योगदान होगा। हम सभी निरन्तर निज पर आस्था रखते हुए आगे बढ़े, संघर्षों को पार करें, कुधर्मियों को परास्त करें– यह कोशिश निरन्तर बनी रहनी चाहिए। धरती को सुखी बनाकर ही खुद को सुखी बनाना सुयोग्यता होती है, इस रहस्य को समझें और भू–माता के संरक्षण, पोषण और सुरक्षा के लिए कार्य करते रहें। तभी धरती पर स्वर्गिक वातावरण का प्रादुर्भाव होगा। सब सुखी होंगे, सब धार्मिक बनेंगे।

हे माँ! आप प्रजा–जनों के हित में मेघों से मैत्री बनाए रखती हो। प्रजा–जनों के हित में सदैव आप का स्वभाव होने के कारण ही परमात्मा की अनुकम्पा सदैव आप पर बरसती रहती है। परमात्मा की कृपा का ही प्रतिफल है कि प्रजा–जनों के हित में मेघ समय–समय पर उचित मात्रा में जल बरसाते रहते हैं। और उस वर्षा के जल से ही यथेष्ठ मात्रा में कृषक जन खेती करते हैं। जिससे सभी सुखी होते हैं। सुकर्म (श्रेष्ठ कर्म) प्रजाजन जो कार्य विधि–विधान पूर्वक सम्पन्न करते हैं, जिनके कार्यों में पावनता और सर्वहित की भावना होती है, जो समाज, राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्यों से प्रसन्न करते हैं–उन लोगों पर आप की अनुकम्पा सदैव बनी रहती है। ऐसे लोग, समृद्धि और सुख–मंगल प्राप्त कर सुखी होते हैं।

हे माता! आप की कृपा और परमात्मा की अनुकम्पा हम प्रजा–जनों पर इसी प्रकार से सदैव बनी रहे और आप से हमारा हमेशा कल्याण होता रहे ऐसी हम कामना करते हैं।

मातृभूमि के स्तुतिगान के इस वेदोपदेश में अत्यन्त प्रेरणाप्रद बातें कहीं गई हैं। पहली बात यह है, कि पृथ्वी पर जो भी वन, पर्वत, सागर व पदार्थ हैं सब का यथायोग्य सदुपयोग किया जाना चाहिए। सारी वसुधा पर सुख, शान्ति और सद्भावना का वातावरण बनें इसके लिए

आवयश्यक है कि उत्तम कोटि की संतान पैदा हो। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र की उन्नति के लिए शिक्षा और विद्या के पठन–पाठन की भी समुचित व्यवस्था हो। कोई समाज व राष्ट्र महान् तब बनते हैं जब वहाँ का हर व्यक्ति सद्‌गुणों से भूषित हो। क्योंकि सद्‌गुण ही व्यक्ति को दुख–सुख, विपत्ति–सम्पत्ति को समान–रूप से सहन करने की शक्ति समाज में पैदा करते हैं। चरित्र की उच्चता व्यक्ति को महान् बनाती है। समाज को श्रेष्ठ बनाती है, और राष्ट्र को प्रगतिशील बनाती है। इस लिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने चरित्र की रक्षा करे। चरित्र की रक्षा कर व्यक्ति ईश्वर की अनुकम्पा का भागी बनता है। ईश्वर की कृपा से समय से वर्षा होती है और वर्षा से कृषि भरपूर होती है। प्रजा–जनों को चाहिए वर्षा के जल का ठीक तरह से संरक्षण करके उसका यथायोग्य उपयोग सुनिश्चित करें और सब के लिए वर्षा का जल सुलभ करायें। एक आदर्श समाज व राष्ट्र तब महान् बनते हैं, जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य उत्तम रीति से, व्यवस्था पूर्वक और अनुशासन में करता है। समाज व राष्ट्र की प्रगति को अपने प्रगति या उन्नति मानकर कर्म करने से परमात्मा की विशेष अनुकम्पा, हम पर सदैव बरसती रहती है।

49

हिंसक वनचारी पशु से रहित हो मातृभूमि

ये ते आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत्।।

शब्दार्थ– (ते) तुम्हारे (ये) जो (पृथिवि) हे भू–माता! (आरण्याः) वन में (पशवः) घरेलू चतुष्पद (हिताः) कल्याणकारी (पुरुषादः) आदमखोर (मृगाः) तीव्र धावक या मृग (सिंहाः) शेर (व्याघ्रा) खुंखार पशु बाघ (संचरन्ति) विचरण करते हैं (वने) वन में (उलम्) सियार या तीक्ष्ण स्वभाव चाले (वृकम्) भेड़िया या बिगवा (ऋक्षीकाम्) भालू या रीक्षनी आदि पशु (दुच्छनाम्) बौराए हुए पशु या दुष्ट स्वभाव के (रक्षः) राक्षस या छिप कर प्रहार करने वाले (अस्मत्) मुझसे (अप बाधय) दुख का कारण न बनें या दूर हटा दें।

भावार्थ– मंत्र में मातृभूमि से वन्दना करते हुये कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक ताप से ग्रस्त न हो। कोई वनचारी हिंसक पशु न

किसी पर आक्रमण कर सके और न ही कोई इनका शिकार ही बने। यह तभी संभव है जब शासन और समाज का प्रत्येक व्यक्ति इस सम्बन्ध में पूर्णतः सजग रहेगा। यह भी प्रार्थना की गई है कि हममें ऐसी शक्ति और सामर्थ्य हो, जो सभी प्रकार के दुखों और संकटों को बहुत ही धैर्य और सत्साहस के साथ पर पा सकू। हमारा और पशुओं का आपसी सम्बन्ध अहिंसक और सद्भावना से पूर्ण हो। हममें से कोई किसी पशु को न सताए और न उसका वध करे और न ही कोई पशु हम पर आक्रमण करके जीवन को संकट में डाले। हम सभी अपना सम्पूर्ण जीवन बहुत ही निर्विध्न रूप से व्यातीत कर सकें।

विवृति– इस धरती पर अनेक पशु रहते हैं। वन में रहने वाले और पालतू दोनों तरह के पशु हमारे लिए सुखदाई हों। जो पशु नरभक्षी होते हैं, जो तेज दौड़ते हैं, ऐसे असंख्य खुंखार शेर, बाघ और भालू इस धरती पर रहते हैं। सियार, बिगवा (भेड़िया) और पागल पशु इसी मातृभूमि के अंग हैं। हे भू–माता, इन हिंसक व खुंखार पशुओं से हमारी रक्षा करो। जो जानवर हम सब के लिए हितकारी हों, हम सब उनकी रक्षा करें।

हे मातृभूमि! अनेक चौपाएँ हिंसक एवं खुंखार पशुओं का वनों में बसेरा है। वन में जिन पशुओं का आतंक रहता है वे सदैव हम सबसे दूर रहें। इनका स्वभाव हमारे लिए विकट दुख का कारण न बने। हम इनसे घायल न हों और न इनके आक्रमण से हमारे जीवन का ही नाश हो अर्थात् हम सदा इनके विनाश से बचे रहें।

मनुष्य के जीवन को तीन ताप सदा सताते हैं। ये हैं– आधिदैविक, आधिभौतिक और आधात्मिक। ये तीनों ताप सृष्टिकाल से मनुष्य को कष्ट और मृत्यु का कारण रहे हैं। आधिभौतिक ताप अन्य दोनों तापों की तरह अत्यन्त दुखदाई होता है। इस ताप से हिंसक पशु–पक्षियों से मनुष्य ग्रसित होता है। यह ताप हम मनुष्यों को ग्रसित न करे। हे भू–माता! ऐसी शक्ति हममें दीजिए जिससे इस ताप से हम बच सकें। इनसे हम सब सभी प्रजाजन निर्विघ्न रहें। ऐसा सुखद समय अनवरत् स्थिर रहे।

मनुष्य जीवन में स्वर्गिक सद्भाव सतत् बना रहे, यह तभी सम्भव है, जब किसी तरह के ताप से हम प्रजाजन तापित न हों। ये ताप, जीवन के आनन्द और आस्था को बाधित करते हैं। घर, द्वार, बाग, खेत, वन और जंगल हम सबके लिए सुखदायी हों और हम आधिभौतिक ताप से ग्रसित न हों। यहां मनुष्य समाज अपने गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार जीवन–यापन करता है। हम मनुष्यगण, हिंसक पशुओं से द्वेष न करें और हिंसक चौपाए जानवर भी हम पर आक्रमण न करें, ऐसा वातावरण सदैव सुशोभित होता रहे।

हे धरती मां ! आप के संरक्षण और सुरक्षा में हम सभीं अनवरत् सुखदायी जीवन बसर करते रहते हैं। कभी सुख–प्रवाह बाधित न हो –किसी हिंसक पशु से या हिंसक दो पाए मानव से। आप हममें ऐसी प्रवृत्ति समावेशित कर दीजिए जिससे हिंसक पशु भी हमारे लिए अहिंसक भाव से बर्ताव या व्यवहार करें।

वेद स्तुतिगान के इस मंत्र में मानव को अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रेरणा दी गई है। कहा गया है, प्रजा–जनों के कल्याण हेतु राष्ट्र के प्रबंधकों को ऐसी उत्तम–व्यवस्था करनी चाहिए जिससे हिंसक व जंगली पशुओं से रक्षा हो सके। कोई भी व्यक्ति हिंसक पशुओं से प्रताड़ित न हो। गाँव व शहरों तथा नगरों में आकर हिंसक पशु प्रजा–जनों को अपना शिकार न बनाएँ। कहने का तात्पर्य यह है कि शासन की उत्तम–व्यवस्था से हिसंक पशुओं से रक्षा और उनसे अभय सदैच प्राप्त हो सकता है। इस लिए शासन को इस ओर सदैव सतर्क रहना चाहिए।

50

दरिद्रता एवं विलासिता से रहित हों

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय।।

शब्दार्थ– (भूमे) हे भूमिमाता! (ये) जो (गन्धर्वा) स्वच्छन्द विचरने वाले (अप्सरसः) प्रतिकूल करने वाले या विलासिनी स्त्रियाँ (च) और (अरायाः) निर्धन (किमीदिनः) धन हरण करने वाले (तान्) उन (पिशाचान्) अभक्ष सेवन करने वाले (राक्षांसि) नराधम् या राक्षस–वृत्ति के (अस्मद्) हम सभी से (यावय) सदैव दूर कर दें (सर्वा) सभी।

भावार्थ– विलासिता और दरिद्रता दोनों समाज और राष्ट्र के लिए ठीक नहीं हैं। समाज में धन–दौलत के संग्रह में एक सन्तुलन और सामंजस्य होना चाहिए। मंत्र में अहितकारी प्रवृति और राक्षसी प्रवृति के लोगों को दूर हटाने या समाप्त करने की भी चर्चा की गई है। सात्विकता और शुभता पर विशेष बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त चुगली, निंदा करने वाले और समाज के अन्य दुर्वृति के लोगों को भी समाज में अहितकर मानते हुए इनसे दूर रहने की प्रेरणा दी गई है। समाज में किसी प्रकार की अव्यवस्था न फैले इसका दायित्व सभी सजग प्रजा–जनों को अपने कर्तव्यों को संतुलित ढंग से निभाने की बात भी कही गई है।

अपनी उन्नति से नहीं अपितु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझने की प्रेरणा दी गई है।

विवृति– हे भूमिमाता! ऐसे लोग जो स्वछन्दता पूर्वक विलासिता का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, जो केवल विलासिता को प्रकट करने वाले वस्त्र, तेल, इत्रादि लगाते हैं जिनका जीवन ही अमोद–प्रमोद का पर्याय है ऐसे गंधर्व प्रकृति के लोग समाज व राष्ट्र के लिए कदापि हितकारी नहीं हो सकते हैं। अतः ऐसे विलासी प्रकृति के लोगों को दूर हटा दें। विलासी पुरुष ही समाज व राष्ट्र के लिए अहितकारी नहीं होते बल्कि ऐसी स्त्रियाँ भी समाज व राष्ट्र के लिए भी हितकारिणी नहीं होती हैं। ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ भी समाज व राष्ट्र के लिए हितकारी नहीं हैं जो दूसरों के धन को लालच भरी दृष्टि से देखते हैं। वे चाहे निर्धन व्यक्ति ही क्यों न हों। समाज व राष्ट्र में प्रबन्धन ऐसा होना चाहिए कि जिससे सभी वर्गों की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकें। समाज में ऐसे लोग भी हितकारी नही हैं जो चुगली–निंदा जैसे पिशुन कर्म करते हैं। जो पिशाच प्रवृति अर्थात् मांसाहारी हैं वे समाज में निवास करने लायक नहीं हैं। अतः ऐसे लोगों को हे माँ, दूर हटा दीजिए। मांसाहार मनुष्य का भोजन नहीं हैं, प्रत्युत शाकाहार ही सात्विक मानव का भोजन है। मांसाहार राक्षसी प्रवृति के लोगों का भोजन है। ऐसे लोग ही राक्षस कहे जाते रहे हैं।

पृथ्वी पर स्वछन्द विचरण करने वाले गंधर्व, दूसरों का अहित करने वाले व्याघाती, धन–दौलत हरण करने वाले डाकू और चोर, मांसादि का सेवन करने वाले राक्षसों से हमारी रक्षा हो। हे भू–माता! ऐसे दुष्ट–प्रकृति वाले नराधम जिसे हम सभी का अहित हो सकता है, उनसे हमारी रक्षा कीजिए।

हे भूमिमाता! वे लोग भी समाज में कैसे रह सकते हैं जो अवसर पाते ही धोखे से दूसरों पर आक्रमण करते हैं या धन हरण करते हैं। ऐसे विध्वंसकारी प्रवृति के लोग समाज व राष्ट्र में रहने लायक नहीं होते हैं, अतः इन्हें दूर हटा दीजिए। समाज में इनको रहने से हानि–ही–हानि है।

धनहीन व्यक्ति भी समाज के लिए अच्छे नहीं होते हैं, क्योंकि निर्धन होने के कारण दूसरों के धन के प्रति ये ललचाई दृष्टि से देखते हैं। अतः ऐसे निर्धन भी समाज में न रहें जो धन की विवशता के कारण दूसरों के धन पर ललचाई दृष्टि लगाते हों। कहने का भाव यह है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति धन–ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हो। सब की आवश्यकताएँ पूर्ण होती रहें। लेकिन, यही धन–दौलत ईर्ष्या का कारण भी होता है। इस लिए इतना ही धन होना चाहिए जिससे जीवन विलासी न हो जाए।

धन–दौलत इतना हो कि सब को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक पवित्रता की रक्षा हो सके और सभी सादगी व तप पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण कर सकें। तात्पर्य यह है कि धन, सम्पत्ति उतना ही संग्रह करना चाहिए कि जिससे सभी आवश्यक आवश्यकताएँ पूरी की जा सकें। भाव यह है जहाँ निर्धनता व्यक्ति, परिवार व समाज के लिए अभिशाप है वहीं पर विलासिता भी समाज के लिए घातक है। विलासिता से समाज में अव्यवस्था फैलती है और राष्ट्र दुर्बल हो जाता है। अतः हे माता, समाज में कोई विलासी भी न रहे और न निर्धन ही।

हे भूमिमाता! आप के आश्रय में केवल श्रेष्ठ मनुष्य ही नहीं पोषण पाते, बल्कि गन्धर्व, नर व्याघाती, चौर्य–कर्म करने वाले, नराधम और राक्षस प्रवृति के जन भी विचरण करते हैं। ये हमेशा विकास में बाधा अटकाते हैं। आधिभौतिक ताप आज विश्व के लिए सबसे अधिक कष्ट का कारण बन रहा है। इसलिए मंत्र में विस्तार से इसकी चर्चा की गई है।

विश्व में सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय, भाईचारा, अभय, और मानवीय शुभता का वातावरण कायम रहे, इसके लिए हर किसी को सच्चे मन, वचन एवं कर्म से प्रयास अवश्य करने चाहिए। जो चाहते हैं पृथ्वी पर स्वर्गिक वातावरण सतत् कायम रहे, उन्हें इस दिशा में पूरी शक्ति, साहस एवं सुचित–भाव से अवश्य लग जाना चाहिए। मानवीय प्रवृत्तियाँ जब शान्त, प्रमादी और किम्कर्तव्यविमूढ़ हो जातीं हैं तो विध्वंसक प्रवृत्तियाँ ऐसे समय पूरी शक्ति, साहस और आवेग के साथ विध्वसंक गतिविधियों में लिप्त हो जाती हैं। परिणाम स्वरूप मानव समाज में विध्वंसक, हिंसक और आतंक का परिवेश बन जाता है। इसलिए हर प्रजाजन को सुचित मन, वचन व कर्म से मानवीय सरोकारों को मूर्त–रूप देने के लिए पूरे दम खम के साथ अनवरत् लगे रहना चाहिए।

हे मातृभूमि ! हम प्रजा–जनों को ऐसी प्रज्ञा, बुद्धि और सत्साहस (विक्रम) से भर दीजिए जिससे विध्वंसकारी प्रवृत्तियों के मनसूबों को चकनाचूर कर सकें। विध्वंसकारी प्रवृत्तियों के लोग मिलकर अपने मनोरथ एवं अशुभ संकल्प को पूर्ण करने में मिलकर पूरे वेग से कार्य करते हैं, और सफल हो जाते हैं। इसका अर्थ यह होता है, प्रजा–जनों में एकता हृदय–सवांद एवं सद्भावना की भारी कमी है।

हे भू–माता! हम प्रजा–जनों में आपस में सद्भावना, सुचितता एवं संवाद कायम रहे। कोई विध्वंसक अपने मनसूबे में सफल न हो– ऐसी अनुकम्पा हम सभी पर सदैव बनाएँ रहें। जिससे सब का हित होता रहे।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद भगवान का उपदेश बहुत उपयोगी है। इसमें प्रेरणा दी गई है कि शासन की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कोई भी व्यक्ति न निर्धन हो और न तो धन–पशु ही। जिससे वह विलासी बन जाए। समाज में प्रत्येक व्यक्ति (स्त्री–पुरुष) दोनों की शिक्षा–दीक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि उनमें किसी में भी विलासी प्रवृति न उत्पन्न हो। कोई निंदा–चुगली वाला भी न हो। कोई मांसाहार करने वाला न हो। सभी सात्विक, निरामिष, भोजन लेने वाले होएं। और कोई भी धोखेबाज व राक्षसी प्रवृति के भी न हो। यदि विलासी व पिचाशी प्रवृति के लोग हों जाएं तो उनके लिए दण्ड निर्धारित किया जाये।

51

मातृभूमि के शोभायमान विहग

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयश्च वृक्षान्।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः।।

शब्दार्थ– (याम्) जिस (मातृभमि) पर (द्विपादः) दो पैर वाले (पक्षिणः) पक्षीगण (हंसा) हंस पक्षी (सुपर्णाः) सुन्दर पंख वाले गरुण पक्षी (शकुना) शक्तिशाली गिद्धादि (संपतन्ति) उड़ते रहते हैं (वयांसि) पक्षी समूह (यस्याम्) जिस पर (मातरिश्वा) प्राणवायु, खुले आकाश में (वातः) हवा (रजांसि) धूल के कण (कृण्वन्) उड़ते हैं (वृक्षान्) वृक्षों पर (च्यावयन्) जड़ से उखड़े हुए (ईयते) सतत् बहती है (अर्चिः) प्रकाश युक्त (प्रवाम्) फैल जाता है (उपवाम् अनु) गति पूर्वक धीरे–धीरे (वाति) चलता रहता है।

भावार्थ– प्रकृति का अत्यन्त मनोहारी चित्र प्रस्तुत मंत्र में खींचा गया है। मातृभूमि पर विचरण करने वाले विविध प्रकार के पक्षियों और ब्रह्ममुहूर्त में बहने वाले मलयज पवन का काव्यमय वर्णन आनन्द से आप्लावित करने वाला है। इस समय (ब्रह्ममुहूर्त का) बहने वाले पीयूषसम मलयज पवन का सेवन आयु, स्वास्थ्य और आत्मा के लिए अत्यन्त लाभकारी और उपयोगी होता है। पक्षियों का उदाहरण मानव को प्रेरणा देने के लिए दिया गया है। जिस प्रकार से मातृभूमि पर विचरण करने वाले सुन्दर और शक्तिशाली पक्षी मातृभूमि के लिए हितकारी होते हैं, वैसे ही हम सबसे उच्च श्रेणी के प्राणियों को मातृभूमि की सेवा के लिए

प्रत्येक क्षण तत्पर रहकर अपने मातृभूमि और समाज के प्रति अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

विवृति– जिस धरती पर तरह–तरह के दो पैर वाले और सुन्दर पंख वाले पंक्षी रहते हैं, हंस, गरुण, गिद्ध और दूसरे बड़े–बड़े पक्षी रात–दिन विचरण करते हैं, जहाँ प्राणवायु और बलशाली हवाएँ बहती रहतीं हैं, जहाँ हवा के साथ धूल के कण उड़ते रहते हैं, उस मातृभूमि की हम सभी सदा हर विधि से रक्षा करने में सदैव तत्पर रहें। सुबह जैसे ही पौ फटती है, चारों ओर प्रकाश फैलता हुआ दिखाई देता है और मलयज हवाएँ मंथर–मंथर गति से चलती रहती हैं।

भू–माता पर सदा विहार करने वाले विहग आपस में जिस तरह कुलेल करते हैं, वह दृश्य अनुपम होता है। ऐसा लगता है, जैसे ईश्वर की सृष्टि में जो सौन्दर्य और सुभाषितानि की विविधता कही जाती है, वह इन्हीं प्राणियों से ही भूषित है। हंस पक्षी इस सृष्टि का अद्‌भुत प्राणी है। यह निष्पक्षता की प्रतीक माना जाता है जो दूध का दूध और पानी का पानी करता है। इसे मुहावरे के रूप में 'नीर–क्षीर विवेक' कहा जाता है।

गरुण पक्षी पक्षियों में सबसे अधिक सम्मान प्राप्त है। पौराणिक संदर्भ में यह विष्णु का वाहन है। विष्णु अर्थात पालन करता ईश्वर। गरुण अमृत का वाहक कहा जाता है। इस तरह मातृभूमि पर गरुण जैसे अनेक पक्षी, हम सभी का कल्याण करते रहते हैं। कहने का तात्पर्य यह, इस पृथ्वी पर पक्षी जैसे दो पैर वाले प्राणी सृष्टि के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं उसी प्रकार से हमें भी मातृभूमि के विकास और संरक्षण में प्रत्येक पल लगे रहना चाहिए। इसी पृथ्वी पर गिद्ध जैसा डील डौल में बड़ा पक्षी विचरण करता है, वह अपने गुण–कर्म एवं स्वभाव के अनुसर मरे पशुओं का मांस भक्षण करता रहता है। इसलिए इसे प्रकृति का सफाई कर्मचारी कहा जाता है। धन्य हो भू–माता! आप की विलक्षणता धन्य है। सृष्टि विकास में आप किस–किस तरह के प्राणियों का पालन करती हो।

इसी महीवती पर प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में आयु और मेधा को बढ़ाने वाली मलयज पवन बिना किसी रोक–टोक के बहता रहता है। तूफानी हवाएँ वेग से पेड़ों तक को उखाड़ देतीं हैं। कहने का तात्पर्य यह है, मरुत विविध–रूपों में इस धरती पर बहती है वही सभी प्राणियों के जीवन का कारण है। जिस तरह से वायु बिना किसी स्वार्थ एवं आग्रह के पल–पल हम सभी को जीवन प्रदान कर रही है उसी तरह हमारा जीवन भी स्वार्थ, अहंकार, क्रोध और निजता के दोषों से ऊपर उठकर सबके अर्थात् सृष्टि के हित में लगे।

इसी मातृभूमि पर तरह–तरह के वन जंगल पाए जाते हैं। ये ऋषि–मुनियों के तपस्थली रहे हैं। ऋषिगण तपग्नि के द्वारा जंगलों को मंगलमय करते रहते हैं। उनकी तपाग्नि सृष्टि के विकास को तीव्र करती रहती है। हम सभी उन ऋषि–मुनियों की तरह तपाग्नि के द्वारा पर्यावरण के संरक्षक बन वनों की रक्षा करते रहें और वहाँ मांगलिक वातावरण का विस्तार करें।

जिस तरह से पक्षीगण, हवाएँ ऋषि–मुनि सृष्टि को मंगलमय करने में रात–दिन रत् रहते हैं, उसी तरह की वृत्ति हम सभी प्रजा–जनों में भी निरन्तर स्फुटित होती रहे। कहने का तात्पर्य यह है हमारा जीवन सृष्टि–विकास के लिए हो न कि विनाश के लिए। जब बुद्धि, विवेक एवं चेतन–शक्ति से रिक्त पशु–पक्षी हवा व दूसरी वस्तुएँ सृष्टि के निश्चित क्रम में अपने गुण–कर्म एवं स्वभाव के अनुसार योगदान देते हैं। हम तो मनुष्य हैं। ईश्वर ने सृष्टि के दूसरे सभी प्राणियों से हर अंग उच्च क्षमता वाला प्रदान किया है। इसलिए हमें सृष्टि के दूसरे सभी जीवों, अंगों एवं वस्तुओं से अधिक–सा–अधिक योगदान देना ही चाहिए। यदि हम पशु–पक्षियों से निज को उच्च मानते हैं तो हमारा गुण–कर्म–स्वभाव भी उनसे उच्च होना ही चाहिए। जिस तरह से पक्षी एवं मरुत खुले गगन में स्वछन्द विचरण करते रहते हैं उसी तरह से हम सभी को चाहिए अपने स्वार्थ में किसी की स्वतंत्रता को बाधित न करें। किसी का किसी भी स्तर पर शोषण न करें। ये कार्य सृष्टि नियमों के प्रतिकूल अधम कोटि के पापों में आते हैं।

हे मातृभूमि! हम सभी का जीवन ऐसा दिव्य बने जिससे धरती के कल्याण का कारण बन सके। मातृभूमि के स्तुतिगान में सृष्टि का मनोरम चित्र खींचा गया है। गगन में अनेक प्रकार के पक्षीगण विचरण करते हैं। इनकी स्वतंत्रता को बाधित नहीं किया जाना चाहिए। प्रजा–जनों को चाहिए कि इन्हें सताये या प्रताड़ित न करें। प्रातःकाल मलयज पवन या शुद्ध वायु का सेवन करना स्वास्थ्य की दृष्टि से और साधना की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। इस लिए प्रातःकाल की वायु का सेवन कर स्वयं को निरोग बनाते रहना चाहिए। इस समय प्राकृतिक छटा अत्यन्त मनोहारी द्रष्टव्य होती है। प्रकृति के इस मनोरम दृश्य से मिलने वाले आनन्द का हम अनवरत आनन्द लेते रहें। भोरहरी (प्रत्यूष की वेला में) और पौ फटने से लेकर सूर्य के उदय तक वायु की सघनता व विरलता में परिवर्तन होते रहते हैं। इसका वैज्ञानिक स्वरूप क्या है इसे हमें समझ कर इसका (वायु का) लाभ उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। सूर्य की किरणें प्रातःकाल किस प्रकार हमारी आँखों तक पहुँचती हैं इसका एक वैज्ञानिक पक्ष है। वह यह है कि उदय होते सूर्य की किरणें हमारी आँखों तक सीधीं न आकर घूमती हुई आती हैं,

लेकिन देखने में लगती सीधीं हैं। उदय होने के पूर्व ही क्षितिज में रहते हुए भी सूर्य ऊपर की ओर दिखाई देता है। इसका कारण किरणों का घूम कर आना ही है। हम इस रहस्य को जानने वाले हों।

52

मातृभूमि के कल्याणकारी रात्रि–दिवस

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि।।

शब्दार्थ– (यस्यां) जिस (भूमि पर) (कृष्णं च) तिमिर से व्याप्त (अरुणं) प्रकाशयुक्त (भूम्यां) मातृभूमि (संहिते) एकत्वभाव से (अहोरात्रे) समय चक्र के अनुसार, दिन–रात (विहिते) विधि–विधान से युक्त, बनाए गये हैं (वर्षेण) वर्ष भर जल बरसाने वाले मेघ (वृता) गोलाई से लिपटाई गई (आवृता) पूर्णतः ढकी हुई (भद्रया) सर्वकल्याण युक्त (सा) वह (पृथिवी) विस्तृत (भूमिः) धरती (नः) हम सभी को। (प्रिय धार्मान–धामनि) हर हितकारी स्थान पर (दधातु) प्रदान करें।

भावार्थ– सृष्टि के निर्माण का रहस्य अभी तक वैज्ञानिक खोज नहीं पाये हैं। रात–दिन और दिन–रात का रहस्यमय चक्र बिना एक पल के विश्राम के चलता रहता है। ब्रह्मांड के जितने भी ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र और आकाश गंगायें हैं सभी एक नियम के अनुसार अपनी स्थिति को अनवरत बनाये रहते है। अनन्त ब्रह्मांड में सूर्य, पृथ्वी और तारों की स्थिति बहुत ही वैज्ञानिक और रहस्यमय है। पृथ्वी की सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने से धरती पर ऋतु–चक्र अनवरत चलता रहता है। इस ऋतु के कारण ही धरती पर जीवन संभव हो पाया है। प्रजा–जनों को अपने पुरुषार्थ से जीवन, परिवार, समाज और विश्व को सुखमय बनाने के लिए ग्रह–नक्षत्रों की तरह अनवरत अपने कार्य में रत रहना चाहिए। मंत्र में भूमिमाता को सुखमय, विकासमय और स्वर्गमय बनाने के लिए सभी लोगों को निरन्तर अपने कार्यों और कर्तव्यों को बहुत धैर्य, संयम और सहजता से करते रहने की प्रेरणा दी गई है।

विवृति– हे भू–माता! रात्रि–दिवस के चक्र की आप हर पल साक्षी हैं। वह दिवस जिसका वर्ण चमकीला (उज्ज्वल) होता और रात्रि जिसका वर्ण हर पल कृष्ण (काला) रहता है, एक

चक्र में चलते रहते हैं। दिन–रात और रात–दिवस का यह चक्र, सृष्टि का अद्‌भुत रहस्य है। इसका रहस्य यह है कि दिवस में प्रजाजन विविध प्रकार के कार्य करते हैं और रात्रि में वे विश्राम करते हैं। इसकी यदि हम गणना करें तो अहोरात्र का या दिवस–रात्रि का भी एक अद्‌भुत रहस्य है। बिना एक पल रुके दिन–रात का महाचक्र चलता रहता है। एक वर्ष में हमारी पृथ्वी (मातृभूमि) अपना चक्र पूर्ण कर लेती है। इस चक्र की पूर्णतः पृथ्वी द्वारा सूर्य के चक्कर लगाने से होती है। भूमि द्वारा सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण का ऋतु परिवर्तन से सीधा सम्बन्ध है। (यदि सूर्य के चारों ओर पृथ्वी चक्कर न लगाए तो ऋतु परिवर्तन संभव नहीं है) भूमिमाता के सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण में जहाँ तीन सौ पैसठ अहोरात्रों का निर्माण होता है वहीं पर शरद, हेमन्त व वसन्त आदि छः ऋतुओं का निर्माण भी होता है। और इन छः ऋतुओं के निर्माण से वर्षभर भिन्न–भिन्न प्रकार के अन्न, फल, मेवे और वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं। प्रजाजन इनका भरपूर उपयोग करके जहाँ जीवन को सुखमय बनाते हैं वहीं पर अन्य प्राणी भी अपना जीवन इनके भरोसे व्यतीत करते हैं। कहने का भाव यह है कि ऋतु–चक्र से ही ब्राह्मंड में जीवन सम्भव है।

ऋतु–चक्र के परिवर्तन से वर्ष में तीन माह वर्षा के भी आते हैं। जिससे भरपूर वर्षा होती है और प्राणी मात्र का जीवन सुखमय बनता है। वर्षा से ही कृषि होती है। इस लिए वर्षा जल का हम सदा से संरक्षण करते आए हैं जिससे जल का पूर्णतः उपयोग होता रहा है।

हे भूमिमाता! आप वर्ष भर सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करके अहोरात्रों और ऋतुओं का निर्माण करती हैं। उसी में वर्षा, वसन्त और हेमन्त जैसी सुखमयी ऋतुयें भी हैं। यह सब आप के परिभ्रमण के कारण सम्भव हो पाता है। हे माँ, हम प्रजा–जनों के स्थान, निवास और अन्य साधनों पर कृपा बनाए रखना। ये साधन कभी विद्रूपता को न प्राप्त हों। सुषमायुक्त और आकर्षण धाम सभी को अच्छे लगते हैं। सभी ऐसे स्थानों से प्रेम करते हैं। इस लिए हे माँ, मेरे सभी धाम सुन्दर, मनोरम और प्रिय हों। जिससे हम प्रजाजन इसमें सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। हे मां, आप की कृपा और परमात्मा की महती अनुकम्पा हम प्रजा–जनों पर सदैव बनी रहे। जिससे हम सब का जीवन सदैव सुख व आनन्द में रहें।

मातृभूमि के इस स्तुतिगान के इस वर्णन में प्रजा–जनों को विधि–विधान के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा दी गई है। प्रजा–जनों को चाहिए कि वे वर्षभर ऋतु–चक्र के अनुसार अन्न, फल, मेवे पैदाकर के जीवन को सुखमय बनाएं। सभी अपने जीवन को पावन बनाते हुए ईश्वर की कृपा के भागी बने रहें। भगवत् कृपा से ही वर्षा भरपूर होती है और धरती माँ हरीभरी होती है। वर्षा भरपूर हो, इसके लिए आवश्यक है कि ऋतु–चक्र में परिवर्तन हो, वर्षा भरपूर हो

इसके लिए आवश्यक है कि यज्ञादि कर्म हम निरन्तर करते रहें। कहने का भाव यह है कि हम प्रजा–जनों को सदैव शुभ–कर्म करते हुए पवित्र भावना से जीवन व्यतीत करना चाहिए जिससे ईश्वर की अनुकंपा हम पर सदैव बनी रहे। और जीवन में कभी निर्धनता या अभाव न आये।

53

विस्तार, विकास और बुद्धि की प्रार्थना

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः।
अग्निः सूर्य आपो मेघां विश्वे देवाश्च सं ददुः।।

शब्दार्थ– (द्यौः) आलोकिक आकाश (मे) मुझे (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में जो (च) और भी (पृथिवी) भू–माता (इदम्) यह (अग्निः सूर्य) अग्नि और सूर्य (आपः) शीतल जल (विश्वे) सम्पूर्ण विश्व (देवाः) दिव्य गुण वाले पदार्थों में (मे धाम्) मेधा से परिपूर्ण (सम्) बराबर (मे व्यचः) मुझमें विचार शक्ति बढ़ती जाये (संददुः) सदैव प्रदान करती रहें।

भावार्थ– मंत्र में मातृभूमि के विस्तार और विकास जिस प्रकार से होता रहा है उसी प्रकार के विस्तार, विकास के साथ बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना है। यह विस्तार और विकास मातृभूमि की अनुकम्पा से ही प्राप्त हुआ है। सृष्टि में मात्र मानव का ही विस्तार और विकास नहीं हुआ बल्कि अन्तरिक्ष–लोक, द्यौलोक और अन्य अनेक लोक लोकान्तरों का भी विकास और विस्तार है। हमारा चिन्तन ऐसा होना चाहिए जो विस्तारवादी और बुद्धि–सम्मत् हो। हम सभी आत्मिक गुणों से भरपूर रहें। हमारा शरीर, हृदय और मस्तिष्क सभी का विस्तार होता रहे। यह सारा विश्व एक परिवार की तरह है। इस लिए हमें अपने साथ ही साथ परिवार के सुख–दुख और शान्ति के लिए अनवरत प्रयत्न करते रहना चाहिए। कहने का भाव यह है जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र और अन्य अनेक नक्षत्र प्रतिपल दीप्तमान् रहते हैं उसी प्रकार से हमारी बुद्धि भी हमेशा समुन्नति के मार्ग पर दीप्तमान् होती रहे जिससे हम सकल विश्व को अपना समुचित अवदान प्रदान कर सकें।

विवृति– हे मातृभूमि! जो विस्तार मुझे मिला है, वह आप की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है। इस विस्तार में हमें अन्तरिक्ष और उसके ऊपर द्युलोक का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जो

विस्तार मुझे मिला है, वह केवल मेरे तक ही सीमित नहीं है बल्कि समाज व राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति इसमें सम्मिलित है। हे भू–माता! जब हम आप से दूर स्थित अन्तरिक्ष (आकाश) को और उसके ऊपर स्थित द्युलोक को निहारता हूँ तो, और फिर चिन्तन करता हूं तो अतीव सुख की प्राप्ति होती है। हम सभी चिन्तन करते हुए यह सोचते हैं कि जैसा विस्तार अन्तरिक्ष और द्युलोक का है वैसा ही विस्तार हमारे अन्दर भी हो जाये। हमारे जीवन का प्रत्येक क्षेत्र अत्यन्त विस्तार वाला हो। हमारा अन्तःकरण विस्तार वाला हो, जिससे हमारा जीवन अत्यन्त सन्तुलित और सार्थक बन जाए। इसी प्रकार अपने मस्तिष्क (चेतना) और मन (बुद्धि) को भी विस्तार वाला बनाने का सदैव प्रयत्न हम करते हैं, क्योंकि ज्ञान की धारा इससे ही सतत् आगे बढ़ती रहती है। इतना ही क्यों, अपने तन को भी चिन्तन द्वारा शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं। शरीर, हृदय, मन व मस्तिष्क का विस्तार हो जाने के उपरान्त हम आत्मिक गुणों का विकास कर अपने आत्मा को पूर्णत्व की ओर अग्रसित करते हैं और आत्मा पूर्ण आध्यात्मिक बन जाती है। इस प्रकार हम अपनी आवश्यक विविध शक्तियों का विस्तार कर लेते हैं। यही तो जीवन में सुख–समृद्धि एवं आनन्द को देने वाली है। तात्पर्य यह है ज्ञान, विज्ञान, धर्म, आध्यात्मिकता और सुख–समृद्धि जैसे सभी चीजें हमें अपनी मातृभूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक के विस्तारवादी चिन्तन के द्वारा प्राप्त होते हैं। इसका भाव यह है, हम जिस प्रकार वस्तुओं को देखते और उस पर चिन्तन करते हैं उसी प्रकार की हमारी विचारधारा का विस्तार भी होता जाता है।

सूर्य और अन्तरिक्ष का अन्नत विस्तार सम्पूर्ण सृष्टि को आलोकित कर रहा है। जितने भी देश–प्रदेश इस मातृभूमि पर स्थित हैं सभी एक परिवार की तरह हैं। सारे देश अपने हैं, इसमें कोई पराया नहीं है। भू–माता का विस्तार जितना विशाल है, उतना ही मातृभूमि पर स्थित देश–प्रदेश इसे गौरवन्वित कर रहें हैं।

हम सभी प्रजा–जनों को सम्पूर्ण धरणि के प्राणियों, मनुष्यों और संसाधनों का सदैव सम्मान देते हुए,सब के साथ मैत्री–भाव से व्यवहार करना चाहिए। बिना मैत्री के मनुष्यता का विस्तार और संरक्षण नहीं दिया जा सकता है। हम सभी को कामना करते रहना चाहिए कि पृथ्वी और अन्तरिक्ष में व्याप्त किसी प्रकार का अंधकार किसी को दुखदाई न हो।

समाज व राष्ट्र में एक अग्नि हमेशा प्रदीप्त रहती है। अन्तरिक्ष में सूर्य दीप्तमान् रहता है। जल और वायु सभी अनेक गुणों से भूषित रहते हैं। जितने भी महान् तत्त्व हैं हम सभी का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। जिससे हमारी बुद्धि का विस्तार होता है। बुद्धि निरन्तर प्रखर होती जाती है। इससे जीवन का विस्तार निरन्तर बहुविधि से होता जाता है। जिस प्रकार से

अग्नि और सूर्य सदैव दीप्तमान् रहते हैं, उसी प्रकार अपनी बुद्धियों को भी निरन्तर प्रकाशवान्, ज्ञानवान् और मीमांसा–युक्त बनाते रहें। जिस प्रकार से जल सन्ताप को शान्त करता है उसी प्रकार से हमें अपनी बुद्धियों को भी जगत् में शान्ति प्रदान करने वाली बना लेना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि सृष्टि के महान् पदार्थों से हम प्रेरणा ग्रहण करके हम अपने जीवन को शुभत्व और शान्तिमार्गी बना सकते हैं। हम अन्य पदार्थों से भी इसी प्रकार प्रेरणा ग्रहण करके जीवन का विस्तार कर सकते हैं। इस सृष्टि में हम अग्नि, जल, वायु आदि देवों से हर पल जीवन प्राप्त करते रहते हैं। हम अन्य दिव्य गुण वाले पदार्थों का भी जीवन के लिए जितना आवश्यक होता है, उन्हें ग्रहण करते हैं। इसका माध्यम यह प्यारा शरीर है। हमारे उत्तम स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है, श्रेष्ठ बुद्धि के लिए उपयोगी है। हमारा चिन्तन कभी रुकना नहीं चाहिए। चिन्तन करते हुए हमें अपने बुद्धियों को दीप्तमान्, ज्ञानवान् और विस्तारवादी बनाते रहना चाहिए।

इस प्रकार हमारे लिए सदैव उपयोगी देवता हमें निरन्तर विकास के लिए प्रेरणा का कार्य करते हैं। इनसे ही हमारी मेधा–बुद्धि का विस्तार होता जाता है। यह सब हमारी भू–माता की कृपा का फल है।

भूमिमाता स्तुतिगान में वेद भगवान् का उपदेश अति महत्त्वपूर्ण है। कहा गया है, प्रजा–जनों का (राष्ट्रवासी) अपनी भूमि (धरती माता) जल, वायु व अग्नि तथा सूर्यादि प्राकृतिक देवों के गुणों को निरन्तर चिन्तन करना चाहिए। इससे हमें बहुविधि प्रेरणा प्राप्त होती है। भौतिक रूप से इनका सेवन करके हम अपने स्वास्थ्य की उन्नति कर सकते हैं। कहने का भाव यह है कि निरन्तर चिन्तन और प्राकृतिक देवों के साहचर्य से हम अपने हृदय, मन, मस्तिष्क, बुद्धि का विस्तार और शरीर को अतीव शक्तिशाली बना सकते हैं। आवश्यकता है शुभसंकल्प की।

54

मातृभूमि के योद्धा सदा विजयी हों

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः।।

शब्दार्थ– (अहम अस्मि) मैं हू (सहमानः) तितिक्षा सहन करने वाला या विरोधी शक्तियों का पराभव करने वाला (भूम्याम्) मातृभूमि पर (उत्तरः नाम) श्रेष्ठ गुणों से भूषित (अभीषाड्)

अत्यधिक प्रभावशाली (विश्वाषाट्) मातृभूमि के विनाशकों का नाशक (आशाम् आशाम्) प्रत्येक दिशा में विजय प्राप्त करने वाला (विषासहिः) प्रक्रमशाली, जो सभी प्रकार की विरोधी शक्तियों का पराभव करने की सामर्थ्य रखता है।

भावार्थ– मातृभूमि के रक्षक वीर योद्धा मातृभूमि पर किसी भी विरोधी शक्ति को परास्त करने की सामर्थ्य रखने वाले होते हैं। मंत्र में कहा गया है कि ऐसे वीर सत्साहसी योद्धाओं से ही मातृभूमि सदा सुरक्षित और प्रगतिगामी बनी रहती है। मन में विरोधी शक्ति का पराभव करने वाले योद्धाओं का संकल्प हमेशा भलीभूत होता है। मातृभूमि ऐसे विश्व विजयी योद्धाओं के श्रेष्ठ गुणों से सदैव विभूषित रहती है। कहने का भाव यह है कि संसार में उसी को विजय मिलती है और उसी की जय जयकार होती है जो मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है। ऐसा वातावरण प्रजा–जनों को हमेशा बनाए रहना चाहिए जिससे श्रेष्ठत्व का विकास सदा होता रहे। सभी मातृभूमि के सपूत दीर्घायु, ऐश्वर्यशाली और कीर्ति वाले हों। ऐसी कामना प्रत्येक व्यक्ति को करते रहना चाहिए और इसके लिए सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए।

विवृति– हे मातृभूमि! आप की महती कृपा से मुझे विरोधी शक्तियों पर विजय प्राप्त करने की सामर्थ्य प्राप्त है। आप ने हमें पूर्णतः अभय, उत्साह और शक्ति से परिपूर्ण कर दिया है कि मैं बड़े से बड़े संकट के समय भी, किसी प्रकार से घबराता नहीं हूँ। कोई भी विरोधी शक्ति हमें आगे बढ़ने से नहीं रोक सकती है। मेरे अन्दर आप द्वारा दी गई अतुलित शक्ति से सभी प्रकार की विध्न–बाधाओं, रुकावटों को दूर कर सकता हूँ। यदि कभी कोई रुकावट, संकट या विध्न–बाधा उपस्थित हो जाती है तो मैं उसका पूरी दृढ़ता के साथ सामना करता हूँ और उनको समाप्त करके ही विश्राम लेता हूँ। अनेक विरोधी शक्तियाँ, विध्न–बाधायें और रुकावटें हमारा रास्ता रोकती हैं, लेकिन हम इनसे कभी डरते नहीं बल्कि पूरी शक्ति से इनको समाप्त कर देता हूँ। इसी लिए मैं 'विश्वापाड्' हूँ। कोई ऐसी शक्ति या बाधा नहीं है जिस पर मैं विजय न प्राप्त कर सकूँ। इतना ही नहीं, संसार की सभी विरोधी शक्तियाँ एक साथ मिलकर यदि मेरे आगे उपस्थित हों तब भी मैं सत्साहस के साथ इन्हें पराजित करने की सामर्थ्य रखता हूँ। प्रत्येक दिशा मेरे लिए अजेय हो गई है। मैं जिधर दृष्टिपात करता हूँ उधर कोई रुकावट या विरोधी शक्ति खड़ी नहीं हो सकती है। इतनी अतुलित शक्ति हे माँ, आप से ही तो हमें प्राप्त हुई है।

हे मातृभूमि! आप की कृपा का ही तो फल है मेरा नाम चारों ओर प्रशंसनीय बन गया है। मेरी शक्ति का डंका हर ओर बजता है और सभी मेरी कीर्ति की गाथा गाते हैं। ये श्रेष्ठ गुण

सभी को प्रेरणा देने वाले हैं। मैं अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण गुणवान हो गया हूँ कि कोई भी विरोधी शक्ति मेरे सामने आने की हिम्मत नहीं करती है। आज मैं सहमान बन गया हूँ। सभी मुझे मेरे श्रेष्ठ गुणों के कारण सम्मान देते हैं।

हे मातृभूमि! आप की कृपा हम पर ऐसी सदैव बनी रहे जिससे किसी प्रकार की विघ्न–बाधा और विरोधी शक्तियाँ दूर रहें और मुझमें जो शक्ति है वह निरन्तर हममें उद्‌भिद् होती रहे।

मातृभूमि पर मेरा विजय अभियान निरन्तर चलता रहे। विजय उन विध्वंसक राक्षसी प्रवृत्तियों पर प्राप्त करता रहूँ जिनसे हर तरह के दुखों का नाश हो सके। इस सृष्टि में जितने भी पदार्थ हैं सब का यथायोग्य उपयोग करते हुए निज पुरुषार्थ के द्वारा अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करूँ। हम सभी गुण–कर्म एवं स्वभाव से श्रेष्ठत्व को प्राप्त करने वाला बनूँ। बिना सही अर्थों में श्रेष्ठ बने, न निज का कल्याण हो सकता है न समाज का और न ही सृष्टि का हित हो सकता है। यह चिन्तन की बात है कि मनुष्य का जन्म सृष्टि–कल्याण के लिए ही है। सृष्टि के कल्याण का मतलब सब का हित और जहाँ सब का हित निहित होता है उसमें निज का भी हित हो जाता है।

मातृभूमि के सर्वहित के लिए हम सब में तितिक्षा सहन करने का संकल्प जागृत हो। सभी दिशाएँ निर्भय हों अर्थात् किसी भी ओर से किसी को भी भय का एहसास न हो। और जहाँ भय होता है वहाँ पर सत्य, न्याय, अहिंसा और समता का वातावरण बन ही नहीं सकता।

जो स्वयं अपने साथ विश्व का भला चाहते हैं ऐसे विद्वान, पराक्रमियों और धार्मिकों की जय सतत् होती रहे। क्योंकि इनके जय होने से उनकी भी जीत हो जाती है जो इन पर आश्रित रहते हैं। अपनी प्रतिभा एवं योग्यता के बल पर अपने लक्ष्य में विजय प्राप्त करता रहूँ। जो भू–माता का विनाश करने पर तुले रहते हैं, उनकी शक्ति को कमजोर कर दूँ।

मातृभूमि का वातावरण ऐसा बने जिससे सभी प्रजाजन निर्भय होकर विकास के रास्ते पर बढ़ते जाएँ। इससे ही मनुष्यता की डालियों में सुन्दर, आर्कषक एवं सुगन्धियुक्त पुष्प खिलते हैं। हमारा हर पल उत्साहवर्द्धक और सत्साहस से परिपूर्ण हो। हम सभी के मनोरथ सत्य संकल्प एवं सुसाधन के साथ पूर्ण हों। परिश्रम और ज्ञान युक्त कार्यों से जो सुख प्राप्त होता है वह ही सही अर्थों में सुख कहा जाना चाहिए। श्रेष्ठ सुख ही चेतना और चिन्तन को बढ़ाता है।

भू–माता के विनाशकों का नाश हम तभी कर सकते हैं जब स्वयं पर नियंत्रण हो जाएगा। इसलिए सबसे पहले साधना के सतत् प्रयत्नों के माध्यम से उसे प्राप्त करना चाहिए जो

मनुष्यता को पोषण दे। यही सही मायने में मानव धर्म है। सृष्टि का महत्वपूर्ण उद्देश्य मानव धर्म अर्थात सृष्टि धर्म की स्थापना करना है। सृष्टि का एक ही धर्म है– धरती माता का सतत् विकास, पोषण एवं सरंक्षण। जो इन बातों पर ध्यान रखना है, उसका सर्व कल्याण सर्वदा होता रहता है। ऐसे संकल्प वाले ही अजित, अजय और अजेय होते हैं।

मातृभूमि के स्तुतिगान में वेद माता का प्रजा–जनों का दिया गया उपदेश अत्यन्त प्रेरणाप्रद है। इसमें कहा गया है, प्रजा–जनों का रहन–सहन, आचार–विचार और शिक्षा–दीक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि उनमें अतुल शक्ति भर जाए और जिससे सभी बाधाएँ व विरोधी शक्तियों का पराभव हो सके। श्रेष्ठ चरित्र के प्रजाजन हमेशा प्रशंसनीय होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि शक्ति सम्पन्न श्रेष्ठ चरित्र के व्यक्ति कभी किसी से भय नहीं खाते हैं। भय तो वे खाते हैं जिनका चरित्र ऊँचा नहीं है। हर संकट, रुकावट और विरोधी शक्ति का सामना समाज के योद्धा ही कर सकते हैं। हे मां, हमें हर तरह के श्रेष्ठत्व से पूरित कर दें।

55

देवों से विभूषित यह मातृभूमि

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद्देवैरुत्क्ता व्यसर्पो महित्वम्।
आ त्वा सुभूतमविशत्तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः।।

शब्दार्थ– (देवि) दिव्य गुणों वाली हमारी भू–माता (यत्) जब भी (पुरस्तात्) निरन्तर बढ़ती हुई (प्रथमाना) चहुओर (देवः) विद्वान लोगों द्वारा (उक्ता) प्रशंसनीय जो बातें हैं (अदः) उससे (महित्वं) प्रतिष्ठापूर्ण (व्यसर्पः) उत्कर्ष तक (तदनीम्) उसके बाद (सुभूतम्) अत्यधिक ऐश्वर्य पूर्ण (त्वा) तुझमें (आ) चहुओर से (अतिशत्) पूर्ववत् स्थापित (चतस्रः) चारों दिशाओं में (प्रदिशः) मुख्य दिशाएँ (अकल्पयथाः) सामर्थ्य बनाने वाली।

भावार्थ– मंत्र में देवों (विद्वानों) के सृजनात्मक कार्यों और प्रजा–जनों की उत्तम प्रवृतियों का सदुपयोग का चित्र खींचा गया है। वही समाज और राष्ट्र प्रगति के पावन पथ पर आगे बढ़ते हैं जहाँ शुभ संकल्प वाले प्रजाजन और देवों का निवास होता है। हमारी मातृभूमि ऐसे शुभ गुणों वाले श्रेष्ठ–जनों से विभूषित है। उद्योग–धन्धें, विज्ञान के नये–नये आविष्कार, मानवता की उन्नति में योगदान देने वाले श्रेष्ठ–साहित्य और मानवधर्मी संस्कृति से मातृभूमि

का गौरव बढ़ता है। इनका भी मनोरम चित्र मंत्र में खींचा गया है। शुभ संकल्प और उत्तम कार्यों को करते हुये प्रत्येक देशवासी को सच्चाई के साथ अपने कर्तव्यों के पालन की प्रेरणा भी दी गई है।

विवृति– हे भूमिमाता! आप का चिर नवीन ऐश्वर्य का हम सभी प्रशंसा करते हैं।

आप का यह ऐश्वर्य हम सब के लिए वन्दनीय और स्तुत्य–योग्य इस लिए है कि आप पर विचरण करने वाले विद्वान (देवजन) अपने उत्तमोतम् कार्यों व कर्तव्यों तथा अनुसंधानों से आप को गौरवमय बनाया है। अपने कर्तव्यों को दृढ़ता के साथ निभाया है। आप के महान् मातृत्व की महत्ता का अनुभव देवजन और प्रजाजन दोनों ने किया है। आप को सभी ने माता माना है और आप के प्रति उनके (देवजनों व प्रजा–जनों) क्या कर्तव्य होने चाहिए उन्होंने पहचाना है और पूरी तरह से निभाया है। सब का निश्चय है कि वे सभी अपने कर्तव्यों का पालन दृढ़ता के साथ करेंगे। उनका निश्चय उन्हें अपने कार्यों को करने के लिए संकल्पवान् बनाया है। कोई व्यवसायी है तो कोई नौकरी कर रहा है तो कोई उद्योग–धन्धे में लगा हुआ है। कोई विज्ञानवृति का बनकर कार्य कर रहा है तो कोई साहित्य, संस्कृति और कला के माध्यम से अपने कार्य में लगा हुआ है। ये सभी महान् कार्यों से हे माँ, आप का गौरव बढ़ता है। आप का इनके कार्यों से विस्तार होता है। आप इनसे वृहद् बनती जाती हैं और महानता की ओर बढ़ती जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि देवगुणों वाली मातृभूमि को विस्तार देने में देवजनों का प्रमुख योगदान है। देवजन और दिव्य गुणों से आप को भी देवी बनाने में लगे हुए हैं।

मातृभूमि पर विचरने वाले विद्वानगण अपने सत्यज्ञान के द्वारा समाज के कल्याण हेतु निरन्तर रत् रहते हैं। विद्वानों का एक ही लक्ष्य होता है– परोपकार करना। कहने का तात्पर्य यह कि उनकी तरह हम सभी को भी समाज में ज्ञान–विज्ञान एवं मानवता के प्रचार–प्रसार हेतु निरन्तर रत् रहना चाहिए। इससे ही मानव धर्म की स्थापना हो सकती है। विश्व हित में जो प्रशंसा युक्त बातें हैं इसका हम सभी को अनुकरण अवश्य करते रहना चाहिए।

विश्व में ऐश्वर्य का प्रकाश निरन्तर फैलता रहें, हम सभी को इसके लिए सदैव पुरुषार्थ करना चाहिए। पुरुषार्थ के बिना किसी कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती है। पुरुषार्थ से ही स्व–प्रतिष्ठा और पर प्रतिष्ठा सम्भव है। इस लिए वेद के ऋषि महर्षि बहुत ही कठिन श्रम करके जीवन–कार्य और समाज कल्याण करते थे। योगसाधना भी पुरुषार्थ से पूर्ण होती है। समाज का समृद्ध बनाने का सबसे बढ़िया और उपयुक्त तरीका योगसाधना (मन–वाणी–कर्म से) करना चाहिए।

भू–माता का उत्कर्ष हम मनुष्य के ज्ञान पूर्वक कर्म करते रहने से ही हो सकता है। इसलिए हर कार्य समग्र हित में विचार करके ही प्रारम्भ करना चाहिए। जिस कार्य से समाज एवं सृष्टि का किसी भी प्रकार से अहित होता है, उस कार्य को खुद न के और जो निंदनीय कर्म करने में गौरव का अनुभव करते हैं, उन्हें ऐसा न करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। वेद भगवान हम सब को निरन्तर प्रेरणा दे रहें हैं कि सृष्टि (आगम) धर्म का पालन करते हुए निरन्तर नदी के जल की तरह प्रवाहमान होते रहें। सृष्टिधर्म ही वेद धर्म है।

इस लिए महर्षि देव दयानन्द ने वेदों का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना श्रेष्ठ जनों का परम धर्म घोषित किया। जो परम धर्म का पालन नहीं करता, वह एक तरह से अधर्म करता है। और अधर्म करना सृष्टि के विधान में पाप माना गया है। पाप सृष्टि विकास और समाज में स्वर्ग की स्थापना में सब बड़ी बाधा है।

हे भू–माता ! हम सभी निरन्तर अधर्म से बचाते रहें और वेद धर्म की ओर निरन्तर प्रेरणा देती रहें। आप की प्रेरणा से हम सभी निरन्तर सृष्टि–धर्म के मार्ग पर चल सकेंगे। हम सभी में ऐसा शिव संकल्प का बल दीजिए, जिससे कभी भी अशिव संकल्प की दुर्मति से न बधे। जिस तरह से चारों दिशाओं की सुगन्धित हवाएँ प्रतिष्ठित करतीं हैं, इसी तरह से हम सभी में चारों ओर से ऐश्वर्य का प्रकाश पुंजित या विस्तारित हो। हे माता, हमारी ये कामनाएँ पूर्ण हों , ऐसी प्रेरणा दीजिए।

चारों दिशाओं में जैसा भानु भगवान का प्रकाश विस्तारित हो, पूरे ब्रह्माण्ड को प्राणवान बना रहा है उसी तरह की प्रवृत्ति हम सभी में भी उद्‌भित हो। भू–माता ऐश्वर्य की दिव्यतता से परिपूर्ण हैं। हम प्रजा–जनों को चाहिए कि माँ की दिव्यता एवं ऐश्वर्य–प्रभुता की निरन्तर रक्षा करने वाले हों। हे मातृभूमि ! चारों दिशाएँ हम सभी के अनवरत् सुखदायी आनन्द देने वाली हों। मन, चित्त और हृदय में सुशान्ति की बयार तभी बह सकती है। लेकिन इसके साथ यह आवश्यक है कि अपने विचारों और सोच के खिड़की–दरवाजों को पूर्णतः खुला रखें। मन एवं चित्त से गन्दी वासनाओं, कामनाओं एवं इच्छाओं का त्याग करते रहें। दुख मिलने पर भी इसे प्रभु का वरदान मान मन एवं पवित्र हृदय से मुस्कराते मुस्कराते सहन कर जाएँ। ऐसे ही वक्त में ईश्वर की सच्ची याद आती है।

उन देवता–तुल्य विद्वानों की सेवा का सौभाग्य प्राप्त करें जो सृष्टि हित में निरन्तर बिना किसी स्वार्थ के लगे रहते हैं। धरती पर ऐसे मनस्वी ही सभी के आदर्श, प्रेरक, संवाहक और सुधर्मा–धर्मी होते हैं। इनके लिए ही वास्तव में ऐश्वर्य और स्वर्ग का राज्य बनें।

हे भू–माता! आप का विस्तार, आप में बढ़ता ऐश्वर्य और महत्त्व को कौन नहीं जानता है। आप के विस्तार में हे माँ, सभी दिशाओं में रहने वाले प्रजाजन सामर्थ्यवान् बन पाए हैं। आप के गौरव का रहस्य इन्हीं में छिपा है।

हे हमारी पृथ्वी माता! आप महिमाशालिनी और दिव्यगुणों से पूर्ण बनाने वाले देवजनों की यह परम्परा समाज में निरन्तर आगे बढ़ती रहे और उससे प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य और सामर्थ्य हम प्रजा–जनों को सदैव मिलता रहे। हे माँ, हम युवाजनों पर कृपा सदैव बनाए रखना।

मातृभूमि स्तुतिगान में वेदमाता का परम पावन उपदेश हम प्रजा–जनों के कल्याण के लिए है। इसमें कहा गया है, समाज को ऐश्वर्यवान और शक्तिवान बनाने के लिए धरती माता को दिव्य गुणों से विभूषित अवश्य किया जाना चाहिए। यह दिव्यता तब आती है जब आप पर देवजन विचरण करते हैं–ये देवजन विद्वान, चतुर और योग्य होते हैं। ये देवजन और प्रजाजन तभी विस्तारवादी और अग्रगामी होंगे जब समाज में ऐश्वर्य और सामर्थ्य उत्पन्न होंगे। कहने का भाव यह है कि निरुद्यमी, अयोग्य और चेतनाहीन लोगों का समाज व राष्ट्र कभी भी शक्तिशाली और ऐश्वर्यवान् नहीं बन सकता। मातृभूमि तभी ऐश्वर्यवान् और शक्तिशाली बनती है, जब मातृभूमि पर निवास करने वाले देवजन एंव प्रजाजन योग्य और उद्यमी होते हैं।

56

मातृभूमि के हितार्थ अपना कर्तव्य निभायें

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते।।

शब्दार्थ– (अधिभूम्याम्) मातृभूमि पर (ये ग्रामाः) ये जो गाँव हैं (यत् अरण्यम्) जो वनादि हैं (याः सभाः) जो विविध सभाएँ (न्याय, राज और धर्म सभी से सम्बन्धित) (ये संग्रामाः) गाँवों से सम्बद्ध संस्थाएं (समितयः) समितादि हैं (तेषु) उनमें (चारु वदेम) प्रिय बोलें।

भावार्थ– मंत्र में मातृभूमि के प्रति प्रत्येक ग्रामवासी और नगरवासी को प्रतिपल भक्तिभावना और हित करने की भावना को बनाए रखने की प्रेरणा दी गई है। चाहे ग्राम सभा में हों या नगर की समितियों में बैठकर हम चर्चा–परिचर्चा कर रहें हों। अपने स्व–कर्तव्यों के प्रति अत्यन्त सजग रहते हुये हम भूमिमाता को अपना पूर्ण समर्पण एवं अवदान अर्पित करने का

संकल्प बनाये रहें, इसमें कभी असावधानी नही करना चाहिए। मातृभूमि का स्थान प्रत्येक प्रजाजन के हृदय में सुरक्षित रहे और अपने जीवन को मातृभूमि को अर्पित करते हुये गुजारें। हमेशा शुभ सोचें, मधुर बोलें, प्रिय बोलें, सर्वहित में बोलें और सर्वहित में ही कर्म करने की प्रवृति विकसित करें। मंत्र में प्रेरणा दी गई है कि किसी भी आक्रमणकारी को मातृभूमि पर जबरन कब्जा करने की हिम्मत ने पड़े, ऐसा वातावरण सभी को मिलकर बनाना चाहिए।

विवृति– हे हमारी मातृभूमि! आप के गाँवों और नगरों में रहने वाले प्रजाजन अपने सुन्दर, प्रगतिशील और एकत्व की भावना से प्रेरित होकर संवाद करते हैं, वह हमेशा आप के हितार्थ ही होता है। हम कभी ग्राम–पंचायतों और नगर–पंचायतों में बैठकर कभी कोई भी ऐसी चर्चा या बात नहीं करेंगे जो समाज और राष्ट्र के हित में न हो। इतना ही नहीं, जब वन या अन्य स्थानों पर घूमने के लिए जाएंगे तब भी कोई ऐसी बात नहीं करेंगे जो मातृभूमि के हित में न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि कहीं किसी भी दशा व दिशा में हम कभी भी समाज व राष्ट्र विरोधी कार्य नहीं करेंगे और न ही दूसरों को विपरीत कार्य करने के लिए प्रेरित ही करेंगे।

हम जब राज्य–प्रबन्ध करने वाली सभा और समिति में बैठकर विचार–विनिमय और अपने कर्तव्यों के सम्बन्ध में बात करेंगे तब भी हम बहुत सावधानी पूर्वक यह ध्यान रखते हुए चर्चा करेंगे जिससे भूमिमाता के हित की ही बात हो। राज्य–सभाओं में बैठकर हम सभी जो भी चर्चा करेंगे या कानून बनाएंगे, उसमें हमारा प्रयास यही होगा कि उसमें समाज व राष्ट्र की प्रगति और भलाई निहित हो। हम इस बात के लिए कटिबद्ध और संकल्पबद्ध होंगे कि कभी किसी बात पर चर्चा में कोई स्वार्थ से प्रेरित वैयाक्तिक या वर्ग–जाति जैसी तुच्छ भावना न आए। हम सभी का हमेशा यही प्रयास होगा कि समाज व राष्ट्रहित के विरोध में कोई कानून या धर्म–कानून बनाने के लिए कोई चर्चा न हो। हे माँ! हमारा समाज व राष्ट्र हित में संकल्प दृढ़ हो ऐसी कृपा हम सब पर बनाए रखिए।

हे भूमिमाता! समाज व राष्ट्र के विकास व कल्याण के लिए जो छोटी–बड़ी सभाएँ और समितियों का गठन होगा उसमें भी हे माता, आप के हित की ही बात कहेंगे और करेंगे। कोई ऐसी बात या कार्य सभा–समितियों में हम प्रजाजन कभी नहीं करेंगे जो आप (भूमि माता) के अहित में हो।

हे धरती माता! आप के कल्याण में मेरा तन, मन और धन सब कुछ समर्पित है। कोई समाज व राष्ट्र विरोधी तत्त्व यदि आप पर आक्रमण करने की मंशा रखता दिखाई देगा तो हम उसके मुकाबले के लिए हर समय तत्पर रहेंगे। ऐसा समय, जब आप पर कोई जबरन आक्रमण करके आप को पराधीन बनाने का प्रयास करेगा तो हम प्रजाजन उसके आक्रमण को

विफल करने के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देंगे। ऐसे समय, जब कोई समाज व राष्ट्र विरोधी तत्त्व युद्ध की भावना से दिखाई पड़ेगा तो हम प्रजाजन एकता का परिचय देते हुए उसको युद्ध में परास्त करने के लिए प्राण हथेली पर लेकर युद्ध करेंगे, हमें युद्ध में मर जाना स्वीकार होगा लेकिन कोई ऐसी अहितकारी बात नहीं होगी या करेंगे जिससे आप का गौरव कम होता हो या आप का अहित होता हो।

मातृभूमि स्तुतिगान में वेद द्वारा देशभक्ति की प्रेरणा का यह अति सुन्दर उपदेश है। इसमें कहा गया है कि प्रजा–जनों को ग्राम व नगरों की पंचायतों में राज्य प्रबन्ध करने वाली सभा और समिति तथा राज्य–सभाओं में या अन्य प्रकार की सभाओं एवं समितियों में जंगलों व बस्तियों में जहां कहीं भी हों, समाज व राष्ट्र के हित में बात करेंगे, कार्य करेंगे और चर्चा करेंगे। कहने का भाव यह है प्रजा–जनों को कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे मातृभूमि का अहित होता हो।

भू–माता ही सब का सम्बल हैं और जीवन इस पर ही फूलता–फलता है। इनकी प्रशंसा, स्तुति और वन्दना हम सभी मिलकर जितना भी करें, कम ही है। क्योंकि सब कुछ इनसे ही तो सृष्टि काल से उद्‌भिद्, संचालित, पोषण और संरक्षण प्राप्त होता रहा है, प्राप्त हो रहा है और अन्नत काल तक मिलता रहेगा। इसलिए वेद में बताया गया है कि जो प्रजाजन मातृभूमि के लिए नत्मस्तक होते हैं वे ही सच्चे मायने में मानवता एवं सृष्टि के पोषक हैं। हम सभी विज्ञ जनों को चाहिए कि निज ज्ञान के द्वारा मातृभूमि की अतीव गुण गायन में लगें रहें। इससे जहाँ अंतःकरण में धरती माता के प्रति कृतज्ञता और पवित्रता पैदा होती है वहीं पर भक्ति और सद्‌भावना का भी संचार होता है। समाज नगर, ग्रामों एवं परिषदों को चलाने वाली जो सभाएँ हैं वहाँ भी सभी बुद्धिमान जन एकत्रित होकर भू–माता का यशःगान करें। कोई भी मनुष्य माँ के प्रति अकृतज्ञ होकर अप्रशासित वाक्य न बोले। मतलब, राष्ट्रधर्म का सभी पालन करें और मातृभूमि के प्रति जो कर्तव्य बताएँ गएँ हैं उन्हें भी तन्मयता एवं पूरी शक्ति से मिलकर पालन करते रहें। मातृभूमि की वन्दना एवं स्तुति से समाज के हर व्यक्ति में देश एवं मातृभक्ति के प्रति भक्तिभावना का संचार होता है। समाज में एकता एवं कृतज्ञता जैसे सद्‌गुणों का निरन्तर विस्तार होता है। भूमिमाता की कृपा एवं आशीर्वाद मिलता है। अन्तर–हृदय में शान्ति, सद्‌भावना, सदाशयता, न्याय, परोपकारिता, प्रेम, अहिंसा, और धर्म–भक्ति की भावना का निरन्तर विस्तार होता है।

भूमिमाता को अनेक विचारक एवं मतों के लोग जड़ यानी चेतना रहित कहते हैं। लेकिन वेद में एक भी मंत्र में जड़ के रूप इसकी प्रशंसा नहीं की गई है। जितनी भी माताएँ हैं, उन

सब में धरती माता अत्यन्त परोपकारिणी, धैर्यवती, क्षमावती, वात्सल्यपूर्णा और उदारमना कही जाती हैं। तात्पर्य यह है, माताओं में भी धरती माता का स्थान सबसे ऊँचा हैं। इसीलिए यह सबके लिए वन्दनीय एवं स्तुत्य के योग्य हैं। जीवन की जितनी भी गति विधियाँ हैं वे सभी धरती माँ के सहयोग, संरक्षण और पोषण के बिना सम्भव नहीं है। जड़ वस्तु जीवन को विस्तारित, पोषित और संरक्षित नहीं कर सकती है। मातृभूमि की भक्ति करके हम निज को ही पवित्र एवं कृतज्ञ (विनम्र) गौरवपूर्ण नहीं बनाते, बल्कि दूसरों को भी इसके प्रति प्रेरणा का कार्य करते हैं। आइए, मिलकर हम सभी मातृभूमि की सेवा में लग जाएं, धरती पर इससे ही अहिंसा, प्रेम, न्याय, शान्ति और विकासवादी वातावरण बन सकता है।

57

दुष्टों का दलन करने वाली मातृभूमि

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान्य आक्षियन्पृथिवीं यादजायत।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम्।।

शब्दार्थ– (यात्) जब से (आक्षियन्) हानि पहुँचाते हैं (अजायत्) उत्पन्न हुई, बनी है (अश्वइव) अतीव सामर्थ्य से युक्त घोड़ा (वि दुधुवे) तीव्र वेग से दलन कर देती है (रजः) धूलकण (मन्द्रा) उत्फुल्ति कर करने वाली (भुवनस्य) सम्पूर्ण जगत् का (अग्रेत्वरी) सर्वदा आगे चलने वाली (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों में (गोपाः) रक्षा करने वाली है (औषधीनाम्) (औषधियों में) जिससे अमृत प्राप्त होता है (गृभिः) ग्रहण करने वाली (तान् जनान्) जो जन वहाँ निवास करते थे (ये) जिनके (पृथिवीम्) भू–माता को।

भावार्थ– इस पावन मातृभूमि पर दैवत्व से परिपूर्ण और दैत्यत्व से युक्त दोनों प्रकार के मानव निवास करते आए हैं। दैत्य विध्वंसकारी प्रवृतियों वाले होते हैं और देवता निर्माण करने वाले। मातृभूमि दोनों प्रकार के लोगों का पोषण करती हैं, क्योंकि माँ होने के कारण उनका यह गुण और स्वभाव है। लेकिन देवजनों ने दैत्य–तुल्य शक्तियों को अपने युद्ध कौशल से परास्त करके मातृभूमि का हर प्रकार से रक्षा की। मंत्र का भाव यह है कि हम प्रजा–जनों को दैवत्व वाली प्रवृति का अनुसरण ही करना चाहिए और मातृभूमि की रक्षा, संरक्षण और पोषण के लिए अपनी सामर्थ्य का पूरा उपयोग करना चाहिए। पुत्र का माता के प्रति जो कर्तव्य होते

हैं उन्हें पूरा करने में कभी आलस्य और प्रमाद नहीं करना चाहिए और न ही इसमें निजी स्वार्थ को ही आड़े आने देना चाहिए।

विवृति– हे हमारी भू–माता! आप कभी उन लोगों को सहन नहीं करती हो जो आप को किसी प्रकार की हानि पहुँचाता है। जिस प्रकार अश्व अपने तन पर लगे धूल कणों को झरझरा कर झाड़ देता है अर्थात् दूर फेंक देता है कुछ इसी प्रकार से हे भूमिमाता आप भी दुष्टजनों या विरोधी जनों को अपने से दूर हटा देती हो। कहने का तात्पर्य यह है धरती माता अपनी क्षीणता किसी भी प्रकार से स्वीकार या सहन नहीं कर सकती हैं।

जब से हमारे पूर्वज गणों ने यहाँ निवास करना प्रारम्भ किया और धरती को माता मानकर इसके प्रति अपने कर्तव्यों का सम्यक् पालन और निर्वाहन करना प्रारम्भ किया, तब से भूमिमाता का दुष्टों को शमन करने या दूर हटाने का क्रम बराबर चलता आ रहा है। ऐसे दुष्ट या अकल्याणकारी लोगों से दो प्रकार का व्यवहार किया जाता रहा है। प्रथम, उन्हें दूर हटाने या शमन करने का काम और द्वितीय, उन्हें सुधारने का कार्य। जो लोग इन दोनों प्रकार की विधियों से काबू में नहीं आते हैं उन्हें दण्डित करके कारागार में डाल दिया जाता है और प्रजा–जनों से सम्पर्क टूट जाता है। कहने का भाव यह है कि समाज व राष्ट्र में ऐसे दुष्ट प्रकृति के लोगों को कभी सहन नहीं करना चाहिए। जितनी भी जल्दी हो उन्हें दूर हटा दिया जाना चाहिए।

हमारी मातृभूमि का स्वभाव हमेशा समाज व राष्ट्र को क्षीण करने वाले लोगों को दूर हटाकर सबको (प्रजा–जनों) को प्रसन्न करने का रहा है। हमारी भू–माता का यह स्वभाव रहा है कि स्वयं हर्ष (प्रसन्नता) में रहती हैं और प्रजा–जनों को भी हर्ष में रखने वाली हैं। भू–माता का स्वभाव **अग्रत्वरी** अर्थात् निरन्तर आगे बढ़ने वाला है। वह सभी दिशाओं में आगे बढ़ती हैं। वह हमेशा त्वरा (शीघ्रता) करने वाली हैं। अनेक प्रकार के वृक्षों, औषधियों, अनाजों और अनेक प्रकार की वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाली हैं। इस प्रकार हमारी मातृभूमि सब का पालन करते हुए सब को आनन्द प्रदान करने वाली हैं। यह कार्य भूमिमाता हमेशा से करती आई हैं।

सृष्टि ईश्वरीय व्यवस्था से अनादिकाल से संचालित है इसलिए इस व्यवस्था के अनुरूप चलने के लिए ऋषि–महर्षियों ने मनुष्यों को प्रेरित किया–धर्म शास्त्रों के माध्यम से। जो धर्मशास्त्र का उल्लंघन करते हैं और अधर्म के राही बनते हैं वे ही आततायी हैं। आतताइयों से हम विवेकी जन कभी पीड़ित न हों– ऐसी प्रेरणा हम सभी को आप से मिलती रहें। अत्याचार जब–जब भी सृष्टि विकास के लिए बाधक साबित हुआ, तब–तब उसे विध्वंस करने के लिए

योद्धा और विवेकी जनों ने मातृभूमि को ऐसी दुष्ट प्रवृति के लोगों से माँ को मुक्ति दिलाने के लिए उनका हर प्रकार से दलन करने के लिए अपने युद्ध कौशल का प्रयोग किया।

धरती पर जो भी होता है वह परमात्म–शक्ति के आधीन ही होता है। विध्वंस और निर्माण दोनों समान–रूप से चलते रहते हैं। भूमि हमारी, शक्ति एवं सामर्थ्य बढ़ाती है। हमारे अंतःकरण में जो ऊर्जा बढ़ती है, वह व्यर्थ न हो, इसका हम सभी सदैव ध्यान रखें। पृथ्वी पर अनवरत् अग्नि–रूप में वनस्पतियाँ व्याप्त हैं। औषधियों में अमृत पाया जाता है। इससे हमारी इन्द्रियाँ पुष्ट और अमर बनतीं हैं। हे धरती माता, अमृत हमारे कण–कण में व्याप्त हो। हम इसे ग्रहण करके अमरता प्राप्त करने वाले बनें। जो विध्वंसकारी जन हैं वे विष का पान करते हैं। यह विष समाज को विषैला बनाता है।

यह मातृभूमि प्राणी–अप्राणी सभी का आधार है। सब की रक्षा एवं पोषण करने वाली भू–माता हममें ज्योति भरती जाएँ। धरती पर मुख्यतः दो तरह के लोगों की बहुतायत है। एक, वे जो दूसरों के सुख में सुखी और दुख में दुखी होते हैं, दूसरे वे जो दूसरों के सुख को देखकर दुखी और दुख को देख कर सुखी होते हैं। लेकिन आश्चर्य इस बात की है कि दोनों धरती माँ से पोषण और प्रश्रय प्राप्त करते हैं। यह सवाल सहज उठता है, धरती माता विध्वंसकारियों को क्यों पोषण और प्रश्रय देती हैं,? इस सवाल पर विचार करने से लगता है कि माँ तो माँ ही होती है। धरती पर जन्म लेने वाला हर इंसान का पुत्र है। माँ अपने स्नेह, वात्सल्य एवं सुधारस से किसी को वंचित नहीं करती है। यह पुत्र का कर्तव्य है कि माँ का वात्सल्य, स्नेह एवं पोषण पाकर शक्तिशाली बनने पर माता का वह संरक्षण करे न कि विध्वंसकारी कर्म करे। धरती पर शुभ, मंगल एवं धर्म की स्थापना तभी हो सकती है, जब हर धरती का पुत्र धर्मयुक्त कार्य करे। ऐसा कोई कार्य न करे जिससे धरती के विकास में बाधा पहुँचती हो।

मातृभूमि स्तुतिगान में वेदमाता का अनुकरणीय उपदेश सभी प्रकार के प्रजा–जनों के हित में है। इसमें कहा गया है कि जो लोग समाज और राष्ट्र में अव्यवस्था फैलाते हैं या किसी प्रकार की हानि करते हैं ऐसे दुष्ट प्रकार के लोगों को सुधार करना, दण्डित करके समाज विरोधी कार्य से पृथककर देना चाहिए। दुष्ट प्रकृति के इन लोगों को समाज व राष्ट्र से अलग करने का कार्य सतत् करते रहना चाहिए। इस कार्य में कभी आलस्य नहीं करना चाहिए। समाज में प्राणी मात्र के कल्याण के लिए औषधियों–अनाजों और वृक्षों को अधिक मात्रा में पैदा करते रहना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रजा–जनों को खुशहाल, सुरक्षित व आनन्द में रखने का कार्य बिना किसी आलस्य व प्रमाद के करते रहना चाहिए।

58

प्रजा–जनों के आवश्यक पाँच गुण

यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दोधतः।।

शब्दार्थ– (यत्) मातृभूमि के बारे में जो (वदामि) हम व्यक्त करते हैं (तत्) वह (मधुमत्) मधुरता से पूर्ण (यत् ईक्षे) जो कुछ देखता हूँ।(तत् मा) वह मुझे (वनन्ति) सेवन करते हैं (त्विषिमान्) दिव्य दीप्तयुक्त (जूतिमान्) अत्यधिक तीव्र ज्ञान से युक्त (अन्यान्) जबरन भूमि का दोहन जो करते हैं (अवहन्मि) उन्हें नाश कर दूँ, मार गिराता हूँ

भावार्थ– मातृभूमि को हर विधि से सम्पन्न और संरक्षित करने के लिए प्रत्येक प्रजाजन के अन्दर पाँच गुणों का होना मंत्र में आवश्यक बताया गया है। ये पाँच गुण एक श्रेष्ठ समाज और राष्ट्र–निर्माण में भी आवश्यक माने गए हैं। इसमें प्रथम गुण है, प्रत्येक प्रजाजन में विनम्रता और मधुरता का गुण और स्वभाव का होना आवश्यक है। द्वितीय, तेजस्विता और गतिशीलता का होना बहुत आवश्यक है। इसके बिना प्रगति नहीं हो सकती है। तृतीय, प्रत्येक प्रजाजन में पर्यवेक्षण शक्ति का होना आवश्यक है। यह शक्ति मातृभूमि और राष्ट्र के प्रति सजगता और चौकन्ने रहने की है। प्रत्येक व्यक्ति में इसकी आवश्यकता पड़ती है। चतुर्थ गुण, शक्ति सम्पन्नता है। हर तरह से शक्तिशाली और सामर्थ्यवान् होना भी आवश्यक है। और पाँचवा गुण उन्नति के मार्ग पर सदा अग्रसित होने की प्रवृति का होना भी आवश्यक है। ये पाँच गुण किसी सफल व्यक्ति के लिए भी आवश्यक हैं। इन पाँचों गुणों को अर्जित करने वाला व्यक्ति अपने जीवन को मातृभूमि और राष्ट्र के अवदान में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

विवृति– हे मातृभूमि! आप की कृपा से मेरे हृदय में मधु भर गया है। मेरी वाणी मधुमय हो गई है। वाणी में शहद जैसी मधुरता या मिठास को होना मेरे लिए अत्यन्त गौरव की बात है। यह हृदय की पावनता और विनम्रता का भी द्योतक है। मधुरस वाली वाणी सब को प्रिय लगती है। सभी इसके आकर्षण के वशीभूत हो जाते हैं। हे माँ! मेरे मुख से कभी कठोर वचन का उच्चारण न हो जो दूसरों को चुभे। इस लिए हम यह ध्यान करते हैं कि हम सब की वाणी परम पावन, पवित्र, मधुर और विनम्रता से परिपूर्ण हो। मेरा हृदय मिठास से युक्त हो जाने पर उसमें अतीव प्रेम भर जाता है। हृदय में मिठास व प्रेम के कारण मेरी वाणी मुधरस

से युक्त बन जाती है। मधुरवाणी और मधुर–व्यवहार के कारण सभी लोग हमें चाहने लगते हैं और यह सम्बन्ध आगे बढ़ता हुआ एक अटूट बन्धन वाला बन जाता है। किसी ने कहा है–'**मधुर वचन है औषधि कुटु वचन है तीर।** तात्पर्य यह है हमें हर क्षण मधुर वचन ही बोलना चाहिए और दूसरों से विनम्रता वाला व्यवहार ही करना चाहिए।

हे मातृभूमि! आप की कृपा का अतिशय फल हमें निरन्तर प्राप्त होता रहता है। जिसमें मेरे अंग–अंग अत्यन्त सन्तुलित हो गए हैं। आप की कृपा के क्या कहने! मैं अपने अक्षु से जो देखता हूँ और कर्ण से जो सुनता हूँ वह मेरे लिए अत्यन्त लाभकारी होता है। मैं आँखो से देखी वस्तुओं, पदार्थों और कान से सुने शब्दों से जो प्रेरणा या शिक्षा ग्रहण करता हूँ, वह मेरे लिए अत्यन्त उपयोगी होता है। मेरे आँख व कान हमेशा पूरी तरह से खुले रहते हैं। मेरी परिवेक्षण–शक्ति सदा सतर्क रहती है और हर तरह से जागरूक रहती है। जिधर भी चलता हूँ, पूरी तरह से चौकन्ना रहता हूँ। चलते समय आँखों के सम्मुख जो भी चीजें आती हैं और कानों को जो सुनाई देता है, उन्हें मैं बहुत ध्यान से सुनता हूँ। हर घटना की गहराई को समझकर उसके प्रति मैं वैसा ही निर्णय लेता हूँ। घटना के कारणों व स्वरूप को समझने व जानने का प्रयत्न मैं पूरी निष्पक्षता के साथ करता हूँ और उसके साथ पूरी तरह से जुड़कर उसको अपने लिए लाभकारी बनाने का प्रयत्न करता हूँ। हर घटना से कोई न कोई शिक्षाप्रद बात जुड़ी होती है। इस गहनता को समझकर मैं इसका उपयोग करता चलता हूँ। जैसे आँख से देखकर किसी घटना से शिक्षा ग्रहण करता हूँ उसी प्रकार कानों में पड़ने वाले शब्दों को चुनकर उसके मर्म को समझने का भरसक प्रयत्न करता हूँ, और इससे हम कोई न कोई लाभ प्राप्त कर लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हम जो कुछ देखें और सुनें उसे अपने हितार्थ कोई न कोई प्रेरणा लेता चलें।

हे धरती माता! मैं **त्विषीमान्** बनूं जिससे मेरा जीवन तेजस्वी और सामर्थ्यवान् बन जाए। मेरे अन्दर जो तेजस्विता और सामर्थ्य है उसी के कारण मैं सब से आदर और सम्मान प्राप्त करता हूँ, अर्थात् कभी किसी के द्वारा उपेक्षित नहीं होता हूँ। मेरे गम्भीर और अच्छे व्यक्तित्व के कारण ही उन्हें मेरा आदर सम्मान करना पड़ता है। सभी लोगों के मध्य मेरा आदर सम्मान होना यह व्यक्त करता है कि मेरा व्यक्तित्व उत्तम और मैं उपेक्षित किसी भी तरह नहीं हूँ। इस लिए सब के लिए मैं यथायोग्य सम्मान प्राप्त करता रहता हूँ। मैं तेजस्वी अर्थात् मेरे अन्दर तीक्ष्ण या तेज है। मेरे अन्दर काटने की शक्ति है। मैं प्रतापी हूँ, अर्थात् मुझमें जला डालने और परास्त करने की अतुलित शक्ति है। मैं आग का पुंज हूँ, राख का ठेर नहीं। जब भी आवश्यकता पड़ती है मैं उनका पुंज बनकर जला डालता हूँ। इस लिए कोई भी मुझे बेमतलब

मेरा असम्मान और निरादर न करे। ऐसा करने से वह व्यक्ति आराम से नहीं रह सकता है। कहने का भाव यह है, सब के साथ यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए। यदि कोई मुझे काटना चाहे तो उसे भी कटना पड़ेगा। यदि कोई जलाना चाहे तो उसे भी जलना पड़ेगा। क्योंकि मैं किसी भी रूप में निर्बल नहीं हूँ। यह सभी मातृभूमि का फल है।

हे माँ! आप की कृपा से ही मैं **जूतिमान** बन गया हूँ अर्थात् वेगवान् व गतिशील हो गया हूँ। यह मेरा स्वभाव बन गया है। आगे बढ़ता हुआ मैं उन्नति के मार्ग पर आगे चलता जाता हूँ। मैं एक क्षण भी रुकता नहीं हूँ। मैंने जो कुछ भी प्राप्त किया है उसे पाकर सन्तुष्ट नहीं हो जाता हूँ। मैंने जितनी उच्चता प्राप्त की है उसे प्राप्तकर मैं कभी सन्तोष नहीं कर लेता हूँ। मैंने जितना प्राप्त कर लिया है उससे और अधिक उच्चता प्राप्त करने करने के लिए निरन्तर आगे बढ़ता जाता हूँ। मेरी यह गतिशीलता, उस नदी के सदृश्य है जो निरन्तर बहती रहती है। यही कारण है कि मुझमें कभी शान्त तालाब जैसे गन्दे जल, जिसमें सड़ांध कभी नहीं आ पाती है। इसका कारण यह है मेरे अन्दर सदैव निर्मलता, ताजगी और जीवनी–शक्ति हमेशा बनी रहती है।

हे धरणि! इस समाज में ऐसे भी लोग हैं जो बात ही बात में क्रोध करके अपना और दूसरो की बहुत हानि करते रहते हैं, और ऐसे भी लोग हैं जो दूसरों के अधिकारों को हड़पकर जाना चाहते हैं। ऐसे षड्यंत्रकारियों के प्रति मेरा व्यवहार 'यथायोग्य' वाला ही होता है। ऐसे लोग कभी भी मुझसे पार नहीं पा सकते हैं। इन्हें तो मुँह की खानी पड़ती है। ऐसे लोगों को मैं पछाड़कर मिट्टी में मिला देता हूँ। मुझे अकारण कोई परास्त करने की कोशिश करे तो उसे भला मैं कैसे माफ कर सकता हूँ। मानव मर्यादा व स्वभाव के अनुसार पहले किसी को कष्ट या परेशान नहीं करना चाहिए लेकिन यदि कोई जबरन आक्रमण करे, तो उससे तो निपटना ही पड़ता है। मैं अपनी ओर से हमेशा सभी से विनम्रता और मधुरता का व्यवहार करता हूँ। सभी प्रेमयुक्त और मधुरवाणी बोलता हूँ। परन्तु यदि कोई मेरी विनम्रता और मधुरता को हमारी कमजोरी या दुर्बलता समझ, मुझसे शत्रुतापूर्ण व्यवहार करने लगे तो उसे परास्त करने की शक्ति भी मैं हमेशा रखता हूँ। यह सब हे माता! आप की कृपा से ही प्राप्त हुआ है।

मातृभूमि स्तुतिगान में जीवनधर्मी पाँच गुणों का वेद का यह प्रेरक उपदेश समाज के हर व्यक्ति के लिए उपयोगी है। मंत्र में प्रेरणा दी गई है कि समाज के हर व्यक्ति के शिक्षा–संस्कार इस प्रकार के होने चाहिए कि सभी एक दूसरे से मधुर और विनम्रता का व्यवहार करें। हर व्यक्ति में पर्यवेक्षण–शक्ति इस प्रकार होनी चाहिए कि कोई भी घटना या पदार्थ देखकर उससे वह अपने कल्याण के लिए शिक्षा ग्रहण कर सके। प्रजा–जनों को हर प्रकार से प्रतापी और

तेजस्वी होना चाहिए। उन्नति के मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ने और उन्नति करने के लिए हमेशा तत्पर रहना चाहिए। शत्रुओं को हर प्रकार से पराजित करने की शक्ति भी होनी चाहिए। इसके लिए राज्य की ओर से प्रबन्ध भी होना चाहिए। तात्पर्य यह है हर प्रकार की सामर्थ्य और इच्छा शक्ति रखकर हर व्यक्ति अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है।

59

गौ उपमा वाली भूमिमाता

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह।।

शब्दार्थ– (शन्तिवा) शान्ति चाहने वाली (सुरभिः) सुगन्धित (स्योना) मनोभिराम युक्त (कीलालोध्नी) अमृत रस बरसाने वाली (पयस्वती) अत्यधिक दुग्ध देने वाली (भूमिः) सर्वाधार मातृभमि (पृथिवी) भूमिमाता (पयसा सह) और ऐश्वर्य पूर्ण, अन्न व जल (मे) मेरे लिए (अधि) नीचे भाग में (ब्रवीतु) अधिकार पूर्वक।

भावार्थ– मंत्र में गाय की उपमा मातृभूमि से दी गई है। जिस प्रकार से अमृत समान दूध देने वाली गाय का पंचामृत प्राणी मात्र के लिए संजीवनी के समान नवजीवन प्रदान करता है उसी प्रकार से मातृभूमि भी शान्त स्वभाव वाली प्राणी मात्र को विविध प्रकार के अन्न, फल, रस मेवे और अन्य खाद्यों को प्रदान करके सभी को नवजीवन प्रदान करती है। इस स्वभाव के कारण ही मातृभूमि को 'पयस्विनी' कहा जाता है। जैसे गाय अपने बछड़े को दूध पिलाने के लिए रम्भाती है कुछ इसी प्रकार से भूमिमाता प्रजा–जनों को अन्न, फल, जल और अन्य पदार्थों को देने के लिए बुलाती है। भाव यह है मातृभूमि से हम सभी लोग बहुत सारा धन–धान्य, अन्न, फल, मेवे और अन्य अनगिनत पदार्थ तो प्राप्त करते हैं लेकिन हम उसके बदले में मातृभूमि को क्या कुछ लौटाने का प्रयत्न करते हैं? हमें आपस में प्रेम पूर्वक शान्त मन और मधुर व्यवहार से समाज और राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाधने के लिए और मैत्री को बढ़ाने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए।

विवृति– हे हमारी मातृभूमि! हम आप के प्रजाजन आप की महानता के गीत किन शब्दों में गायें। कितनी महत्त्वपूर्ण बातें आप के महान् गुणों के बारे में कही जा चुकी हैं। लेकिन मैं

तो आप की महिमा का मुक्त कंठ से प्रशंसा करने वालों में से हूँ। जब मैं आप के महान् गुणों के बारे में विचार करता हूँ तो लगता है आप सुरभि (गौ) जैसी हो। जिस प्रकार से गौ सुन्दर, मनमोहक और प्यारी लगती है कुछ उसी तरह आप भी हो।

हे माँ! आप को स्योना अर्थात् सुख देने वाली इस लिए कहा जाता है कि प्रजा–जनों को आप सदैव सुख प्रदान करती हो। गौ के स्तनों (थनों) में अमृत जैसा दुग्ध होने के कारण ही वह कीलालोध्नी कही जाती है। आप के देह से सभी अनगिनत कीलल अर्थात् अमृत जैसे अनेक गुणकारी पदार्थ निकलते हैं। हे मां! आप का रूप मुझे अतिशय सुन्दर, मनोहर और रमणीय और प्यारा लगता है। आप सुन्दर, मनोहर और रमणीय लगने के कारण ही सुरभि ही नहीं हो प्रत्युत अनेक प्रकार के ऐश्वर्य प्रजा–जनों को प्रदान करने के कारण भी सुरभि हो। जिस प्रकार से गाय सीधी साधी, शांत स्वभाव की सुख देने वाली होती है इसी प्रकार से हे माँ आप भी हो। गौ का पयस्वनी अर्थात् दूध देने वाली कहा गया है। आप भी पयस्वनी हों, क्योंकि आप भी अपने प्रजा–जनों के लिए अन्न, जल सदैव देती रहती हो। गाय अपने बछड़े को दूध पिलाने के लिए बुलाती है और वह इसके लिए सम्भाती है। उसी प्रकार से हे मातृभूमि! आप अपना पय अर्थात् रस, जल और अन्नादि प्रजा–जनों को देने के लिए बुलाती हो। आप प्रजा–जनों और शासकों के आहार की चिन्ता और व्यवस्था करती हो।

हे भू–माता! आप अपने प्रजा–जनों के हित में उन्हें सदैव पय, जल और अन्य उपयोगी चीजों को देने के लिए हमेशा बुलाती रहती हो। मातृभूमि हम सब को निरन्तर सुख, शान्ति, अन्न, पानी एवं समस्त भोग पदार्थ प्रदान करती रहे। इससे ही सब के हृदय में परमात्मा का प्रकाश का उदय होता है। धरती माँ, अमृत रस बरसाकर हम लोगों को आनन्द से ओत प्रोत कर देती है। दुग्ध धरती पर निवास करने वाले प्राणियों के लिए अमृत के समान है। इससे तन, मन, हृदय, चित्त, बुद्धि, विवेक और आत्म–तत्त्व निरन्तर पुष्ट होता रहता है।

हे महीष्मती! हम लोग मर्यादा युक्त जीवन व्यतीत करते हुए निरन्तर प्रगति के मार्ग पर अग्रसित होते रहें। धरती पर सुख, शान्ति, ऐश्वर्य और हर तरह के साधन सर्वदा प्राप्त होते रहें। यह तभी सम्भव है जब सभी लोग एक दूसरे के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व अर्पित करते रहेंगे। सर्वस्व अर्पित करने की भावना का उदय हमारे रोम–रोम में पल्वित होती रहे। एक दूसरे से प्रेम एवं क्षेम पूर्वक परस्पर संगति करते रहें। धरती पर निरन्तर स्वर्गिक वातावरण बनाए रखने के लिए आपसी प्रेम एवं सद्भावना का होना आवश्यक है।

हे पृथ्वी माता! हम प्रजा–जनों को वह धन–धान्य पूर्ण शक्ति दे जो शुभ एवं कान्तिमय हो। धरती पर विविध प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ, पदार्थ और संसाधन बहुतायत से मौजूद

हैं। यह इस बात का द्योतक है कि यदि हम सब श्रम, पुरुषार्थ और साधनापूर्ण जीवन बिताएंगे तो जीवन में कभी दुख उपस्थित नहीं होगा। जिस तरह से भू–माता हम सभी का हर प्रकार से हित करती हैं उसी तरह हम लोग भी सबके हित में कार्य करते हुए निरन्तर आगे बढ़ें। सबका हित करने वाला ही सही अर्थों में मनुष्य कहलाने का अधिकारी है। हम मनुष्य कहलाएँ और एक दूसरे को मनुष्यता के मार्ग पर चलने के लिए अभिप्रेरित करते रहें। पृथिवी माता हमारे लिए हर तरह से शुभकारी है। जिस तरह से भू–माता हम लोगों की हर तरह से रक्षा, पोषण एवं संरक्षण करती है उसी तरह धरती पुत्र भी धरती माता का सदैव, पोषण, रक्षा एवं संरक्षण करते रहें। इससे ही वसुधा पर सुख रूपी आलोक आलोकित होता है।

मातृभूमि स्तुतिगान में वेद भगवान का उपदेश बहुत ही प्रेरणाप्रद है। इसमें गौ की उपमा सुरभि अर्थात् गाय से दी गई है। जिस प्रकार से सुन्दर, मनोहर व शान्त स्वभाव की उपमा गाय से दी गई है उसी प्रकार से हमारी मातृभूमि भी गाय की ही तरह है। जिस प्रकार से गाय सुन्दर, मनोहर और प्यारी लगती है उसी तरह से हमारी मातृभूमि गाय की ही तरह सुन्दर, मनोहर और प्यारी लगती है। जिस प्रकार से हम गाय की रक्षा में गर्व का अनुभव करते हैं कुछ उसी तरह हमें भी अपनी मातृभूमि की रक्षा करने में भी गर्व का अनुभव करना चाहिए। हम शारीरिक, मानसिक उन्नति के लिए दुग्ध का पान करते हैं। उसी प्रकार से मातृभूमि पर पाए जाने वाले पदार्थों से लाभ उठाना चाहिए। मातृभूमि की गौ की उपमा से जो ध्वनि निकलती है वह मातृभूमि की हर प्रकार से रक्षा करने के संदर्भ में है। हम प्रजा–जनों को अपनी मातृभूमि का सदैव रक्षा करनी चाहिए जिससे इस पर किसी प्रकार का कभी उत्पात न हो।

हे भू–माता! उत्तम सुगन्धि से सुवाहित आप निरन्तर सब का कल्याण करती रहती हो। हर तरह से सम्पन्न हे माता, हम सभी को अपना शुभ आशीर्वाद प्रदान करती रहो। दुग्ध पान से मनुष्य की काया और मन (चित्त) पुष्ट होता है। मातृभूमि पर निवास करने वाले विद्वत जन अपने ज्ञान के द्वारा भू–माता को सुखी करने की कोशिश करते हैं। सुख तभी स्थाई हो सकता है जब धरती माँ सर्वदा क्षीर–नीर से सम्पन्न रहती है।

60

वन्दनीया मातृभूमि का मातृभूमित्व

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृ मद्भ्यः।।

शब्दार्थ– (यत्) जब (विश्वकर्मा) सर्व सृजन में सामर्थ्य (यां) जिस (भूमिमाता को) (रजिस अर्णवे) गहरे सागर में (अन्तः प्रविष्टां) भू–माता के अंतःकरण में (हविषा) हविष दान के लिए (अन्वैच्छद्) खोजपूर्ण ढंग से (भुजिष्यम्) भोजन योग्य, खाने योग्य (पात्रम्) पात्र (गुहा निहितम्) गुफा में संरक्षित (मातृभ्यः) मातृभूमि से सम्बन्धित। (भोगे) उपभोग करना (आविः अभवत्) प्रकट हो जाते हैं।

भावार्थ– मंत्र में यह समझाया गया है कि सामान्य–रूप से यह धरती समुद्र से निकली हुई मिट्टी का ठेर या विशाल भू–खण्ड को हम देखते हैं, इसमें कोई महत्व वाली चीज भी दिखाई नहीं देती है, लेकिन जैसे ही हम इससे मानसिक–रूप से जुड़ जाते हैं वैसे ही इस पर निवास करने वाले सभी लोग हमारे सहोदर जैसे हो जाते हैं। कहने का मंत्र का भाव यह है कि हम सभी जितने भी मानव इस धरा पर निवास करते हैं सभी इस पृथ्वी माता के पुत्र एवं पुत्री होने के कारण आपस में मैत्री भाव से जहाँ जुड़ जाते हैं वहीं पर एक अटूट सम्बन्ध सहोदर जैसा भाई एवं बहन का भी जुड़ जाता है। इस दृष्टि से ही भारतीय संस्कृति में धरती के सभी लोग एक कुटुम्ब के सदृश्य हैं। इस लिए हमें आपस में परिवार जैसा एक रिश्ता आपस में समझना चाहिए और हमें बिना किसी भेदभाव के मातृभूमि की उन्नति और संरक्षण के साथ ही साथ आपस में तालमेल और एकत्व की भावना से ओत प्रोत होकर व्यवहार करना चाहिए। इसी को हम मातृभूमि का ममत्व भी कहते हैं।

विवृति– हम जिस भू–माता को वन्दनीया और परम हितकारिणी समझते हैं उसे सामान्य रूप से देखने और स्थूल रूप से देखने पर वह समुद्र से निकली हुई मिट्टी का विशाल भू–खण्ड या ठेर ही दिखाई देती है। इसका कोई एक स्वरूप भी निश्चित नहीं होता है। यह एक जड़ पदार्थ ही दिखता है जिसमें मातृत्व या ममत्व जैसी कोई बात नहीं दिखाई देती है। लेकिन जब हम प्रजाजन इससे मानसिक रूप से एक प्रगाढ़ सम्बन्ध जोड़ लेते हैं और इसे माता समझने लग जाते हैं तब सब के साथ हम सब का एक सहोदर भाई जैसा सम्बन्ध बन जाता है। सभी लोग हमारे भ्राता के समान हो जाते हैं, क्यों कि सबके सम्बन्ध मातृभूमि से

माता–के–समान हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह मातृभूमि हमारे लिए मानसिक अर्थात् मन से पैदा होने वाली वस्तु बन जाती है। हमारे हृदय में, मन में, बुद्धि व विवेक, हर स्थान पर इसका वास हो जाता है। हम सभी का मातृभूमि के प्रति अलग ही सम्बन्ध बन जाता हैं और यह हम प्रजा–जनों के लिए परम पूज्या बन जाती हैं। हम इसके लिए अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। हम अपने स्वार्थ, हित और संकोच छोड़कर एक सच्चे पुत्र के रूप में इसके लिए समर्पित हो जाते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि प्रजा–जनों के लिए मातृभूमि से जो सम्बन्ध जुड़ता है, वह सबसे अधिक पावन, अटूट और प्रेम का होता है। हमारे अन्दर माता के लिए एक निर्माणकर्ता और कर्मयोद्धा बनने का भाव जागृत हो जाता है। समाज व देशहित से बड़ा कोई परोपकार का कार्य नहीं हो सकता। अब हम जो भी कर्म करते हैं वे सभी मातृभूमि के लिए ही होते हैं, और मातृभूमि में जो पदार्थ, भोजन व पेय पदार्थ छिपे होते हैं वे प्रकट होने लगते हैं। समाज व देश का प्रत्येक व्यक्ति तब इसका उपयोग करने के लिए स्वतंत्र होता है। सभी आवश्यकताओं की वस्तुयें और अन्य सुख–सुविधायें हमें सहज प्राप्त होने लगती हैं।

ऐसा सहज सम्बन्ध मातृभूमि के साथ हो जाने पर हमारा मातृभूमि के साथ पुत्र–माता का सम्बन्ध बन जाता है। माता के लिए पुत्र के मन में और पुत्र के लिए माता के मन में अत्यन्त प्रेम उमड़ आता है। कहने का तात्पर्य यह है मातृभूमि और प्रजा–जनों का सम्बन्ध सभी सम्बन्धों से सच्चा और विश्वसनीय होता है।

मनुष्य भू–माता के रक्षण, पोषण एवं संरक्षण में अनवरत् रत रहे तभी माँ की अनुकम्पा का सुफल प्राप्त होता है। धरती माँ अपने पन से सागर और अन्तरिक्ष में सदैव गोचर होती रहतीं हैं। आकाश में जिस तरह से थाली के समान दिखती है, वह मातृभूमि हम सबके लिए सदैव हितकारणी होए। धरती माता का स्वभाव ही सब का, सब तरह से हित करना, और उसके बदले में कुछ भी ग्रहण न करना। माता का स्वभाव ही होता है पुत्रों एवं पुत्रियों से कुछ भी बदले में ग्रहण न करना। लेकिन माता की इस परोपकारी–प्रवृत्ति के लिए हम उनकी सन्तानों को चाहिए कि माता का हर पल निज पुरुषार्थों से पोषण, रक्षण एवं संरक्षण करते रहें। इससे ही समाज में आचार–विधि का पालन हो सकता है।

इस पूरे ब्रह्माण्ड में अनन्त आकाश गंगाएँ, प्रकाश–लोक, अन्तरिक्ष और प्राणी–लोक हैं। लेकिन पृथ्वी पर निवास करने वाले प्राणियों की अपनी अलग विकास–यात्रा है। यह विकास–यात्रा सृष्टि काल से अनवरत् जारी है। आगे भी चलती रहेगी। हम पृथ्वी पर रहने वालों को चाहिए कि अपनी विकास–य़ात्रा को कभी रुकने न दें और समाज को उत्कृष्तम

बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहें।

पृथ्वी माता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह बिना किसी भेदभाव, स्वार्थ और अहंकार के सभी प्राणियों का यथायोग्य पालन, पोषण और संरक्षण देती है। इस लिए किसी प्राणी को शिकायत नहीं रहती कि उसके साथ भूमिमाता ने कभी किसी प्रकार का भेदभाव या स्वार्थपरता बरती है। सबको विकास का समान अवसर प्राप्त होता है। मनुष्य भौतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, याज्ञिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और वैज्ञानिक उन्नति भू–माता के संरक्षण में करता चला आ रहा है। यह पृथ्वी की सबसे अद्‌भुत आधान है।

सभी सुखी हो, निरोग और लम्बी उम्र वाले हों। ऐसी अभीत्सा हर किसी को होती है। इसके लिए आवश्यक है, शरीर विज्ञान, मन विज्ञान, हृदय और जीवविज्ञान की आवश्यकता को समझें। बिना इसे समझे जीवन, समाज, योग, प्रयोग और संयोग को नहीं समझा जा सकता है। सृष्टि की हर वस्तु–वस्तु के प्रति प्रेम, न्याय, अहिंसा, सदाशयता और सद्‌भावना की भावना से ओत प्रोत रहें। हे भूमिमाता, जैसे आप अहिर्निश, शान्ति, सद्‌भावना , परोपकार, दान, करुणा, अहिंसा, सत्य–युक्त और शुभ–कल्याणकारक बनी रहती हो उसी तरह हममें भी निरन्तर सद्‌गुण ज्ञान और प्रेम की भावना सभी प्राणियों के प्रति बनी रहे। हम अपने जीवन–निर्वाह के लिए वस्तुओं का उपयोग करें जिससे हमारा जीवन सुचारू रूप से चलता जाए।

मातृभूमि स्तुतिगान में वेद भगवान का परम पावन उपदेश है कि सभी प्रजा–जनों को मातृभूमि के प्रति अत्यंत प्रेम, श्रद्धा, भक्ति और पोषण का भाव हमेशा रखना चाहिए। समाज के प्रत्येक व्यक्ति में मातृभूमि के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति का भाव सदैव बना रहना चाहिए। इससे ही धरती पर रहने वाले सभी पुरुषों का अपना भाई समझने का भाव उत्पन्न हो जाता है। सबकी उन्नति में अपनी उन्नति, सबके कल्याण में अपना कल्याण का भाव भी सभी में निरन्तर बना रहना चाहिए। समाज व राष्ट्र के प्रति सबसे अधिक सम्मान की भावना रखनी चाहिए। सबकी भलाई में यदि अपना आत्मत्याग भी करना पड़े तो किंचित पीछे नहीं रहना चाहिए। प्रजा–जनों को चाहिए कि अपना सभी कर्म व कौशल समाज व राष्ट्र के लिए समर्पित करते रहें। ऐसा समाज ही श्रेष्ठ समाज बन सकता है। कहने का भाव यह है कि प्रजाजन जो भी करें, मातृभूमि और उन पर निवास करने वालों के हित में ही करें। देश के हर निवासी में मातृभूमि के प्रति माता जैसा व्यवहार होने के कारण ही माता अपने आशीर्वाद के रूप में सब भोज्य पदार्थ, पेय पदार्थ, मेवे और अन्य पदार्थ की कोई कमी नहीं होने देती। कहने का भाव यह है कि सभी का मंगल मातृभूमि की सेवा, सम्मान और आदर में ही है।

61

सम्राट रक्षित मातृभूमि

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुधा पप्रथाना।
यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य।।

शब्दार्थ– (त्वं) तुम (जनाना) मानव के लिए (अदितिः) यह भूमिमाता जो अनिश्वर रूप वाली है (कामदुधा) कामनाओं की पूर्ति करने वाली (पप्रथाना) विस्तृत होती हुई (आवपनी) ऊपजाऊ जो है (असि) इस तरह से (ते) तुझे (यत्) जो (ऊनम्) कमतर (ऋतस्य) उसी रूप में (प्रथमजाः) सृष्टि के साथ जो पैदा हुआ (प्रजापतिः) जगतपति परमात्मा (ते) तेरे (आ) हर तरह से (पूरयाति) पूर्ण कर देता है।

भावार्थ– इस पावन धरा पर कृषक–जन बीज बोकर अन्न और फल पैदा करते हैं। अन्न को प्राण कहा गया है। इस लिए कृषक–जनों को अन्नदाता कहा जाता है। ऐसे कृषक जन सभी के लिए अभिनन्दनीय हैं। भू–माता की गोद में अनगिनत लोग अपनी अलग–अलग भूमिकाएँ निभाते हैं। मंत्र में कहा गया है कि हम मातृभूमि के पोषक और संरक्षक हैं। हम अपने उद्योग से मातृभूमि को हर तरह से सम्पन्न करते हैं। साथ ही शत्रुओं से रक्षा भी करते है। हमारी यह प्रवृति जीवन पर्यान्त बनी रहनी चाहिए। जिससे कोई शत्रु भूमि पर आँख उठाकर न देख सके। मातृभूमि को 'अदिति' भी कहा गया है। यह इस लिए क्योंकि यह सबको प्रकाशित और प्राण देने वाली है। इस धरा का पालन करने वाला पालक सम्राट प्रजा का पालन पूरे निष्ठा के साथ करता है। सत्य और ऋत दोनों सम्राट के द्वारा पालन किये जाते हैं। सत्य और ऋत का पालक होने के कारण सम्राट प्रजा–जनों को सत्य के द्वारा हर तरह से सुख देने वाला है। इसी प्रकार इस सृष्टि का पालन और सृजनहार परमेश्वर भी सम्राट है। परमपिता परमेश्वर का सम्राट–रूप सबसे अभिन्न है, क्योंकि वह सम्राटों का भी सम्राट है। हम दोनों सम्राटों का यथायोग्य वन्दन करने वाले बनें।

विवृति– हे मातृभूमि! आप की उपजाऊ शक्ति अखण्ड है। जो भी बीज बोये जाते हैं वे अंकुरित होते हैं। हम विभिन्न प्रकार के खेतों में भिन्न–भिन्न प्रकार के बीज बोते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार की खेती होती है। कृषि से लोगों की सतत् जीविका चलती रहती है। ऐसा कौन सा प्राणी है जो आप से प्राण न प्राप्त करता हो।

हे भू–माता! आप 'अदिति' भी हैं। अविनाशी और अखण्ड हैं। आप के इन महानताओं के

कारण ही आप को सनातन से 'अदिति' कहा जाता आ रहा है। आप सदैव शत्रुओं से रक्षित रहती हैं। क्योंकि हम आप के प्रजाजन हर समय आप की शत्रुओं से रक्षा करते रहते हैं। सृष्टिकाल से लेकर आज तक आप का अविनाशी और अखण्ड स्वरूप बना हुआ है। शत्रुओं से रक्षित आप हे माँ, आप में अतुलित शक्ति और सामर्थ्य है। आप की शक्ति को देखकर कोई भी शत्रु आप पर आक्रमण का साहस नहीं कर सकता है। आप का यह विशाल वलय पूर्णतः सुसंगठित है। कोई शत्रु इस लिए आँख उठाकर नहीं देख सकता। फिर शत्रु में इतना साहस कहाँ कि आप पर आक्रमण कर सके। आप का अदिति होना कोई साधारण बात नहीं है। आप जहाँ शक्ति के रूप में प्रचण्ड हैं वहीं पर अखण्ड होकर वज्र के समान भी हैं।

हे धरती मां! आप पर निवास करने वाले हम प्रजाजन आप की अखण्डता और सुसंगठिता के निमित्त अपने प्राण न्योछावर करते रहेंगे, लेकिन आप को शत्रुओं से हमेशा रक्षित करते रहेंगे। आप पर निर्मित यह समाज भी हमेशा विकास की धारा में आगे बढ़ता रहेगा। हम प्रजा–जनों की पीढ़ियाँ–दर–पीढ़ियाँ आप के रक्षार्थ व समाज के विकास में अपने कर्तव्य निभाती रहेंगी और आप पर बसने वाला यह राष्ट्र भी अखण्ड–रूप में स्थिर बना रहेगा। हे मां, यह आप की कृपा से ही संभव है।

समाज व राष्ट्र कल्याण के लिए निरन्तर महान् कार्य होते रहते हैं। इन महान् कार्यों से हम प्रजा–जनों का सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक, वैयाक्तिक व राजनीतिक–सभी दृष्टियों से खूब विस्तार हो रहा है। इस विस्तार के कारण ही हम सब का बहुमुखी विकास और उन्नति हो रही है। हम कीर्तिवान् और प्रशंसावान् बनते जा रहे हैं।

हे भूमिमाता! आप की प्रजा द्वारा चुना गया प्रजापति (सम्राट) प्रजा का पालन नियम पूर्वक करता है। उसमें सत्ता का मद एकदम नहीं है। उसमें ऐसे अनेक सद्गुण हैं जो उसे प्रजा–पालक बनाते हैं – प्रजा का संरक्षक बनाते है। उसमें प्रजा के प्रति हमेशा कल्याण की भावना बनी रहती है। इस लिए वह प्रजा–पालक के रूप में वह सफल है। सम्राट बनने का उसका उद्देश्य शासक बनने का नहीं बल्कि प्रजा–जनों का सदैव हित करना है।

हम प्रजा–जनों का प्रजा–पालक राजा ऋत का प्रथमजा कहलाता है। वह समाज व राष्ट्र में सत्य की स्थापना के लिए संकल्पित है। वह ही सत्य को समाज व राष्ट्रहित में स्थापित करने वाला है। वह ही राष्ट्र व समाज में सत्य का प्रथम उत्पन्न करने वाला और प्रधान प्रवर्तक भी है। वह सत्य का ही अनुव्रती है। सत्य उसके रोम–रोम में व्याप्त है। उसे असत्य किसी भी रूप में प्रिय नहीं है। वह किसी के साथ कभी भी असत्य का व्यवहार नहीं करता

है। उसके राज्यव्रती होने के कारण प्रजाजन भी सत्य के रास्ते पर चलने वाले बन गए हैं। समाज व राष्ट्र में सत्य की स्थापना में वह ही सबका मार्गदर्शक है।

इस प्रकार प्रजापिता सम्राट के अपने सत्यव्रती व्यवहार से सारे राजकर्मचारी सत्यव्रती बन गए हैं। फिर प्रजा क्यों सत्य के रास्ते पर चलने वाली नहीं होगी। कहा भी गया है–**यथा राजा तथा प्रजा।**'

हमारा यह भू पालक सत्यव्रती सम्राट समाज व राष्ट्र पर बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि रखने वाला है। समाज में किसी भी प्रकार की कमी को वह पूरा करता है। राजा के इस व्यवहार से राजकर्मचारी भी अपने दायित्वों का निर्वाह अत्यन्त कर्तव्यनिष्ठा और सच्चाई के साथ करते हैं। जिससे समाज व राष्ट्र में किसी भी प्रकार की समस्या नहीं आ पाती है। समाज व राष्ट्र की कोई भी न्यनूता पर राजा व उसके कर्मचारी बहुत रुचिपूर्वक दूर करने के लिए तत्पर रहते हैं। राज कर्मचारियों के सत्यनिष्ठा, शुभसंकल्प और सत्य के प्रति अतिशय प्रेम के कारण राष्ट्रीय व सामाजिक– दोनों में आई किसी भी प्रकार की त्रुटियों को दूर कर दिया जाता है। यदि कर्मचारी सत्य के स्थान पर असत्य का व्यवहार या आचरण करें तो राष्ट्र और समाज में न्यूनताएँ आने लगती हैं। इस लिए राज कर्मचारियों का सत्यनिष्ठ एवं कर्तव्यपारायण होना बहुत आवश्यक है। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा और राज कर्मचारियों का महान् चरित्र और व्यवहार सत्य और आदर्श पर आधारित होना चाहिए। प्रजाजन इनका ही अनुकरण करके व्यवहार व कार्य निश्चित करते हैं।

राजाओं का राजा सबका राजा परमपिता परमेश्वर सर्वोपरि है। वह हमारी मातृभूमि पर अपनी अनुकम्पा सदैव बनाए रखता है। वह परमात्मा ही इस जगत् में सत्य च ऋत् को प्रथम उत्पन्न करने वाला है। इस जगत् में सभी सत्यनियमों का नियन्ता भी वही है। कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर को सत्य का जीवन अत्यन्त प्रिय है। हमारा सम्राट, उसके राज कर्मचारीगण और प्रजाजन–जो सभी सत्य के पथ पर चलने वाले हैं–ईश्वर ऐसी सत्यनिष्ठा से सभी पर सदैव प्रसन्न रहते हैं। प्रभु की कृपा राज कर्मचारियों और प्रजा–जनों की असत्य से लड़ने की शक्ति को बढ़ावा देती है। उसकी ही कृपा से सभी प्रजाजन और कर्मचारीगण अपनी न्यूनताओं (कमियों) को दूर करते रहते हैं। इस प्रकार वह परमेश्वर–हमारी धरती माता की सभी न्यूनताओं को दूर करते रहते हैं। आशय यह है कि सच्चिदानन्द की कृपा से इस जगत् की सभी न्यूनताएँ दूर होती हैं। हम सभी को उसकी कृपा प्राप्त करने के लिए सत्य का अनुगामी बने रहना चाहिए।

मेरी परम पालनीया भू–माता, वसुधा पर निवास करने वाले सभी प्राणियों का पालन करती है। सभी प्राणी भू–माता की शक्ति का दोहन करके सुख प्राप्त करते हैं। भूमिमाता में वह अतुलित शक्ति है जिससे युगो–युगों तक प्राणी–जन्तु जीवन–चक्र सम्पादित करते रहेंगे। महीमति की अतीव शक्ति का अंदाजा लगाना असम्भव है। कितना भार लिए सब को सब तरह से सुवृत्ति पूर्वक पालन करती रहती हैं, इसका वर्णन करना मनुष्य के बूते की बात नहीं है।

प्राणी जगत् को जीवन निर्वाह में जितनी ऊर्जा चाहिए भू–माता भरपूर मात्रा में निर्विध्न प्रदान करती रहतीं हैं, माता की ममता की यह पराकाष्ठा है। ममत्व की सीमा का आंकलन पृथिवी माता की ममता, वात्सल्य प्रवणता को देख कर नहीं किया जा सकता है। सृष्टि काल से जिसने जो भी कामना की माँ आप ने बगैर किसी स्वार्थ या भेदभाव के पूरी की। सबकी कामना पूर्ति करने वाली इस ब्रह्माण्ड में कोई दैवी शक्ति है तो वह आप ही हैं। आप की ममत्व–प्रवणता वात्सल्य–जन्यता की पराकाष्ठा की हम शत्–शत् बार वन्दन करते हैं।

परमपिता परमेश्वर ने सृष्टि की रचना की। इसमें जड़ और चेतन दोनों तरह की सृष्टियाँ प्रार्दूभूत हुईं। इसमें मनुष्य चेतस शक्ति के रूप में सबसे अधिक तेजस भाव वाला हुआ। लेकिन वह पालन शक्ति में अग्रभूत नहीं हुआ। पालन, मामत्व और वात्सल्य–भाव जन्यता की परमशक्ति धरती माता को हासिल है। इस चिन्तन को हम आर्यजनों को समझकर निज कर्तव्यों के पालन करने में हम सभी को निरन्तर तत्पर रहना चाहिए।

सृष्टि के पूर्व, सृष्टि के समय, सृष्टि के पश्चात जो परम दिव्यता की शक्ति विद्यमान रहती आई है वह मनुष्य की कामनाओं एवं इच्छाओं की पूर्ति करने वाली है। हम सभी उस परम दैव की मिलकर आइए स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें। जिससे परमशक्ति का प्रकाश हम सभी को निरन्तर मिल सके और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, जो मनुष्य जीवन के चार पुरूषार्थ कह गए हैं प्राप्त कर सकें।

धरती माँ में ऐसी कौन–सी शक्ति नहीं है जो प्राणी जाति के विकास को तीव्रतर करने में सहयोगी न हो। मतलब भूमि–माता में हर तरह की दिव्यता की शक्ति है। ज्ञान–विज्ञान, भूगोल, साहित्य, दर्शन और गणित का जो भी विकास हो रहा है सब इस पृथ्वी पर ही हो रहा है। इसलिए भू–माता से बढ़कर वन्दनीय हमारे लिए और कौन हो सकता है। धरणि से हम जो न प्राप्त कर पाएँ उसे परमात्मा से प्राप्त करने के लिए साधना करें। इससे सभी तरह की न्यूनताएँ खत्म हो जाती हैं। आइए, हम सभी परमेश्वर की अनुकम्पा प्राप्त करें जिससे हम सबका कल्याण कर सकें।

मातृभूमि स्तुतिगान में वेद माता का प्रेरणाप्रद उपदेश सभी प्रजा–जनों और राज कर्मचारियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसमें प्रेरणा दी गई है कि कृषि योग्य भूमि में हमें तरह–तरह के बीज बोकर नाना प्रकार की फसलें उगानी चाहिए। जिससे सभी को पर्याप्त मात्रा में अन्न उपलब्ध हो सके। हमारा समाज व राष्ट्र शक्तिशाली बना रहे जिससे कोई भी शत्रु इन पर आक्रमण करके इन्हें खण्डित न कर सके। हमें अपनी नाना प्रकार की कामनाओं की पूर्ति करने के लिए धरती में पाए जाने वाले सभी प्रकार के उपयोगी पदार्थों का उपयोग करते रहना चाहिए। हमें ऐसे श्रेष्ठ कर्म ही करने चाहिए जो सब तरह से कल्याणकारी हों। सभी प्रजा–जनों को अपने महान् कार्यों के द्वारा यशस्वी बनाना चाहिए। राजा व कर्मचारीगण सत्य के पालक हों। क्योंकि प्रजाजन इनका अनुकरण करते हैं। सत्यनिष्ठ जीवन –राजा, कर्मचारीगण व प्रजा–तीनों के लिए आवश्यक है। परमात्मा की अनुकम्पा इससे ही प्राप्त होती है। असत्य जीवन का कभी अंग न बनें। ऐसा तभी सम्भव है, जब परमात्मा की अनुकम्पा हम पर सदैव बनी रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि हम सभी को सत्यनिष्ठा, शक्ति सम्पन्न और शुभ संकल्प का होना चाहिए–इससे स्वयं की त्रुटियों को दूर करने में सहायता मिलती है।

62

मातृभूमि हित अपना अवदान समर्पित करते रहें

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम्।।

शब्दार्थ– (पृथिवि) भूमिमाता (प्रसूता) उत्पन्न करने वाली (अनमीवाः) निरोग पूर्णता (अयक्ष्माः) क्षयरोग रहित (उपस्थाः) कोखें , ऊपर रहने वाले लोग (अस्मभ्यम्) हमें, हमारे लिए (संतु) हों (नः) हमारी (आयुः) आयु (दीर्घम् भवतु) दीर्घजीवी होयें (प्रतिबुध्यमानाः) प्रतिबोध करते हुए (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए (बलिहृतः स्याम) कर भार देने वाले हों।

भावार्थ– मंत्र में प्रजा–जनों के अवदान और निर्विघ्न कार्य सतत सम्पन्न होने की बात कही गई है। स्वस्थ्य जीवन और दीर्घायु प्राप्त करने के लिए उत्तम दिनचर्या और सन्तुलित आहार–विहार की उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला गया है। मातृभूमि से कामना की गई है कि मातृभूमि पर निवास करने वाले सभी प्रजाजन यक्ष्मा या अन्य किसी भी रोग से ग्रसित न हों।

ज्ञान के पथ पर हम सभी चलने वाले बनें। हमारा चिन्तन और चिन्ता मात्र अपनी समुउन्नति के लिए न हो अपितु सभी के लिए हो। स्वार्थवादी जीवन के स्थान पर कल्याणकारी सामूहिक और राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन को हम प्राथमिकता दें। शक्ति, ऊर्जा, ज्ञान–विज्ञान, कीर्ति और अर्थ के लिए हम संकल्पवान् हों। हमारा आदर्श जीवन औरों के लिए प्रेरणाप्रद बने।

विवृति– हे भूमिमाता! हम प्रजाजन समाज को सुव्यवस्थित और जनसंख्या वृद्धि के लिए अपना अवदान देते रहें और हम सभी आरोग्य जीवन व्यतीत करते हुए निरन्तर विकास के पथ पर आगे बढ़ते रहें। इसमें किसी में भी यक्ष्मा जैसे क्षय रोग कभी न हों। यक्ष्मा ही नहीं अन्य किसी भी रोग से हम सभी दूर रहें। अर्थात् हम सभी प्रजाजन सदैव निरोग रहें। हम प्रजाजन हमेशा स्वस्थ रहकर दीर्घायु प्राप्त करें। हम समाज व राष्ट्र के लिए अपना उच्चतम अवदान देते रहें और सौ वर्ष से भी अधिक की आयु प्राप्त करें।

हे भू–माता! हमारा आरोग्य जीवन, दीघायु हमारे लिए हर प्रकार से कल्याणकारी बने रहें। हम दीर्घ जीवन में ज्ञान–पथ के निरन्तर अनुगामी बने रहें। हर समय कुछ–न–कुछ ज्ञान का संग्रह करते रहें। ज्ञान–पथ पर निरन्तर चलते हुए जीवन व्यतीत करना ही जीवन की सफलता है। ज्ञानवान् स्वयं को बनाना और ज्ञान को जीवन–पथ का साथी बनाना ही मानव जीवन का उद्‌देश्य होना चाहिए। हम प्रजाजन इसी प्रकार का ही जीवन व्यतीत करने वाले बनें।

हे मातृभूमि! हम पर ऐसी कृपा एवं सद्‌बुद्धि देती रहें कि हमारा जीवन अपने लिए ही न हो बल्कि सब की उन्नति के लिए हो अर्थात् स्वार्थवादी वैयक्तिक जीवन के स्थान पर सामूहिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन को ही प्राथमिकता दें। हमारी चिन्ताएँ स्वयं की उन्नति के लिए ही नहीं बल्कि सबकी उन्नति के लिए हो। हम अपने सात्विक कार्यों से जो धन अर्जित करते हैं उसमें कुछ–न–कुछ अंश सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के हित–साधन के लिए अपने राज्य को 'कर' के रूप में समर्पित करते रहें। राज्य–व्यवस्था की ओर से समय–समय पर समाज व राष्ट्रहित की दृष्टि से आय पर जो 'कर' निश्चित करे, उसे बिना छिपाए या बिलम्ब किये प्रसन्नता के साथ देते रहें।

हे मातृभूमि! आयकर देना सारे जीवन का एक देय–भाग बन जाए जिससे राष्ट्र की राज्य–व्यवस्था सुव्यवस्थित बनी रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज व राष्ट्रहित में सोचना, विचार करना व कार्य करना और अपना अवदान 'कर' के रूप में देते रहना चाहिए, यह हमारे लिए प्रसन्नता की बात होनी चाहिए।

हे भू–माता ! हम मनुष्यगण आप की कोख से उत्पन्न हूए और सतत् विकास–पथ पर अग्रसित हैं। आप ही से हम मानवों को हर तरह से शक्ति, ऊर्जा, ज्ञान–विज्ञान, साधन, सुविधा और सुकीर्ति सतत् प्राप्त होती रहती है। हम लोग आप की गोद में ममत्व प्राप्त करके सदा निरोग रहें। हमारी सभी इन्द्रियाँ दृढ़ और बलवान बनी रहें। दीर्घायु होकर हम ज्ञान–विज्ञान में सतत् उन्नति करते रहें। बुद्धि के विकास और उपयोग से हमारा जीवन श्रेष्ठतर होता जाए। हम सभी हर तरह से सजग रहें।

पृथ्वी माता के हित में जो भी कार्य करें वह निर्विघ्न सम्पन्न हो। मातृभूमि हेतु हम जितना हो सके निःस्वार्थ बलिदान करते रहें। इससे ही धरती से दुखी–जनों का दुख दूर हो सकता है। हममें सत्साहस, दृढ़ता, प्रतिज्ञा, शुभ संकल्प और सदाशयता सतत् कायम रहे। यह ही धरणि की उन्नति का समुन्नत रास्ता है। इससे ही समाज में सुख–समृद्धि का वातावरण बन सकता है। निज पुरुषार्थ से जितना भू–माता का हित संरक्षण हो सकता है उतना और किसी विधि से नहीं हो सकता है।

मातृभूमि की स्तुति करते हुए वेद में प्रजा–जनों को अत्यन्त सुन्दर उपदेश दिया गया है। उपदेश में कहा गया है कि राष्ट्र में राज्य की ओर से होने वाली व्यवस्था ऐसी सुव्यवस्थित होनी चाहिए कि उसके निवासियों में कभी किसी प्रकार का रोग, अभाव और क्षीणता न आने पाए। सभी लोग सौ से अधिक आयु का जीवन सुखपूर्वक जियें। प्रत्येक व्यक्ति को हर समय कुछ–न–कुछ समाज व राष्ट्र हित में अपना अवदान देते रहना चाहिए। दीर्घायु के साथ ज्ञानवान् बनकर जीवन व्यतीत करें। श्रेष्ठ जीवन का यही सुन्दर रास्ता है। सभी प्रजा–जनों और राष्ट्रवासियों को अपने आप से कुछ–न–कुछ अंश राज्य द्वारा निर्धारित 'कर' के नियम के अनुसार देते रहना चाहिए अर्थात् समाज व राष्ट्र के लिए हमारा जीवन हो न कि केवल अपने लिए।

63

ज्ञान के पावन आलोक के पथ पर चलें

भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्।।

शब्दार्थ– (मातः भूमे) हे मातृभूमि (भद्रया) सतत् हित करने वाली (मा) मुझे (सुप्रतिष्ठितम्) युक्त–युक्त कर दे (नि धेहि) प्रतिष्ठित कर–स्थापित कर (कवे) क्रान्तिदर्शी, ज्ञानवति (दिवा)

दिव्य प्रकाश (संविदाना) जान लेने वाली (श्रियाम्) श्री युक्त (भूत्याम्) समृद्धि के लिए (धेहि) धारण कर।

भावार्थ– मंत्र में श्रेष्ठता और शुभता का आधार उत्तम चरित्र को बताया गया है। जितना ही सुदृढ़ता और भद्रता जीवन में होगी जीवन उतना ही श्रेष्ठ बनता जाएगा। आचरण से मनुष्य की स्थिति सबल और अच्छी बनती है और कमजोर तथा निम्न भी। मातृभूमि, राष्ट्र और समाज से अज्ञानाधंकार दूर करने के लिए पहले स्वयं को ज्ञानवान और चरित्रवान बनाने की आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक प्रजाजन को उद्योग और चेष्ठा करते हुए शुभ संकल्प के द्वारा ही उद्देश्य प्राप्त करना चाहिए। परिश्रम और सत्य के मार्ग से ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले होना चाहिए। समाज और राष्ट्र की उन्नति को ही अपनी उन्नति मानकर जीवन पथपर हम सतत आगे बढ़ते जाएँ।

विवृति– हे भू–माता! आप का हम प्रजाजन पर हमेशा कृपा दृष्टि बनी रहती है। आप की कृपा से ही हमारी प्रतिष्ठा समाज में हो सकती है। हे माँ, हम सभी तरह से दृढ़ और सबल आधार वाला बने रहें। हम किसी भी तरह से निर्बल न होयें। अभाव हम सब के जीवन का अंग न बने। अभाव के कारण विचलित न हो जाऊँ। कहने का तात्पर्य यह है कि मातृभूमि की कृपा बनी रहने पर कभी अभाव हो नहीं सकता है। इस लिए हमें हमेशा मातृभूमि की कृपा प्राप्त करते रहना चाहिए।

मेरा आचरण और चरित्र पवित्र और आदर्श वाले हों। इनकी दृढ़ता (आचरण व चरित्र) से ही जीवन में भद्रपना का समावेश होता है। मेरा आचरण ऐसा श्रेष्ठ हो कि मेरी उत्तम स्थिति सदैव मजबूत बनी रहे। मेरी कीर्ति चहुओर फैलती रहे।

हे मातृभूमि! प्रकाश हम सबके जीवन का अंग बना रहे। यह प्रकाश ज्ञान के रूप में हो जिससे जीवन में कभी अन्धकार न फैलने पाए। हे माँ, अज्ञानान्धार हमारे जीवन में कभी न आने पाए ऐसी कृपा बनाए रखें। हे माँ, आप प्रकाश को पोषित करने वाली हैं। जिससे आप में गति हमेशा बनी रहती है। उद्योग और चेष्ठा से क्या नहीं प्राप्त हो जाता है, अर्थात् सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। समाज व राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति ज्ञानवान् बनने के साथ–साथ परिश्रमी और उद्यमी भी बना रहे, ऐसी कृपा बनाए रखना। ज्ञान के प्रकाश से उद्यमशीलता का गुण लगातार बढ़ता जाता है। जिससे धन व कीर्ति के साथ ही साथ प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। यह तभी संभव हो सकता है जब आप की प्रेरणा हमेशा बनी रहेगी। हमारा जीवन हर प्रकार से ऐश्वर्यवान्, सुन्दर और श्रेष्ठ बना रहे। हम प्रजा–जनों में ज्ञान का प्रकाश ऐसा फैलाता जाए कि कभी भी अज्ञानांधकार फटकने तक न पाए। कहने का भाव यह है कि मातृभूमि

हमारी माँ है। माँ से पुत्र या पुत्री हर तरह की शुभकामनाएँ कर ही सकते हैं और माँ उन कामनाओं को पूरी करने के लिए सदा अपना विशाल हृदय खुला रखती है।

जीवन में उद्यमशीलता, प्रगति और श्रम की धारा प्रवाहित होती रहे इसके लिए शुभसंकल्प और उद्देश्य–दृढ़ता से बनाए रखना चाहिए। ऐश्वर्य व कीर्ति प्राप्त करने का यह सबसे सात्विक मार्ग है। जिस समाज व राष्ट्र में ज्ञान का प्रकाश दिन जैसा प्रकाशित होता है और परिश्रम सबका सूत्र होता है, वह समाज व राष्ट्र उन्नति के शिखर पर पहुँच जाते हैं। अज्ञानांकार में कोई उन्नति नहीं कर सकता है। समाज व राष्ट्र प्रगति पथ पर अज्ञानांधकार में आगे नहीं बढ़ सकते हैं।

हे मातृभूमि ! हम सभी को कल्याण के मार्ग पर प्रेरित कर दे। हमारी बुद्धि सदा प्रखर हो। बुद्धि के द्वारा हम सदा आप के कल्याण परक भावों को भावित करते रहें। हे माँ, हम लोग आप के बारे में निश दिन विचार करते रहें। मातृभूमि परक हमारे विचार अत्यन्त शूक्ष्म, तत्त्वदर्शी, ज्ञानधर्मी और शुभ संकल्प युक्त हों। निज में आस्था और विश्वास गहरा हो। विनययुक्त आग्रह करना निज के कल्याण हेतु है ही, समाज और जगत् के लिए आदर्श होता है।

हे धरती माता! हम सभी एकत्व भाव से भावित हो ऐश्वर्यों को भोगने वाले बनें। हम सबका जीवन अपने और दूसरे के लिए कल्याण कारक बना रहे। सुख, शान्ति और समृद्धि हमारा ध्येय हो। हम ऐसा कर्म न करें जिससे किसी मनुष्य को किसी प्रकार का दुख या दुःख भाव भाषित हो। सब के साथ ऐसा व्यवहार करें, जैसे स्वयं चाहते हैं। इससे ही धरती पर आपसी विश्वास, आशा और आस्था कायम हो सकते हैं।

वह क्रान्ति की धारा अर्थात क्रान्तिधर्मी है। जो क्रान्तिधर्मी है वह ही भू–माता का सर्वहित कर सकता है। हम सभी क्रान्तिधर्मी बनें। परमात्मा कवि है, वह कवि इस लिए है क्योंकि सृष्टि कर के जीवन की क्रान्ति करता है।

मनुष्य निज कर्तव्य को अति उत्तम भाव से नित्य पूरा करे। इससे आयु, विद्या, यश और बल की प्राप्ति होती है। ऐश्वर्य, बल और धन उन्हें प्राप्त होता है जो कठिन तप करते हैं। हम भी तपस्वी बनें, ऐसी धारणा हमारी दृढ़ होती जाए।

हे भू–माता ! भूमिगत सम्पत्ति पाकर जो जन ऐश्वर्यवान और धनवान बनते हैं वे साधना करके शक्तिशाली बन सकते हैं। बिना साधना के न कुछ साधा जा सकता है और न प्राप्त ही किया जा सकता है। हम सभी को श्री–समृद्धि सतत् मिलती रहे इसके लिए हम सभी को

दृढ़–इच्छा शक्ति मजबूत करनी चाहिए। 'श्री' प्राप्त करके हम विद्वत जनों के मध्य शोभा प्राप्त कर सकते हैं।

हे मातृभूमि! आप का हम सभी को वह ऐश्वर्य प्राप्त हो जिससे सभी तरह के दुख, अन्याय, रोग और वियोग से छुटकारा पा जाएँ। यह कितना शुभ और सत्य भावना से पूर्ण है कि हम निःस्वार्थ भाव से दूसरे के हित में लगे रहते हैं।

मातृभूमि स्तुतिगान में वेद का पावन उपदेश प्रजा–जनों के लिए अत्यन्त प्रेरक और उपयोगी है। उपदेश में कहा गया है...प्रत्येक नागरिक को अपना आचरण भद्र ही रखना चाहिए। तभी प्रतिष्ठा और स्थिति की दृढ़ता और यश प्राप्त हो सकता है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति चरित्रवान और कर्तव्यनिष्ठ बने इसके लिए राज्य–व्यवस्था को भी प्रयत्न करना चाहिए। सभी प्रजाजन हमेशा ज्ञान के प्रकाश में ही विचरण करें और प्रकाश सभी के जीवन का अंग बने– ऐसी विधि विकसित करते रहना चाहिए।

सहायक ग्रंथ

ऋग्वेद संहिता
यजुर्वेद संहिता
सामवेद संहिता
अथर्ववेद संहिता
सत्यार्थ प्रकाश : महर्षि दयानंद
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका : महर्षि दयानंद
वेद का राष्ट्रिय गीत : आचार्य प्रियव्रत शास्त्री
भूमि–सूक्त की काव्यमय व्याख्या : डॉ. राजमणि पाण्डेय
नित्यकर्म–विधि : महर्षि दयानंद
वैदिक सम्पदा : पं. वीरसेन वेदश्रमी
वैदिक सम्पत्ति : पं. रघुनंदन शर्मा
संस्कृत लोकोक्ति कोश : शशि तिवारी
वेद वैभव : प्रो. उमाकान्त उपाध्याय
वेदों का यथार्थ स्वरूप : धर्मदेव विद्या मार्तण्ड
वैदिक विनय : आचार्य अभदेव विद्यालंकार
श्रुति सौरभ : पं. शिवकुमार शास्त्री
वैदिक साहित्य एवं संस्कृति : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी